॥ श्रीगणेशायनमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया द्वाविंशम्पुष्पम्

कूर्म्मपुराणम्

(ब्राह्मीसंहितासमेतम्)

——:०:——

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्) ॥
वीरान्द्वयष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

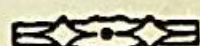
कलकत्ता–१

दः	प्रथमसंस्करणम्	खैस्ताब्दः
	५०००	१९६१



Gurumandal Series No. XXII

Koorma Puranam



WITH BRAHMI SANHITA ONLY.

BY

Shrimanmaharshi Krishna Dwaipayan Vedavyas.

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram Era	First Edition	Christian era
2018	5000	1962

मुद्रकः—
सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी
निवासी श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद
सूनुः श्रीअवधकिशोरसिंहः
स्वयन्त्रालये
गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
नामके
स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

* श्रीगणेशायनमः *

कूर्म्मपुराण

—:*:—

कूर्म्मपुराण की ब्राह्मीसंहिता मात्र पुराणप्रेमी विद्वद्वर्ग की सेवा में गुरुमण्डलग्रन्थमाला के २२वें पुष्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। पुराण गणना क्रम में यह १५ वां महापुराण आता है।

कूर्म्मपुराण के प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण वृहन्नारदीय पुराण में इस प्रकार किया गया है :—

ब्रह्माजी बोले हे वत्स! आज कूर्म नामक पुराण का संक्षिप्त तथा विषय जो लक्ष्मी कल्पानुसार हुआ है सुनोः—इसमें कूर्म वपु भगवान् ने धर्मार्थ काम मोक्ष का पृथक् पृथक् माहात्म्य इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से कृपाधिक्य द्वारा ऋषियों को सुनाया। यह मङ्गलमय पुराण १७००० श्लोकों का एवं ४ चार संहिताओं से युक्त है।

इसकी ब्राह्मी संहिता में (जो प्रस्तुत है) नानाविधधर्मों का विविध कथाओं के प्रसङ्ग से वर्णन किया गया है और वे सब अवश्य ही मनुष्यों को सद्गति देने वाले हैं।

पूर्वभागमें :—

पूर्व विभाग में प्राचीन काल में पुराणों के उपक्रम लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्न का सम्वाद कूर्मरूप भगवान् विष्णु और ऋषियों का सम्वाद वर्णाश्रम की आचार संहिता सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन संक्षेप से काल परिसंख्या एवं

लय के अन्तमें विभु परमात्मा का स्तवन है। इसके बाद संक्षेप से सर्ग का निरूपण, शङ्करजी का चरित्र एवं पार्वती के सहस्रनाम के साथ योग का प्रतिपादन है। भृगुवंश के समाख्यान के बाद स्वायम्भुव का वर्णन है देवगण आदि की उत्पत्ति व दक्षयज्ञ का विध्वंस फिर दक्ष सृष्टि की कथा और तत्पश्चात् कश्यपवंश का वर्णन श्री कृष्ण को शुभ आत्रेय वंश का कथन है। महर्षि मार्कण्डेय और कृष्ण का सम्वाद, व्यास पाण्डवों का परस्परसम्वाद युगधर्म का निरूपण, व्यास जैमिनि का सम्वाद, वाराणसी एवं प्रयाग का माहात्म्य उसके बाद त्रैलोक्य वर्णन तथा वेद की शाखा का निरूपण है।

उत्तरभाग में :—

इसके उत्तर भाग में सर्वप्रथम गीतेश्वरी ईश्वरगीता व्यास गीता कही गई है जो विविध धर्मों का प्रबोधन कराती है। तब नाना तीर्थों का पृथक् माहात्म्य है। यह ब्राह्मी संहिता का वर्णित विषय है। इसके बाद निरूपण में भागवती संहिता का निरूपण जिसमें वर्णों की पृथक् वृत्ति का प्रतिपादन है। पांचपादों में भागवती संहिता का (अनुपलब्ध) विभाग है।

हे वत्स! इसके प्रथम पाद में सदाचारात्मक भोग और सौख्य को बढानेवाने वाली ब्राह्मणों की व्यवस्थिति कही गई हैं। द्वितीय में क्षत्त्रियों की वृत्ति का वर्णन है, जिसे पालन कर पापों को दूरकर स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। तृतीय में वैश्यजाति की चार प्रकार की वृत्ति बतलायी गई है जिसे पालन कर मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर लेता है। इसके चतुर्थ पाद में शूद्रवृत्ति का प्रतिपादन है। श्रीभगवान् हरि जो सबलोगों के ही श्रेय को बढाते हैं, इसके पालन से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके पञ्चम पाद में सङ्कर जातियों की वृत्ति बतलाई गई है जिससे भावी जन्मों में प्राणी को जाना होता

इस प्रकार पञ्चपादी (पांच पादों वाली) भागवती संहिता बतलाई गई

है। तीसरी सौरी संहिता (अनुपलब्ध) है यह सम्पूर्ण मनुष्यों का इष्ट सम्पादन करने वाली छै प्रकार की कर्मसिद्धि को छै तरह से कामी (काम प्रधान लोगों) को बोधन करती है।

चतुर्थी संहिता (अनुपलब्ध) वैष्णवी है जो मोक्ष देने वाली कही जाती हैं। यह भी चारपादों में है द्विज आदि के लिये साक्षात् ही ब्रह्मस्वरूपिणी है ये क्रमशः ६ हजार ४ हजार और दो हजार श्लोकों में विभक्त हैं।

फलश्रुतिः—

इस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाले कूर्म पुराण को जो लोग इन्हें पढते या सुनते हैं सभी को उत्कृष्ट गति प्रदान करता है।

जो व्यक्ति इसे अविचल भक्तिपूर्वक लिखकर सोने की कूर्म प्रतिमा बनाकर अयनादि विशेषपर्व पर योग्य ब्राह्मण को देता है वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होगा।

इस प्रकार हमें उपलब्ध कूर्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता हां मिली है इसे सम्पूर्ण रूप से अविकल छपाने की आवश्यकता आ बनी है, क्योंकि १७ हजार के विशाल ग्रन्थ में केवल एक तिहाई की ही उपलब्धि हुई है। बहुत ग्रन्थ भाण्डारों के अधिकारी वर्ग से सर्वत्र ही इस विषय में विशेषतया सानुरोध पत्राचार करने पर भी विशेष सफलता अबतक नहीं मिली है। सभी विद्वद्वर्ग से इस अपूर्व ज्ञान भण्डार को प्रयत्न पूर्वक जनता के हित से प्रकाशित करने के लिये इस एवं अभीतक प्रकाशित अन्य पुराणों की सम्पूर्ण प्रति के प्राप्त्यर्थ सादर निवेदन है। यह पुराण पूर्णरूपेण नाना उपादेय विषयों से जन मन का विशेष कल्याण कर उन्हें "सर्वभूतहितेरताः" बनाये यही हार्दिक कामना है। ग्रन्थ की आदर्शप्रति बङ्गवासी प्रेस, और एशियाटिक सोसाइटी में छपे कूर्म पुराण हैं। भविष्य में सभी गुरुमण्डल में प्रकाशित पुराण ग्रन्थों

को अपने यहां उपलब्ध प्रामाणिक हस्तलिखित ग्रन्थों से तुलना कर जो विद्वान् मेरा मार्ग प्रदर्शन कर अधिक ग्रन्थ पाठ लिख भेजने की कृपा करेंगे उन्हें परिशिष्ट रूप से छपाकर साङ्गता सिद्धि की चेष्टा करूंगा। आगे जिन महापुराणों को छपवाना है उनके लिये विशिष्ट ज्ञातव्य सूचना भेजने वाले विद्वद्वर्ग का मैं आभार मानूंगा।

इस ग्रन्थ की अवशिष्ट तीन संहिता, भागवती सौरी और वैष्णवी जिन महानुभावों के पास होवें कृपाकर मुझे पत्र द्वारा सूचना दें उनकी सुविधा के अनुरूप ही इन संहिताओं का प्रतिलिपीकरण कर छपवाने का विशेष आयोजन किया जायगा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन उत्साहवश शीघ्रता में श्रीविश्वनाथजी शास्त्री के सहयोग से नवलदुर्गनिवासि श्री रामनाथजी दाधीच पुराण साङ्ख्य-स्मृतितीर्थ साहित्य शास्त्री के सम्पादकत्त्व में हुआ है तदर्थ वह धन्यवादार्ह है भ्रम प्रमादादिवश समागत त्रुटियों के लिये संशोधन करने की प्रार्थना है।

शुभमिति द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला
१५ बुधवार
२०१८ विक्रमसम्वत्

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता —१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

कूर्मपुराण की विवेचना

पुराणेधर्मनिर्णयः (पद्मपुराणम्)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणों का एक विशिष्टस्थान है, वेद, और स्मृति के अनन्तर पुराणों काही प्रमाणरूपसे आस्तिकजनग्रहण करते हैं। इनमें वेदार्थ का स्पष्टीकरण तो है ही, साथसाथ कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सिद्धान्त अतिसरल भाषा एवं अनेक कथाओंके द्वारा समझाये गये हैं। जिनको पढने सुननेसे साधारण बुद्धि का मनुष्यभी वेदों एवं उपनिषदों में वर्णित जटिल-तम सिद्धान्त समझकर अपने आचरणों में ला सकता है।

उपनिषदों के पदार्थों को सुननेसे पढालिखामनुष्य भी जबयहमालूम करता है किब्रह्मतत्त्व-भगवान्-देश, काल, और वस्तुभेदों के परे बुद्धि एवं इन्द्रि-यों से अतीत अपने स्वतः सिद्धस्वरूपमें स्थित है, तब कुछ निराश एवं भययुक्त हो जाता है कि जो हमारे चित्तवृत्तियों के आकलन से सर्वथा अतीत है, उसकी उपासना और स्मरण कैसेकरें, उसे हम अपने हृदयमन्दिर में लाकर कैसे स्थिर करें। मनुष्य की इस विवशताको भगवान् व्यासजीने भली-भाँति अनुभव किया और भगवान् की दयाका साक्षात् अनुभव कर सब प्राणिमात्रका हित हो इसबुद्धि से परमेश्वरकी सर्वव्यापकता, एवं सर्वात्मताके यथार्थ स्वरूपको देश, काल और वस्तुओं के भीतर अपने हृदय में भी स्थापित करनेका अर्थात् अनुभव करने का अति सरल मार्ग पुराणों द्वारा प्रदर्शित किया जिसका आश्रय लेकर गरीब, अमीर समर्थ, असमर्थ, अन्ध, पङ्गु, सभी परमेश्वरकी दयाके पात्र हो सकते हैं। श्री व्यासजी की इस पुराणरूपी कृति को देखकर कृतज्ञता के भारसे मस्तक स्वयं ही उनके चरणों में झुक जाता है।

पुराणों में जो साधन प्रदर्शित किये हैं, उनमें अनेक तीर्थो, व्रतों, पूजा-अर्चनादिकों एवं अनेक पवित्र वस्तुओंका वर्णन किया है। दृढनिश्चय और श्रद्धा से उनमें से अपने योग्य कोई साधन चुनकर अखण्डरूपसे उसका परिशीलन कर ने से अत्यन्तपापीभी पुण्यात्मा, हिंसक अहिंसाशील, इन्द्रियों का दास, इन्द्रियों को वशी करनेवाला एवं चञ्चलचित्त स्थिर बुद्धिहोकर अन्तमें परमेश्वर की दया का पात्र हो जाता है।

पुराणों के अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं सदाचारको सर्वसाधारण जनता में प्रचार का श्रेय इन्हीं पुराणों को है। प्रत्युत इस समय वेदों और स्मृतियों की अपेक्षा वेदों के अविरोधि पौराणिक धर्मका ही अधिक प्रचार है, अतएव वेदों के यथार्थ अभ्यास में पुराणों का अति महत्त्व है। अतएव पुराणों का यह सिद्धान्त है कि :—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति॥ अस्तु।

ऐसे सरल एवं सुलभ पुराणस्थित उपायों का श्रद्धा से श्रवण एवं आचरण करने से परमेश्वर की भक्ति तथा दया द्वारा अखण्ड, अनन्त आनन्द रूप परमगति—मुक्ति—की प्राप्ति होती है, पुराणों का श्रवण भी सदाचारशील, निर्लोभ एवं परमेश्वर के भक्त के द्वारा सुनने से शीघ्र फल होता है। पद्मपुराण में लिखा है :—

साधुसङ्गाद् भवेद् विप्र! शास्त्राणां श्रवणं सदा।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञानं ततो गतिः॥ ब्रह्मखं० ॥ १,६

ज्ञान, कर्म एवं कर्मगत उपासनासेभी अत्यन्त सरल तथा मनुष्यमात्र के लिये सहजआचरणीय ऐसे भक्तितत्त्वका विशेष आविष्कार एवं विशद स्वरूप पुराणों में ही अनेक भक्तों का कथा द्वारा हुआहै। जिसको सुनकर अत्यन्त दरिद्र भी केवल श्रद्धासे परमेश्वर का स्मरणकर उसकी कृपाका पात्र हो जाता है इसमें सन्देह नहीं।

ऐसे पुराणों का प्रचार और उसमें प्रतिपादित तत्त्वों का आचार केवल संपूर्ण भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी हो जाय तो मनुष्यों में वास्तविक मनुष्यता जागृत होगी और आजका मानव केवल मानव और प्राणिमात्र में ही नहीं किन्तु वृक्षादिकों मेभी सत्य तत्त्व का अपने में के समान अनुभव करने लगेगा और सम्प्रति आणविक अस्त्रों के प्रयोग से चेतन जड के संहार की जो बिभीषिका खड़ी है वह सदा के लिये मिट जायगी।

इसप्रकारके सत्य एवं जगत्के कल्याणकारी विचारों से प्रेरित होकर विद्वान् एवं पुराणों के मर्मज्ञ भक्तप्रवर, धनी एवं सुविचारक कलकत्ता निवासी श्री मनसुखराय मोर पुराणों व धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंका प्रकाशन एवं विद्वानों को विनामूल्य वितरण कर रहे हैं।

सम्प्रति कूर्म पुराण प्रकाशनके लिये प्रस्तुत है, कूर्मपुराण की चार संहिताओं में से ब्राह्मी संहिता ही इस समय उपलब्ध होती है, और भागवती, सौरी एवं वैष्णवी दुष्प्राप्य हैं। सभी पुराणों की श्लोक सख्या, स्वरूप एवं विषयों का संक्षिप्त वर्णन नारदपुराण में उपलब्ध होता है, उसके अनुसार कूर्म पुराण में ब्राह्मीसंहिता ६ हजार श्लोकों में तथा पूर्व एवं उत्तरभाग में विभाजित है। भागवती पांच पादों मे और ४ हजार श्लोकों से युक्त है। सौरी २ हजार से युक्त तथा वैष्णवी चारपादों से और पांच हजार श्लोकों से युक्त है। नारद पुराणके वर्णनानुसार प्रकाशन के लिये प्रस्तुत कूर्म पुराण की ब्राह्मीसंहिता सर्वांशसे मिलती है। ब्राह्मीसंहिता के ऊपर भाग में ईश्वरगीता है उसपर विज्ञान भिक्षुका भाष्य है, डा० विलसन्को जो कूर्म्मपुराण मिला था उसकी श्लोकसंख्या ६ हजार देखकर एवं अन्यत्र पुराणों में दी हुई १७ या १८ हजार श्लोक संख्या देखकर उन्होंने इसको असली कूर्म्मपुराण रूप से ग्रहण नहीं किया, परन्तु नारदपुराण के वर्णनानुसार कूर्म्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता ६ हजार श्लोक वाली उनको मिली थी, और वह संहिता नारदपुराण के अनुसार निश्चित कूर्म्म पुराण की एवं अतिशुद्ध बची हुई प्रति है। क्योंकि कूर्म्मपुराण में ही लिखा है:-

इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैश्च सम्मिता।

भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्रसङ्ख्यया॥ १,२४

ब्राह्मीसंहिता में कुछ तान्त्रिक विषय आ जाने से कुछ लोक उसको आधुनिक समझते हैं, परन्तु उनका यह मत एकदम गलत है। श्रीशङ्कराचार्यजी के समय ६४ तन्त्र विद्यमान थे। उन्होंने आनन्दलहरी में "चतुःषष्ट्यातन्त्रैः सकलमभिसन्धायभुवनम्" इसप्रकार ६४ तन्त्रों का उल्लेख किया है। एवं ईसा के द्वितीयशतक में पैदा हुए नागार्जुन ने अपने कक्षापुटी नामक ग्रन्थ में:-

शाम्भवे यामले शाक्ते मौले कौलेयडामरे।

स्वच्छन्दे लाकुले शैवे राजतन्त्रेऽमृतेश्वरे॥ ६॥

... ... । ... ... ॥ ६॥

इत्येतदागमोक्तश्च वक्त्रात् वक्त्रेण यच्छ्रुतम्॥

तत्सर्वं तु समुद्धृत्य दध्नो घृतमिवादरात्॥ १०॥

इसप्रकार ... तन्त्रों का उल्लेख किया है इसपुराण में ईश्वर-

गीता और व्यासगीता के श्लोक श्रीशङ्कराचार्यजीने विष्णुसहस्रनाम भाष्य एवं सनत्सुजातीय भाष्य में प्रमाण रूप से लिये है। ईश्वर गीता के ऊपर विज्ञान भिक्षु का भाष्य प्रस्तुत कूर्मपुराण के अन्त में जोड दिया गया है। व्यासगीता में प्रायः सम्पूर्ण वर्णाश्रमधर्म का निरूपण हुआहै। और अनेक अपूर्व विषय वृहद्विषय सूची को देखने से ज्ञान हो जायेंगे। अस्तु।

अनेक पुराणों, स्मृतियों ओर निरुक्तादि ग्रन्थों का अन्वेषण, सम्पादन सुन्दर प्रकाशन और विद्वानों को विना मूल्य वितरण आदि अनन्य साधारण कार्य श्रीमान् भक्तप्रवर मोर कुलभूषण श्रीमनसुखरायजी करते हुए राष्ट्र की एवं परमेश्वर की अतिमहत्त्व की सेवा कर रहे है। इनका यह कार्य और धार्मिकों के लिये निःसंशय आदर्शभूत है।

भारतीय विशिष्ट विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि पुराणों का प्रकाशनरूप राष्ट्रीय कार्य निर्लोभ वृत्तिसे लाखों रुपयों का व्यय कर श्रीभक्तप्रवर पुराणज्ञ श्री-मनसुखरायमोरजी कर रहे है। अतः आदरणीय पण्डित लोग अपने प्रान्तो में अनुपलब्ध असंपूर्ण हस्तलिखित पुराणों एवं पुराणों के भागों को खोजकर उस की सूचना श्रीमोरजी को देवें। जिससे वे उसकी प्रतिलिपिकराकर अपने योग्य विद्वान् सम्पादक द्वय श्रीपण्डितवर रामनाथजी मिश्र एवं श्रीपण्डितवर ब्रह्मदत्त जीत्रिवेदीशास्त्री द्वारा सम्पादन एवं प्रकाशन करा सकेंगे। अपनेअपने नगर आदि में स्थित लिखित पुराणों के संग्रह का ज्ञान विद्वान् पण्डितो को रहता ही है, अतः थोड़ासा समय निकाल कर श्री मनुसुखराय द्वारा प्रचारित इस राष्ट्रीय कार्य में वे हाथ बंटा सकते हैं। प्रायः सभीप्रान्तो में श्रीमोरजी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ विद्वानो के पास विनामूल पहुंचतेही है। अन्तमें मैं श्रीमनसुखराय मोरजी के इस निर्लोभ राष्ट्रीय कार्यकी प्रशंसा कर उनको अनेक धन्यवावाद देता हूँ। और उनके पुत्रादि को में धर्म प्रेम एवं राष्ट्रीय कार्य करने की बुद्धि उत्तरोत्तर वढे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करताहूँ।

पं० श्रीअनन्त शास्त्री फडके
व्याकरणाचार्य, मीमांसातीर्थ, वेदान्तकेशरी
अध्यक्ष—पुराणेतिहासविभाग
वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय

वाराणसी
सितम्बर २५।१९६१
आश्विनकृष्णा १।२०१८

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ कूर्म्मपुराणान्तर्गतब्राह्मीसंहितायाः

विषयानुक्रमणिका

प्रारभ्यते

——:०:——

उत्तरार्द्धम्

ईश्वरगीतामाहात्म्यारम्भः

समाप्तैषा कूर्मपुराणान्तर्गत ब्राह्मीसंहितायाविषयानुक्रमणिका

इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन

(लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि) ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—

नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-जयपुर-

निवासि) रामनाथमिश्रदाधीचौ ।

शुभमस्तुसताम्

—:०*०:—

* श्रीगणेशायनमः *

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

कूर्म्मपुराणम्

तत्राऽऽदौब्राह्मीसंहिताप्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्यमोक्षप्राप्तिवर्णनम्

ॐनमस्कृत्याप्रमेयायविष्णवे कूर्म्मरूपिणे । पुराणंसम्प्रवक्ष्यामियदुक्तंविश्वयोनिना
सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषेया महर्षयः । पुराणसहितां पुण्यां पप्रच्छु रोमहर्षणम् ॥
त्वयासूत! महाबुद्धे!भगवान् ब्रह्मवित्तमः । इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः
तस्यते सर्व्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत् । द्वैपायनस्यतुभवांस्ततो वैरोमहर्षणः
भवन्तमेव भगवान् व्याजहारस्वयंप्रभुः । मुनीनांसंहितांवक्तुंव्यासःपौराणिकींपुरा
त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते सति ।
सम्भूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥
तस्माद्भवन्तं पृच्छामः पुराणंकौर्म्ममुत्तमम् । वक्तुमर्हसिचास्माकंपुराणार्थविशारद

मुनीनांवचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः। प्रणम्यमनसा प्राह गुरुंसत्यवतीसुतम्

रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं कूर्म्मरूपधरं हरिम्।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम्॥ ६॥

यांश्रुत्वापापकर्म्मापिगच्छेतपरमांगतिम्। ननास्तिकेकथांपुण्यामिमांब्रूयात्कदाचन
श्रद्दधानाय शान्ताय धार्म्मिकायद्विजातये। इमांकथामनुब्रूयात्साक्षान्नारायणेरिताम्
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्
ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च। शैवं भागवतञ्चैव भविष्यं नारदीयकम्॥१३
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्त मेव च। लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥

कौर्म्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमितिसञ्ज्ञितम्॥ १५॥

अन्यान्युपपुराणानिमुनिभिःकथितानितु। अष्टादशपुराणानिश्रुत्वासङ्क्षेपतोद्विजाः
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतःपरम्। तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्
चतुर्थंशिवधर्म्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्। दुर्व्वाससोक्तमाश्चर्यंनारदीयमतःपरम्
कापिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम्। ब्रह्माण्डं वारुणञ्चैव कालिकाह्वयमेव च॥
माहेश्वरं तथासाम्बं सौरं सर्व्वार्थसञ्चयम्। पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्
इदन्तु पञ्चदशकं पुराणंकौर्म्ममुत्तमम्। चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्त्तिताः।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्म्मकामार्थमोक्षदाः॥ २२॥
इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्व्वेदैस्तु सम्मिताः।
भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र सङ्ख्यया॥ २३॥

यत्रधर्म्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः। माहात्म्यमखिलंब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च। वंशानुचरितंपुण्यादिव्याप्रासङ्गिकीकथा
ब्राह्मणाद्यैरियं धार्य्या धार्म्मिकैर्वेदपारगैः। तामहं वर्णयिष्यामिव्यासेन कथितांपुरा

पुराऽमृतार्थंदैतेयदानवैः सह देवताः। मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन्कूर्म्मरूपी जनार्द्दनः। बभार मन्दरंदेवो देवानां हितकाम्यया
देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः। कूर्म्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम् ॥
तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीर्नारायणवल्लभा। जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ॥
तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः। मोहिताः सहशक्रेण श्रेयोवचनमब्रुवन् ॥
भगवन् देवदेवेश! नारायणजगन्मय। कैषा देवीविशालाक्षी यथावद् ब्रूहिपृच्छताम्

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्द्दनः।
प्रोवाच देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादानकलमषान् ॥ ३३ ॥

इयं सा परमाशक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी। मायामम प्रियानन्ता ययेदं धार्य्यते जगत्
अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिङ्गतिम्।
विद्यया वीक्ष्य चाऽऽत्मानं तरन्ति विपुलामिमाम् ॥ ३६ ॥
अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः।
ब्रह्मेशानादयः सर्व्वे सर्व्वशक्तिरियं मम ॥ ३७ ॥
सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रागेव मत्तः सञ्जाता श्रीः कल्पे पद्मवासिनी ॥ ३८ ॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्तास्रगन्विता। कोटिसूर्य्यप्रतीकाशामोहिनीसर्व्वदेहिनाम्
नालं देवा न पितरो मानवा वासवोऽपि च। मायामेतांसमुत्तर्तुं येचान्येभुविदेहिनः
इत्युक्ता वासुदेवेनमुनयो विष्णुमब्रुवन्। ब्रूहित्वं पुण्डरीकाक्ष! यद्विकालक्षयेऽपिच
अथोवाचहृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः। अस्तिद्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इतिश्रुत

पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः।
दृष्ट्वा मां कूर्म्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ॥ ४२ ॥
संहितां मन्मुखाद्दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्।
ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ॥ ४४ ॥

मच्छक्तौ संस्थितान् वुद्‌ध्वा मामेव शरणं गतः।
सम्भाषितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यसि ॥ ४५ ॥
इन्द्रद्युम्नइतिख्यातोजातिस्मरसिपौर्व्विकीम् । सर्वेषामेवभूतानांदेवानामप्यगोचरम्
वक्तव्यं यद्गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ । लब्ध्वा तन्मामकंज्ञानंमामेवान्तेप्रवेक्ष्यसि
अंशान्तरेणभूम्यां त्वंतत्रतिष्ठसुनिर्वृतः । वैवस्वतेऽन्तरेऽतीतेकार्य्यार्थंमांप्रवेक्ष्यसि
मां प्रणम्यपुरींगत्वापालयामासमेदिनीम् । कालधर्म्मंगतःकालाच्छ्वेतद्वीपेमयासह
भुक्त्वा तान्वैष्णवान् भोगान्योगिनामप्यगोचरान् ।
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा यज्ञे विप्रकुले पुनः ॥ ५० ॥
ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र द्वे निहितेऽक्षरे । विद्याविद्ये गूढरूपंयद्ब्रह्मपरमंविदुः
सोऽर्च्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम् । व्रतोपवासनियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः ॥५२
तदाशीस्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः । आराधयन्महादेवंयोगिनांहृदिसंस्थितम्
तस्यैवं वर्त्तमानस्य कदाचित्परमाकला । स्वरूपं दर्शयामास दिव्यंविष्णुसमुद्भवम्
दृष्ट्वाप्रणम्यशिरसाविष्णोर्भगवतःप्रियाम् । संस्तूयःविविधैःस्तोत्रैःकृताञ्जलिरभाषत

इन्द्रद्युम्न उवाच

का त्वं देविविशालाक्षिविष्णुचिह्नाङ्किते शुभे । याथातथ्येनवैभावंतवेदानींब्रवीहिमे
तस्यतद्वाक्यमाकर्ण्यसुप्रसन्नासुमङ्गला । हसन्ती संस्मरन्विष्णुं प्रियंब्राह्मणमब्रवीत्

श्रीरुवाच

न मां पश्यन्ति मुनयोदेवाःशक्रपुरोगमाः । नारायणात्मिकामेकां मायाहंतन्मयीपरा
न मे नारायणाद्भेदो विद्यते हि विचारतः । तन्मय्यहं परं ब्रह्म सविष्णुःपरमेश्वरः
येऽर्च्चयन्तीह भूतानामाश्रयं पुरुषोत्तमम् । ज्ञानेन कर्म्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम्
तस्मादनादिनिधनं कर्म्मयोगपरायणः । ज्ञानेनाराधयानन्तं ततोमोक्षमवाप्स्यसि
इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामतिः । प्रणम्य शिरसा देवींप्राञ्जलिःपुनरब्रवीत्
कथं स भगवानीशः शाश्वतोनिष्कलोऽच्युतः । ज्ञातुंहिशक्यतेदेविब्रूहिमेपरमेश्वरि!
एवमुक्ताथ विप्रेण देवीकमलवासिनी । साक्षान्नारायणोज्ञानंदास्यतीत्याहतंमुनिम्

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम् ।
स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६५ ॥

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना । आराधयद्धृषीकेशं प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनम्
ततो बहुतिथे काले गतेनारायणःस्वयम् । प्रादुरासीन्महायोगीपीतवासाजगन्मयः
दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मनमव्ययम् । जानुभ्यामवनिं गत्वातुष्टावगरुड़ध्वजम्

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत!गोविन्द!माधवानन्त!केशव !। कृष्णविष्णोहृषीकेशतुभ्यंविश्वात्मनेनमः
नमोऽस्तु ते पुराणाय हरयेविश्वमूर्त्तये । सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये ॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलायनमोनमः । पुरुषाय नमस्तेऽस्तु विश्वरूपायतेनमः
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये । आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः
नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः । भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे
नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने । अनन्तमूर्त्तये तुभ्यममूर्त्ताय नमोनमः ॥
नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः । नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥
नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्यमाय महादेवाय ते नमः । नमः शिवाय शुद्धाय नमस्तेपरमेष्ठिने
त्वयैतत्सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः । त्वं पिता सर्वभूतानांत्वं मातापुरुषोत्तम

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योमनिष्कलम् ।
सर्व्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम् ॥ ७८ ॥

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम् । प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम्॥
एवं स्तुवन्तं भगवान्भूतात्माभूतभावनः । उभाभ्यामथहस्ताभ्यां पस्पर्शप्रहसन्निव
स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुङ्गवः । यथावत्परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः
ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्द्दनम् । प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥
त्वत्प्रसादादसन्दिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम !। ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम्॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवायवेधसे । किं करिष्यामि योगेश! तन्मे वद जगन्मय!॥
श्रुत्वानारायणोवाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः । उवाचसस्मितवाक्यमशेषजगतोहितम्

श्रीभगवानुवाच

वर्णाश्रमाचारवतां पुंसां देवो महेश्वरः। ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा
विज्ञायतत्परंतत्त्वंविभूतिंकार्य्यकारणम्। प्रवृत्तिञ्चापिमेज्ञात्वामोक्षार्थीश्वरमर्च्चयेत्
सर्व्वसंगान्परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयंजगत्। अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम्
त्रिविधांभावनां ब्रह्मन्प्रोच्यमानां निबोधमे। एकामद्विषयातत्र द्वितीयाव्यक्तसंश्रया
अन्याचभावना ब्राह्मीविज्ञेया सागुणातिगा। आसामन्यतमाञ्चाथभावनांभावयेद्बुधः
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः। तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेनतन्निष्ठस्तत्परायणः
समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि।

इन्द्रद्युम्न उवाच

किन्तत्परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्द्दन ॥ ९२ ॥
किङ्कार्य्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव।

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम् ॥ ९३ ॥
नित्यानन्दमयं ज्योतिरक्षरंतमसः परम्। ऐश्वर्य्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरितिगीयते
कार्य्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम्। अहं हि सर्व्वभूतानामन्तर्यामीश्वरःपरः॥
सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते। एतद्विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज !॥
ततस्त्वं कर्म्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्च्चय।

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः ॥ ९७ ॥
ज्ञानञ्च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम्। कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियतेपुनः॥
कियत्यः सृष्टयोलोकेवंशा मन्वन्तराणिच। कानितेषां प्रमाणानिपावनानिव्रतानिच
तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरम्।
कति द्वीपाःसमुद्राश्च पर्व्वताश्च नदीनदाः ॥ १०० ॥
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष ! यथावदधुना पुनः।

श्रीकूर्म्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाऽहं भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ १०१ ॥
यथावदखिलं सम्यगवोचं मुनिपुङ्गवाः !। व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु ॥
अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् । सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमाः
आराधयामासपरं भावपूतः समाहितः । त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः
स न्यस्य सर्व्वकर्म्माणि परं वैराग्यमाश्रितः ।
आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत् ॥ १०५ ॥
सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्व्विकाम् । अवाप परमं योगं येनैकंपरिपश्यति
यं विनिद्रा'जितश्वासाः कांक्षन्ते मोक्षकांक्षिणः ।
ततः कदाचिद्योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम् ॥ १०७ ॥
जगामादित्यनिर्द्देशान्मानसोत्तरपर्व्वतम् । आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्य्यप्रभावतः
विमानं सूर्य्यसङ्काशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम् । अन्वगच्छन्देवगणा गन्धर्वाप्सरसांगणाः
दृष्ट्वाऽन्ये पथि योगीन्द्रंसिद्धाब्रह्मर्षयोययुः । ततःस गत्वानुगिरिंविवेशसुरवन्दितम्
स्थानंतद्योगिभिर्जुष्टं यत्रास्तेपरमःपुमान् । सम्प्राप्यपरमंस्थानं सूर्य्यायुतसमप्रभम्
विवेश चान्तर्भवनं देवानाञ्च दुरासदम् । विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्व्वदेहिनाम्
अनादिनिधनं चैव देवदेवं पितामहम् । ततः प्रादुरभूत्तस्मिन् प्रकाशःपरमाद्भुतः ॥
तन्मध्ये पुरुषं पूर्व्वमपश्यत्परमं पदम् । महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिर्भिरुपशोभितम् । सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्यप्रणमन्तमुपस्थितम्
प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे । परिष्वक्तस्यदेवेनद्विजेन्द्रस्याथ देहतः
निर्गत्य महतीज्योत्स्नाविवेशादित्यमण्डलम् । ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत्पवित्रममलंपदम्
हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक् ।
द्वारं तद्योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥ ११८ ॥
ब्रह्मतेजोमयं श्रीमद्द्रष्टा चैव मनीषिणाम् । दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्म्मयोमुनिः

अपश्यदैश्वरंतेजः शान्तंसर्वत्रगंशिवम् । स्वात्मानमक्षरंव्योम यत्रविष्णोःपर पदम्

आनन्दमचलं ब्रह्मस्थानं तत्परमेश्वरम् । सर्वभूतात्मभूतस्थः परमैश्वर्य्यमास्थितः ॥
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः ॥ १२२ ॥
समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः ।

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः ॥ १२३ ॥
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम् ।

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश ! नाथ ! नारायणाव्यय ! ॥ १२४ ॥
तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा । इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्म्मादिगोचरम् ॥
शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखातवजगन्मय !। ततः स भगवान् विष्णुःकूर्म्मरूपीजनार्द्दनः
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः । पृष्टः प्रोवाच सकलं * पुराणं कौर्म्ममुत्तमम्
सन्निधौ देवराजस्य तद्वक्ष्येभवतामहम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदंनृणाम्
पुराणश्रवणं विप्रा कथनञ्च विशेषतः । श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते । इदं पुराणं परमं कौर्म्मं कूर्म्मस्वरूपिणा ॥
उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥ १३१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* सकलमित्यत्र "भगवान्" इति पाठान्तरम् ।

द्वितीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

शृणुध्वमृषयःसर्व्वैयत्पृष्टोऽहंजगद्धितम् । वक्ष्यमाणंमयासर्व्वमिन्द्रद्युम्नायभाषितम्
भूतैर्भव्यैर्भवद्भिश्च चरितैरुपबृंहितम् । पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्म्मानुकीर्त्तनम्
अहं नारायणोदेवःपूर्व्वमासीन्नमेपरम् । उपास्यविपुलांनिद्रांभोगिशय्यांसमाश्रितः
चिन्तयामि पुनः सृष्टिं निशान्तेप्रतिबुध्यतु । ततोमेसहसोत्पन्नःप्रसादोमुनिपुङ्गवाः

चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तदन्तरेऽभवत्क्रोधः कस्माच्चित्कारणात्तदा ॥ ५ ॥

आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वरः । रुद्रःक्रोधात्मकोजज्ञेशूलपाणिस्त्रिलोचनः
तेजसा सूर्य्यसङ्काशस्त्रैलोक्यं संदहन्निव । तदा श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना ॥ ७
सुरूपासौम्यवदनामोहिनीसर्व्वदेहिनाम् । शुचिस्मितासुप्रसन्नामङ्गलामहिमास्पदा

दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता ।
नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया ॥ ६ ॥
स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पार्श्वं समुपाविशत् ।
तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिम् ॥ १० ॥

मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम् येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्द्धते मम माधव!॥
तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रवं प्रहसन्निव । देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्

मोहयित्वा ममादेशात्सन्सारे विनिपातय ।
ज्ञानयोगरतान्दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥
अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय ।

ध्यायिनो निर्म्ममान् शान्तान्धार्मिकान्वेदपारगान् ॥ १४ ॥

याजिनस्तापसान्विप्रान्दूरतःपरिवर्ज्जय । वेदवेदान्तविज्ञानसञ्छिन्नाशेषसंशयान्
महायज्ञपरान्विप्रान्दूरतः परिवर्ज्जय । ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ १६ ॥

स्वाध्यायेनेज्यया दूरात्तान् प्रयत्नेन वर्ज्जय ।
भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान् ॥ १७ ॥

प्राणायामादिषु रतान्दूरात्परिहरामलान् । प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान् ॥
अथर्वशिरसो वेत्तॄन् धर्म्मज्ञान् परिवर्ज्जय । बहुनात्रकिमुक्तेनस्वधर्म्मपरिपालकान्
ईश्वराराधनरतान्मन्नियोगान्न मोहय । एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा ॥२०॥
यथादेशंचकारासौतस्माल्लक्ष्मींसमर्च्चयेत् । श्रियंददातिविपुलांपुष्टिंमेधांयशोबलम्

अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्च्चयेत् ।
ततोऽसृजत्स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २२ ॥

चराचराणि भूतानि यथापूर्व्वं ममाज्ञया । मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यंपुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वसिष्ठश्च सोऽसृजद्योगविद्यया । नवैते ब्रह्मणः पुत्राब्राह्मणा ब्राह्मणोत्तमाः

ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः ।
ससर्ज्ज ब्राह्मणान्वक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद्विभुः २५ ॥

वैश्यानूरुद्वयाद्देवः पद्भ्यां शूद्रान् पितामहः । यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह ॥
गुप्तये सर्व्वदेवानां तेभ्यो यज्ञोहिनिर्बभौ । ऋचोयजूंषिसामानितथैवाथर्वणानिच
ब्रह्मणः सहजं रूपंनित्यैषाशक्तिरव्यया । अनादिनिधनादिव्यावागुत्सृष्टास्वयम्भुवा

आदौ वेदमयी भूतामतः सर्व्वाः प्रवृत्तयः ।
अतोऽन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित् ॥ २६ ॥

न तेषु रमते धीरः पाखण्डी रमते बुधः । वेदार्थवित्तमैः कार्य्यंयत्स्मृतंमुनिभिःपुरा
सज्ञेयःपरमोधर्म्मोनान्यशास्त्रेषुसंस्थितः । यावेदवाह्याःस्मृतयोयाश्चकाश्चकुदृष्टयः

सर्व्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।
पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्व्वबाधाविवर्जिताः ॥ ३२ ॥

शुद्धान्तःकरणाः सर्व्वाः स्वधर्मपरिपालिकाः ।

ततः कालवशात्तासां रागद्वेषादिकोऽभवत् ॥ ३३ ॥
अधर्म्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्म्मप्रतिबन्धकः ।
ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते ॥ ३४ ॥
रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन् ।
तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः ॥ ३५ ॥
वार्त्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिञ्च कर्म्मजाम् ।
ततस्तासां विभुः ब्रह्मा कर्म्माजीवमकल्पयत् ॥ ३६ ॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं धर्म्मान्प्रोवाच सर्व्वदृक् ।
साक्षात्प्रजापतेर्मूर्त्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणो द्विजाः ॥ ३७ ॥

भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्म्मानथोचिरे । यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः अध्यापनंचाध्ययनंषट्कर्म्माणिद्विजोत्तमाः । दानमध्ययनंयज्ञोधर्म्मःक्षत्रियवैश्ययोः दण्डो युद्धंक्षत्रियस्यकृषिर्वैश्यस्यशस्यते । शुश्रूषैवद्विजातीनांशूद्राणांधर्म्मसाधनम् कारुकर्म्मतथाजीवःपाकयज्ञादिधर्म्मतः । ततःस्थितेषुवर्णेषुस्थापयामासचाश्रमान् गृहस्थञ्च वनस्थंचभिक्षुकंब्रह्मचारिणम् । अग्नयोऽतिथिशुश्रूषायज्ञोदानंसुरार्च्चनम् गृहस्थस्यसमासेनधर्म्मोऽयंमुनिपुङ्गवाः । होमोमूलफलाशित्वंस्वाध्यायस्तपएवच

संविभागो यथान्यायं धर्म्मोऽयं वनवासिनाम् ।
भैक्षाशनञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ॥ ४४ ॥
सम्यग्ज्ञानञ्च वैराग्यं धर्म्मोऽयं भिक्षुके मतः ।
भिक्षाचर्य्या च शुश्रूषा गुरोः स्वध्याय एव च ॥ ४५ ॥
सन्ध्याकर्म्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम् ।
ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः !॥ ४६ ॥

साधारणं ब्रह्मचर्य्यं प्रोवाच कमलोद्भवः । ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषुनचान्यतः पर्व्ववर्ज्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्य्यमुदाहृतम् । आगर्भधारणादाज्ञा कार्य्या तेनाप्रमादतः

अकुर्वाणस्तुविप्रेन्द्राभ्रूणहातूपजायते । वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्याश्राद्धञ्चातिथिपूजनम्

गृहस्थस्य परो धर्म्मो देवताभ्यर्चनंतथा। वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि
देशान्तरगतो वाथ मृतपत्नीक एव च। त्रयाणामाश्रमाणान्तु गृहस्थो योनिरुच्यते
अन्येतमुपजीवन्तितस्माच्छ्रेयानगृहाश्रमी। ऐकाश्रम्यंगृहस्थस्यचतुर्णांश्रुतिदर्शनात्
तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम्। परित्यजेदर्थकामौयौ स्यातांधर्मवर्जितौ
सर्वलोकविरुद्धञ्च धर्म्ममप्याचरेन्न तु। धर्मात्संजायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते
धर्म्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्म्मं समाश्रयेत्। धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः

सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।
ऊर्द्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ॥ ५६ ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।
यस्मिन्धर्म्मसमायुक्तौ ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ ॥ ५७ ॥

इहलोकेसुखीभूत्वाप्रेत्यानन्त्यायकल्पते। धर्मात्संजायतेमोक्षोह्यर्थात्कामोऽभिजायते
एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्येप्रदर्शितम्। य एवं वेदधर्म्मार्थकाममोक्षस्य मानवः
माहात्म्यंचानुतिष्ठेतसचानन्त्यायकल्पते। तस्मादर्थञ्चकामञ्चत्यक्त्वाधर्म्मंसमाश्रयेत्
धर्म्मात्संजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः। धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्
अनादिनिधना शक्तिःसैषाब्राह्मीद्विजोत्तमाः। कर्म्मणाप्राप्यतेधर्म्मो ज्ञानेनचनसंशयः
तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाश्रयेत्। प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधंकर्म्मवैदिकम्
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा। निवृत्तं सेवमानास्तु यातितत्परमं पदम्
तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत्पुनः। क्षमा दमोदयादानमलोभस्त्यागएवच
आर्जवं चानसूयाचतीर्थानुसरणंतथा। सत्यं सन्तोषमास्तिक्यंश्रद्धाचेन्द्रियनिग्रहः
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः। अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता

सामासिकमिमं धर्म्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ॥ ६८ ॥
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्।
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्म्ममनुवर्त्तताम् ॥ ६९ ॥

गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्त्तताम् । अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्द्ध्वरेतसाम्

स्मृतं तेषान्तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ॥ ७१ ॥

प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ।

यतीनां जितचित्तानां न्यासिनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ ७२ ॥

हैरण्यगर्भं तत्स्थानं यस्मान्नावर्त्ततेपुनः । योगिनाममृतं स्थानंव्योमाख्यंपरमक्षरम्

आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गतिः ।

ऋषय ऊचुः

भगवन्देवतारिघ्न! हिरण्याक्षनिषूदन!॥ ७४ ॥

चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते ।

कूर्म्म उवाच

सर्वकर्माणि सन्यस्य समाधिमचलं श्रितः ॥ ७५ ॥

य आस्ते निश्चलो योगी स सन्यासी च पञ्चमः ।

सर्वेषामाश्रमाणान्तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणोनैष्ठिकोब्रह्मतत्परः । योऽधीत्यविधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत्

उपकुर्व्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ।

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ॥ ७८ ॥

कुटुम्बभरणायत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ॥ ७९ ॥

एकाकीयस्तु विचरेदुदासीनःसमौक्षिकः । तपस्तप्यतियोऽरण्येयजेद्देवान्जुहोतिच

स्वाध्यायेचैवनिरतोवनस्थस्तापसोमतः । तपसाकर्षितोऽत्यर्थंयस्तुध्यानपरोभवेत्

सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ।

योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः ॥ ८२ ॥

ज्ञानाय वर्त्ततेभिक्षुः प्रोच्यतेपारमेष्ठिकः । यस्त्वात्मरतिरेवस्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः

सम्यग्दर्शनसम्पन्नःसयोगीभिक्षुरुच्यते । ज्ञानसन्न्यासिनः केचिद्वेदसन्न्यासिनोऽपरे
कर्म्मसन्न्यासिनः केचित्त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः ।
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकःसांख्य एव च ॥ ८५ ॥
तृतीयोह्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममाश्रितः । प्रथमा भावनापूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना
तृतीयेचान्तिमा प्रोक्ताभावना पारमेश्वरी । तस्मादेतद्विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम्
सर्व्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमोनोपपद्यते । एवं वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जनः ॥ ८८
दक्षादीन्प्राहविश्वात्मासृजध्वंविविधाःप्रजाः । ब्रह्मणोवचनात्पुत्रादक्षाद्यामुनिसत्तमाः
असृजन्त प्रजाः सर्वे देवमानुषपूर्वकाः । इत्येवं भगवान् ब्रह्मास्रष्टृत्वे संव्यवस्थितः
अहंवै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत् । तिस्रस्तु मूर्त्तयःप्रोक्ताब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
रजः सत्त्वतमोयोगात्परस्य परमात्मनः ।
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ॥ ९२ ॥
अन्योन्यप्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना ॥
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्त्तन्ते सततं द्विजाः । प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या त्वक्षरभावना
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना । अहं चैव महादेवो न भिन्नः परमार्थतः
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः ।
त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम् ॥ ९६ ॥
पुरुषः परतोऽव्यक्तो ब्रह्मत्वं समुपागमत् । तस्माद्ब्रह्मामहादेवोविष्णुर्विश्वेश्वरःपरः
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तद्वत्कार्यवशात्प्रभोः ।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्या विशेषतः ॥ ९८ ॥
यदीच्छेदचिरात्स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् । वर्णाश्रमप्रयुक्तेनधर्म्मेणप्रीतिसंयुतः
पूजयेद्भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया । चतुर्णामाश्रमाणान्तुप्रोक्तोऽयंविधिवद्द्विजाः
आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इतित्रयः । तल्लिङ्गधारीनियतं तद्भक्तजनवत्सलः ॥
ध्यायेदथार्च्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः । सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम् ॥
सितेनभस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् । यस्तुनारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम्

धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः । प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्

तेषां ललाटे तिलकं धारणीयन्तु सर्वदा ।
योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्माऽसौ धृतो भवेत् ॥ १०५ ॥
उपर्य्यधोभावयोगात्त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात् ।
यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ १०६ ॥

धृतन्तु शूलधरणाद्भवत्येव न संशयः । ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवेः ॥१०७
भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते । तस्मात्कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथाच तिलकंशुभम्
आयुष्यञ्चापि भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम् । यजेतज्जुहुयादग्नौजपेद्दद्याज्जितेन्द्रियः

शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णाश्रमविधानवित् ।
एवं परिचरेद्देवान् यावज्जीवं समाहितः ॥ ११० ॥
तेषां स्वस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति ॥ १११ ॥

इतिश्री कूर्म्ममहापुराणे वर्णाश्रमधर्मवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमक्रमवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वर्णाभगमतोद्विष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा । इदानीं क्रममस्मकमाश्रमाणांवदप्रभो!

कूर्म्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा । क्रमेणैवाश्रमाःप्रोक्ताःकारणादन्यथाभवेत्
उत्पन्नज्ञानविज्ञानी वैराग्यं परमंगतः । प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्यात्तु यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥
दारानाहृत्य विधिवदन्यथाविविधैर्मखैः । यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तोयदिसंन्यसेत्
अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथाऽऽत्मजान् ।

न गार्हस्थ्यं गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विजः ॥ ५ ॥
अथवैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे । तत्रैव संन्यसेद्विद्वानिष्ट्वापि द्विजोत्तमः ॥६
तथापि विविधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयन् । तपस्तप्त्वातपोयोगाद्विरक्तः संन्यसेद्बहिः
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत्पुनः । न सन्यासी वनञ्चाथ ब्रह्मचर्यञ्च साधकः
प्राजापत्यान्निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवाद्विजः । प्रव्रजेत्तुगृही विद्वान्वनाद्वाश्रुतिचोदनात्
प्रकर्त्तुमसमर्थोऽपि जुहोति यजतिक्रियाः । अन्धःपङ्गुर्दरिद्रोवाविरक्तःसन्यसेद्द्विजः
सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते । पतत्येवाविरक्तो यःसंन्यासं कर्तुमिच्छति
एकस्मिन्नथवा सम्यग्वर्त्तेतामरणान्तिकम् । श्रद्धावानाश्रमेयुक्तःसोऽमृतत्वायकल्पते
न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः । स्वधर्मपालकोनित्यं ब्रह्मभूयाय कल्पते
ब्रह्मण्याधायकर्म्माणि निःसङ्गःकामवर्जितः । प्रसन्नेनैव मनसाकुर्वाणोयातितत्पदम्
ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते । ब्रह्मैवदीयतेचेतिब्रह्मार्पणमिदं परम् ॥ १५
नाहंकर्त्ता सर्वमेतद्ब्रह्मैव कुरुते तथा । एतद्ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
प्रीणातुभगवानीशः कर्म्मणानेन शाश्वतः । करोतिसततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिदं परम्
यद्वाफलानां संन्यासं प्रकुर्यात्परमेश्वरे । कर्म्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पणमनुत्तमम् ॥१८॥
कार्यमित्येव यत्कर्म्म नियतं सङ्गवर्ज्जितम् । क्रियते विदुषाकर्म्मतद्भवेदपिमोक्षदम्
अथवा यदिकर्म्माणिकुर्यान्नित्यान्यपिद्विजः । अकृत्वाफलसंन्यासंवध्यतेतत्फलेनतु

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्म्माश्रितं फलम् ।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्म्माऽऽप्नोति चिरात्पदम् ॥ २१ ॥

कर्म्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्व्विकं तथा । मनःप्रसादमन्वेति ब्रह्मविज्ञायते नरः

कर्म्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग्योगोऽभिजायते ।
ज्ञानं च कर्म्मसहितं जायते दोषवर्जितम् ॥ २३ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यत्रतत्राश्रमे रतः । कर्म्माणीश्वरतुष्ट्यर्थंकुर्य्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात्
सम्प्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यंतत्प्रसादतः । एकाकीनिर्म्ममःशान्तोजीवन्नेवविमुच्यते
वीक्षते परमात्मानं परंब्रह्म महेश्वरम् । नित्यानन्दो निराभासःतस्मिन्नेवलयंव्रजेत्

तस्मात्सेवेत सततं कर्म्मयोगं प्रसन्नधीः । तृप्तयेपरमेशस्य तत्पदं याति शाश्वतम् ॥
एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । न ह्येतत्समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दतिमानवः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे चातुराश्रम्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

प्राकृतसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

श्रुत्वाऽऽश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टचेतसः । नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन्

मुनय ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । इदानींश्रोतुमिच्छामो यथासम्भवतेजगत्
कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति । नियन्ता कश्चसर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्म्मरूपधृक् ।
प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ४ ॥

कूर्म्म उवाच

महेश्वरःपरोऽव्यक्तः चतुर्व्यूहः सनातनः । अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता सर्व्वतोमुखः ॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानंप्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥ ७ ॥

जगद्योनिर्महाभूतं परब्रह्म सनातनम् । विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत् ॥ ८
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् । असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ ९
गुणसाम्ये तदातस्मिन् पुरुषेवात्मनिस्थिते । प्राकृतःप्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः
ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता ह्यहः सृष्टिरुदाहृता । अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः ॥

निशान्तेप्रतिवुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान् । सर्वभूतमयोऽव्यक्तादन्तर्यामीश्वरः परः
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वरः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ १३ ॥

यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः ।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथाऽसौ योगमूर्त्तिमान् ॥ १४ ॥

सएवक्षोभकोविप्राःक्षोभ्यश्चपरमेश्वरः । ससंकोचविकासाभ्यांप्रधानत्वेव्यवस्थितः
प्रधानात्क्षोभ्यमानाच्च तथापुंसःपुरातनात् । प्रादुरासीन्महद्बीजं प्रधानपुरुषात्मकम्

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।
प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत्स्मृतम् ॥ १७ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः । त्रिविधोऽयमहंकारो महतः संवभूव ह ।

अहंकारोऽभिमानश्च कर्त्ता मन्ता च स स्मृतः ।
आत्मा च मत्परो जीवो गतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ १९ ॥

पञ्चभूतान्यहंकारात्तन्मात्राणिच जज्ञिरे । इन्द्रियाणिचसर्वाणिसर्वंतस्यात्मजंजगत्
मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तंविकारःप्रथमःस्मृतः । येनासौजायतेकर्त्ता भूतादींश्चानुपश्यति
वैकारिकादहंकारात्सर्गोवैकारिकोऽभवत् । तैजसानीन्द्रियाणिस्युर्द्देवावैकारिकादश
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् । भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवद्द्विजाः
भूतादिस्तुविकुर्वाणःशब्दमात्रंससर्ज्जह । आकाशोजायतेतस्मात्तस्यशब्दोगुणोमतः

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज्ज ह ।
वायुरुत्पद्यते तस्मात्तस्य स्पर्शं गुणं विदुः ॥ २५ ॥

वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रंससर्ज्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च ॥ २७ ॥

आपश्चापिविकुर्वाणागन्धमात्रंससर्ज्जिरे । सङ्घातोजायतेतस्मात्तस्यगन्धोगुणोमतः

आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥ २९ ॥

रूपंतथैवाविशतः शब्दस्पर्शौगुणावुभौ । त्रिगुणःस्यात्ततो वह्निःसशब्दस्पर्शरूपवान्

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत् ।

तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥ ३१ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपञ्चरसोगन्धंसमाविशत् । तस्मात्पञ्चगुणाभूमिः स्थूलाभूतेषुशब्द्यते
शान्ता घोराश्चमूढाश्च विशेषास्तेनते स्मृताः । परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्
एतेसप्तमहात्मानोह्यन्योन्यस्यसमाश्रयात् । नाशक्नुवन्प्रजाःस्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नशः
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च । महदादयोविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्तिते
एककालसमुत्पन्नंजलबुद्बुदवच्च तत् । विशेषेभ्योऽण्डमभवद् वृहत्तदुदकेशयम् ॥ ३६

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं परमेष्ठिनः ।

प्राकृतेऽण्डे विवृद्धे तु क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसञ्ज्ञितः ॥ ३७ ॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥
यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात्परतःस्थितम् । हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्त्तिं सनातनम्

मेरुरुल्वमभूत्तस्य जरायुश्चापि पर्वताः ।

गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्परमात्मनः ॥ ४० ॥

तस्मिन्नण्डेऽभवद्विश्वं सदेवासुरमानुषम् । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ संग्रहौसहवायुना
अद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम् । अपोदशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् । आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्
भूतादिर्महतातद्वदव्यक्तेनावृतो महान् । एते लोका महात्मानः सर्वे तत्त्वाभिमानिनः

वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः ।

ईश्वरा योगधर्म्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः ॥ ४५ ॥

सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः । एतैरावरणैरण्डं प्राकृतैः सप्तभिर्वृतम् ॥
एतावच्छक्यतेवक्तुंमायैषा गहनाद्विजाः । एतत्प्राधानिकंकार्यं यन्मया बीजमीरितम्
प्रजापतेःपरा मूर्त्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः । ब्रह्माण्डमेतत्सकलं सप्तलोकबलान्वितम्
द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः । हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः

तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः। रजोगुणमयं चान्यद्रूपं तस्यैव श्रीमतः ॥ ५० ॥
चतुर्मुखस्तु भगवान्जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते। सृष्टञ्च पातिसकलं विश्वात्माविश्वतोमुखः
सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम्।
अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥ ५२ ॥
तमोगुणंसमाश्रित्य रुद्रःसंहरतेजगत्। एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः। एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधागुणैः
योगेश्वरःशरीराणि करोतिविकरोति च। नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया
हिताय चवै भक्तानां स एव ग्रसतेपुनः। त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्येसंप्रवर्तते
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः। यस्मात्सृष्ट्वानुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः
गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्ये तस्मादेकःसउच्यते। अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतःसनातनः
आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ५६ ॥
देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः। बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात्परमेश्वरः
वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः। ऋषिः सर्व्वत्रगत्वेन हरिः सर्व्वहरोयतः
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वास्वयंभूरिति स स्मृतः। नराणामयनंयस्मात्तेन नारायणःस्मृतः
हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते। भगवान्सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः
सर्वज्ञःसर्वविज्ञानात्सर्वःसर्वमयोयतः। शिवःस्यान्निर्म्मलो यस्माद्विभुःसर्वगतोयतः
तारणात्सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते। बहुनाऽत्रकिमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीड़ते परमेश्वरः। इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात्कथितो मया ॥
अबुद्धिपूर्विकां विप्रा! ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत ॥ ६६ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे प्राकृतसर्गवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

———

पञ्चमोऽध्यायः

कालसंख्याविवरणम्

कूर्म्म उवाच

(अनुत्पादाच्च पूर्वस्मात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥ १ ॥

नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः । हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥

भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः ॥ २ ॥

सर्व्वज्ञः सर्व्वविज्ञानात्सर्व्वः सर्व्वमयो यतः ।)

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम् । कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता

स एव स्यात्परः कालस्तदन्ते सृज्यतेपुनः । निजेन तस्यमानेन चायुर्वर्षशतं स्मृतम्

तत्परार्द्धं तदर्द्धं वा परार्द्धमभिधीयते । काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः

काष्ठा त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्त्तिकी गतिः ।

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम् ॥ ७ ॥

अहोरात्राणि तावन्ति मासःपक्षद्वयात्मकः । तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयनेदक्षिणोत्तरे

अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितम् ॥

चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत । चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणांतत्कृतंयुगम्

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु ।

त्रिशतीद्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात् ॥ ११ ॥

अंशकं षट्शतं तस्मात्कृतसन्ध्यांशकैर्विना ।

त्रिद्व्येकधा च साहस्रं विना सन्ध्यांशकेन तु ॥ १२ ॥

त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञानेप्रकीर्त्तितम् । एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकंपरिकल्पितम्

तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते । ब्रह्मणोदिवसे विप्रा मनवश्च चतुर्दश ॥ १४ ॥

स्वायम्भुवादयः सर्वे ततः सावर्णिकादयः । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपासपर्वता
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः । मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ॥
व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पे कल्पे न चैव हि ।
ब्राह्ममेकमहःकल्पस्तावती रात्रिरिष्यते ॥ १७ ॥
चतुर्युगसहस्रंतु कल्पमाहुर्मनीषिणः । त्रीणिकल्पशतानि स्युस्तथाषष्टिर्द्विजोत्तमाः
ब्रह्मणो वत्सरस्तज्ज्ञैः कथितो वै द्विजोत्तमाः ॥
स च कालः शतगुणः परार्द्धं चैव तद्विदुः ॥ १६ ॥
तस्यान्ते सर्वसत्त्वानां सहेतौप्रकृतौलयः । तेनायंप्रोच्यतेसद्भिः प्राकृतः प्रतिसञ्चरः
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लयः । प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः ॥
एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शङ्करः । कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः ।
सर्वगत्वात्स्वतन्त्रत्वात्सर्वात्मत्वान्महेश्वरः ॥ २३ ॥
ब्रह्माणो वहवोरुद्राह्यन्ये नारायणादयः । एकोहिभगवानीशः कालः कविरितिश्रुतिः
एकमत्रव्यतीतंतु परार्द्धं ब्रह्मणो द्विजाः । साम्प्रतं वर्त्ततेत्वर्द्धं तस्य कल्पोऽयमग्रजः
योऽतीतः सोऽन्तिमः कल्पः पाद्म इत्युच्यते बुधैः ।
वाराहो वर्त्तते कल्पस्तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ २६ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे कालसंख्याकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

पृथिव्युद्धारवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् । शान्तवातादिकं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । तदा समभवद्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥ ३ ॥

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम्
आपो नारा इति प्रोक्ता आपोवैनरसूनवः । अयनंतस्य ता यस्मात्तेन नारायणःस्मृतः
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥
ततस्तुसलिलेतस्मिन्विज्ञायान्तर्गतांमहीम् । अनुमानात्तदुद्धारं कर्त्तुं कामःप्रजापति
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः । अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयंब्रह्मसंज्ञितम्
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् । दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः

दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरुषम् ।
अस्तुवञ्जनलोकस्था सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम् ॥ १० ॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने । पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च ॥ ११ ॥
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने । नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने ॥
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवेविश्वयोनये । नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे ॥
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र! शार्ङ्गचक्रासिधारिणे । सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थायनमोनमः

नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये ।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥ १५ ॥

नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतांनमः । अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय कारणायच
नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः ॥ १७
नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे । नमो योगाधिगम्यायनमः संकर्षणायते
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे । नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभागिने
नमोऽस्त्वादित्यरूपाय नमस्ते पद्मयोनये । नमोऽमूर्त्ताय मूर्त्ताय माधवाय नमोनमः
त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम् । पालयैतज्जगत्सर्वं त्राता त्वं शरणंगतिः
इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्टुतः । प्रसादमकरोत्तेषां वराहवपुरीश्वरः ॥

ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ।
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा धराधरः ॥ २३ ॥

तस्योपरि जलौघस्यमहतो नौरिवस्थिता । विततत्वाच्चदेहस्यन महीयातिसम्प्लवम्

पृथिवीं स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ।
प्राक् सर्गदग्धानखिलान्ततः सर्गेऽदधन्मदः ॥ २५ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे पृथिव्युद्धारवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषुयथापुरा । अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः
तमोमोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसञ्ज्ञितः । अविद्यापञ्चमीतेषांप्रादुर्भूतामहात्मनः

पञ्चधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
संवृतस्तमसा चैव बीजकुम्भवदावृतः ॥ ३ ॥

बहिरन्तश्चाप्रकाशस्तब्धोनिःसञ्ज्ञएवच । मुख्यानगाइतिप्रोक्तामुख्यसर्गस्तुस स्मृतः

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरंप्रभुः । तस्याभिध्यायतःसर्गं तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्त्तत

यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतः ततः स्मृतः ।

पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वासर्गमन्यंससर्ज्ज ह । ऊर्द्धस्रोत इतिप्रोक्तो देवसर्गस्तुसात्त्विकः

ते सुखप्रीतिवहुला वहिरन्तस्त्वनावृताः । प्रकाशा वहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।

प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ ६ ॥

तत्र प्रकाशवहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।

दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्भगवानजः । तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्

तेपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरताःपुनः । खादिनश्चाप्यशालाश्च भूताद्याःपरिकीर्त्तिताः

इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः । प्रथमोमहतःसर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूत सर्गो हि संस्मृतः ।

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो वुद्धिपूर्व्वकः ।

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥

तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ।

तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥

ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥

नवमश्चैवकौमारःप्राकृतावैकृतास्त्विमे । प्राकृतास्तुत्रयःपूर्व्वेसर्गास्तेवुद्धिपूर्व्वकाः

वुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्तेमुख्याद्यामुनिपुङ्गवाः । अग्रेससर्ज्जवैब्रह्मामानसानात्मनःसमान्

सनकं सनातनं चैवतथैवचसनन्दनम् । क्रतुं (ऋभुं) सनत्कुमारंचपूर्व्वमेवप्रजापतिः

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः । ईश्वरासक्तमनसोनसृष्टौदधिरे मतिम्

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः । मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः
सम्बोधयामास च तं जगन्मायो महामुनिः । नारायणोमहायोगीयोगिचित्तानुरञ्जनः
बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः । स तप्यमानो भगवान्नकिञ्चित्प्रत्यपद्यत
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत ।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥ २५ ॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्परमेष्ठिनः । समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः
सएवभगवानीशस्तेजोराशिःसनातनः । यं प्रपश्यन्तिविद्वांसःस्वात्मस्थंपरमेश्वरम्
ॐकारं समनुस्मृत्य प्रणम्यचकृताञ्जलिः । तमाहभगवान्ब्रह्मासृजेमाविविधाःप्रजाः
निशम्य भगवद्वाक्यं शङ्करो धर्म्मवाहनः । आत्मना सदृशान्रुद्रान्ससर्जमनसाशिवः
कपर्द्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान्नीललोहितान् ॥ २६ ॥
तंप्राहभगवान्ब्रह्माजन्ममृत्युयुताःप्रजाः । सृजेतिसोऽब्रवीदीशोनाहंमृत्युजरान्विताः
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ ! सृजत्वमशुभाः प्रजाः । निवार्यसतदा रुद्रं ससर्जकमलोद्भवः
स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान्निबोधत ।
आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा ॥ २२
नद्यः समुद्राःशैलाश्चवृक्षावीरुधएव च । लवाः काष्ठाः कलाश्चैवमुहूर्त्तादिवसाःक्षपाः
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः । स्थानाभिमानिनःसृष्ट्वा साधकानसृजत्पुनः
मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्म्मंसङ्कल्पमेव च
प्राणाद्ब्रह्माऽसृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां चमरीचिनम् । शिरसोऽङ्गिरसंदेवोहृदयाद्भृगुमेवच
नेत्राभ्यामत्रिनामानं धर्म्मं च व्यवसायतः । सङ्कल्पंचैव सङ्कल्पात्सर्वलोकपितामहः
पुलस्त्यंचतथोदानाद्व्यानाच्चपुलहंमुनिम् । अपानात्क्रतुमव्यग्रंसमानाच्चवसिष्ठकम्
इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाःसाधकागृहमेधिनः । आस्थाय मानवं रूपं धर्म्मस्तैःसम्प्रवर्त्तितः
ततोदेवासुरपितृन्मनुष्यांश्चचतुष्टयम् । सिसृक्षुर्भगवानीशःस्वमात्मानमयोजयत्
युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्युद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः । ततोऽस्यजघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेसुताः

उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तमः । साचोत्सृष्टातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत

सा तमोबहुला यस्मात्प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः ।
सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यां गृहीतवान् ॥ ४३ ॥
ततोऽस्यमुखतो देवादीव्यतःसम्प्रजज्ञिरे । त्यक्तासापितनुस्तेनसत्त्वप्रायमभूद्दिनम्
तस्मादहो धर्म्मयुक्ता देवताःसमुपासते । सत्त्वमात्रात्मिकामेवततोऽन्यांजगृहेतनुम्
पितृवन्मन्यमानस्यपितरः सम्प्रजज्ञिरे । उत्ससर्ज पितृन्सृष्ट्वाततस्तामपिविश्वदृक्
साऽपविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत ।
तस्मादहर्द्देवतानां रात्रिः स्याद्देवविद्विषाम् ॥ ४७ ॥
तयोर्मध्येपितृणांतुमूर्त्तिःसन्ध्यागरीयसी । तस्माद्देवासुराःसर्वेमुनयोमानवास्तदा
उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम् ।
रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यां ततोऽसृजत् ॥४६ ॥
ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः । तामथाशु सतत्याजतनुं सद्यःप्रजापतिः
ज्योत्स्ना सा चाऽभवद्विप्राः प्राक्सन्ध्या याऽभिधीयते ।
ततः स भगवान्ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुङ्गवाः !॥ ५१ ॥
मूर्त्ति तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्यपूजयत् । अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्यजज्ञिरे
पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्तेनिशाचराः । सर्पायक्षास्तथाभूतागन्धर्वाःसम्प्रजज्ञिरे
रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत्प्रभुः ।
वयांसि वयसः सृष्ट्वा अवीन्वै वक्षसोऽसृजत् ॥ ५४ ॥
मुखताऽजान् ससर्जान्यान् उदराद्गाश्च निर्म्ममे ।
पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गान्रासभान् गवयान्मृगान् ॥ ५५ ॥
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव अरत्नैश्च प्रजापतिः । ओषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे
गायत्रं चऋचश्चैव त्रिवृत्स्तोमंरथन्तरम् । अग्निष्टोमंच यज्ञानां निर्ममेप्रथमान्मुखात्
यजूंषि त्रैष्टुभंछन्दोस्तोमं पञ्चदशंतथा । बृहत्सामतथोक्थञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात्
सामानि जागतं छन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा । वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च । अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥ ६०॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे। ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तुप्रजापतेः

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसः शुभाः।
सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम् ॥ ६२ ॥

ततोऽसृजच्चभूतानि स्थावराणिचराणि च। नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान्
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयंस्थावरजङ्गमम्। तेषांयेयानि कर्माणि प्राक्सृष्टेःप्रतिपेदिरे
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनःपुनः। हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते। महाभूतेषु नानात्वमिद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु
विनियोगं च भूतानांधातैवव्यदधात्स्वयम्। नामरूपं च भूतानां प्राकृतानांप्रपञ्चनम्
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः। आर्षाणिचैव नामानि याश्च वेदेषु सृष्टयः

शर्वयन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः।
यावन्ति प्रतिलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये ॥ ६६ ॥
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ ७० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे सृष्टिप्रकरणवर्णनंनाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

मुख्यादिसर्गकथनम्

कूर्म्म उवाच

एवंभूतानिसृष्टानि स्थावराणिचराणिच। यदास्यताःप्रजाःसृष्टानव्यवर्द्धन्त धीमतः
तमोमात्रावृतो ब्रह्मातदाशोचत दुःखितः। ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्
अथात्मनिसमद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्। रजःसत्त्वंचसंवृत्तं वर्त्तमानंस्वधर्म्मतः
तमस्तु व्यनुदत्पश्चाद्रजः सत्त्वेन संयुतः। ततमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत ॥

अधर्माचरणोविप्रा हिंसाचाशुभलक्षणा । स्वांतनुं सततोब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्
द्विधाकरोत्पुनर्द्देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् । अर्द्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ६

नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम् ।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता ॥ ७ ॥

योगैश्वर्य्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता । योऽभवत्पुरुषात्पुत्रो विराड्व्यक्तजन्मनः ॥
स्वायंभुवोमनुर्द्देवः सोऽभवत्पुरुषोमुनिः । सा देवी शतरूपाख्यातपःकृत्वासुदुश्चरम्
भर्त्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत । तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥ १० ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम् । तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददे पुनः
प्रजापतिरथाकूतिं मानसो जगृहे रुचिः । आकूत्यामिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेःशुभम्
यज्ञस्यदक्षिणां चैवयाभ्यांसंवर्द्धितं जगत् । यज्ञस्य दक्षिणायां चपुत्राद्वादशजज्ञिरे
यामाइतिसमाख्याता देवाःस्वायंभुवेऽन्तरे । प्रसूत्यांचतथा दक्षश्चतस्रोविंशतितथा

ससर्ज्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥ १५ ॥
बुद्धिर्ल्लज्जा वपुः शान्तिःसिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणीः शुभाः ॥ १६ ॥
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।
ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ १७ ॥

सन्ततिश्चानसूयाचऊर्ज्जास्वाहास्वधातथा । भृगुर्भवोमरीचिश्च तथाचैवाङ्गिरामुनिः
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित् । अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्

ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो ज्ञानसत्तमाः ।
श्रद्धाया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ॥ २० ॥
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते ।
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः शमस्तथा ॥ २१ ॥

क्रियायाश्चाभवत्पुत्रो दण्डश्चनय एवच । बुद्ध्याबोधः सुतस्तद्वदप्रमादोऽप्यजायत

लज्जायाविनयःपुत्रो वपुषोऽव्यवसायकः । क्षेमःशान्तिसुतश्चापि सिद्धःसिद्धेरजायत
यशः कीर्त्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्म्मसूनवः । कामस्यहर्षः पुत्रोऽभूद्देवानन्दोऽप्यजायत

इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्म्मस्य कीर्त्तितः ।

जज्ञे हिंसा त्वधर्म्माद्वै निकृतिं चानृतं सुतम् ॥ २७ ॥

निकृतेस्तनयो यज्ञे भयं नरकमेव च । माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ॥
भयाज्जज्ञेऽथवैमाया मृत्युं भूतापहारिणम् । वेदनाचसुतंचापि दुःखंजज्ञेऽथरौरवात्

मृत्योर्व्याधिर्जराशोकौ तृष्णा क्रोधश्च जज्ञिरे ।

दुःखोत्तराःस्मृता ह्येते सर्वे चाधर्म्मलक्षणाः ॥ २८ ॥

नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वेतेह्यूर्द्ध्वरेतसः । इत्येषतामसः सर्गोजज्ञे धर्म्मनियामकः

संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुङ्गवाः ॥ ३० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे मुख्यादिसर्गकथनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पद्मोद्भवप्रादुर्भावविवर्णनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनंनारदाद्या महर्षयः । प्रणम्यवरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः

मुनय ऊचुः

कथितोभवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्द्दन ! । इदानीं संशयं चेममस्माकं छेत्तुमर्हसि॥
कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् । पुत्रत्वमगमच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः । अण्डतो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि

कूर्म्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शङ्करस्यामितौजसः । पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम् । आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न चर्षयः
तत्र नारायणो देवो निर्ज्जने निरुपप्लवे । आश्रित्य शेषशयनं सुष्वापपुरुषोत्तमः ॥
सहस्रशीर्षा भूत्वाससहस्राक्षःसहस्रपात् । सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः ।

ततो विभूतियोगात्मा योगिनां तु दयापरः ॥ ६ ॥

कदाचित्तस्यसुप्तस्यलीलार्थंदिव्यमद्भुतम् । त्रैलोक्यसारंविमलंनाभ्यांपङ्कजमुद्बभौ

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।

दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ ११ ॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्त्तमानस्य शार्ङ्गिणः । हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे
सतंकरेणविश्वात्मा समुत्थाप्यसनातनम् । प्रोवाचमधुरंवाक्यं माययातस्यमोहितः
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते । एकाकी को भवांश्चेति ब्रूहि मे पुरुषर्षभ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः । उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः
भोभो नारायणं देवलोकानांप्रभवाव्ययम् । महायोगीश्वरं मांवै जानीहिपुरुषोत्तमम्
मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामहः । सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्
एवमाभाष्य विश्वात्माप्रोवाचपुरुषंहरिः । जानन्नपि महायोगी को भवानितिवेधसम्

ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।

प्रत्युवाचाऽम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा ॥ १६ ॥

अहंधाताविधाता चस्वयम्भूःप्रपितामहः । मय्येवसंस्थितंविश्वं ब्रह्माहंविश्वतोमुखः
श्रुत्वा वाचंसभगवान्विष्णुः सत्यपराक्रमः । अनुज्ञाप्याथयोगेन प्रविष्टोब्रह्मणस्तनुम्
त्रैलोक्यमेतत्सकलं सदेवासुरमानुषम् । उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।

अथापि भगवान्विष्णुः पितामहथाब्रवीत् ॥ २३ ॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् । प्रविश्य लोकान्पश्यैतान्विचित्रान्पुरुषर्षभ
ततः प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च । श्रीपतेरुदरम्भूयः प्रविवेशाकुशध्वजः

तानेव लोकान्गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः । पर्यटित्वाथ देवस्य ददृशेऽन्तं नवैहरेः
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना । जनार्द्दनेनब्रह्मासौ नाभ्यांद्वारमविन्दत

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डजः ।
उज्जहाराऽऽत्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥ २८ ॥

विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः । ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः ॥
समन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम् । प्रोवाच विष्णुं पुरुषं मेघगम्भीरयागिरा
कृतंकिं भवतेदानीमात्मनोजयकांक्षया । एकोऽहंप्रबलो नान्यो मावैकोभिभविष्यति
श्रुत्वा नारायणो वाक्यंब्रह्मणोक्तमतन्द्रितः । सान्त्वपूर्वमिदंवाक्यं बभाषेमधुरं हरिः

भवान्धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः ।
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणिपिहितानि मे ॥ ३३ ॥
किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वां बाधितुमिच्छया ।
को हि बाधितुमन्विच्छेद्देवदेवं पितामहम् ॥ ३४ ॥

नहित्वंबाध्यसेब्रह्मन् मान्योहिसर्वथा भवान् । ममक्षमस्वकल्याण यन्मयापकृतं तव
अस्माच्च कारणाद्ब्रह्मन्पुत्रोभवतुमेभवान् । पद्मयोनिरितिख्यातोमत्प्रियार्थंजगन्मय
ततः स भगवान्देवो वरं दत्त्वा किरीटिने । प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत ॥
भवान्सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः । सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम्
अहं वै सर्वलोकानामात्मालोको महेश्वरः । मन्मयं सर्व्वमेवेदं ब्रह्मणः पुरुषः परः ॥
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानांपरमेश्वरः । एकामूर्तिर्द्विधाभिन्नानारायणपितामहौ
तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् । इयंप्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति
किं न पश्यसियोगेन ब्रह्माधिपतिमव्ययम् । प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम् ॥

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः साङ्ख्या अपि महेश्वरम् ।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज ॥ ४३ ॥

ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्माप्रोवाच केशवम् । भगवन्नूनमात्मानं वेद्मितत्परमाक्षरम्
ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम् । नावाभ्यां विद्यतेह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः



सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

—:※:—

तानेव लोकान्गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः । पर्यटित्वाथ देवस्य ददृशेऽन्तं नवैहरेः
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना । जनार्द्दनेनब्रह्मासौ नाभ्यांद्वारमविन्दत

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डजः ।
उज्जहाराऽऽत्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥ २८ ॥

विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः । ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः ॥
समन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम् । प्रोवाच विष्णुं पुरुषं मेघगम्भीरयागिरा
कृतंकिं भवतेदानीमात्मनोजयकांक्षया । एकोऽहंप्रबलो नान्यो मांवैकोभिभविष्यति
श्रुत्वा नारायणो वाक्यंब्रह्मणोक्तमतन्द्रितः । सान्त्वपूर्वमिदंवाक्यं बभाषेमधुरं हरिः

भवान्धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः ।
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणिपिहितानि मे ॥ ३२ ॥
किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वां बाधितुमिच्छया ।
को हि बाधितुमन्विच्छेद्देवदेवं पितामहम् ॥ ३४ ॥

नहित्वंबाध्यसेब्रह्मन् मान्योहिसर्वथा भवान् । ममक्षमस्वकल्याण यन्मयापकृतं तव
अस्माच्च कारणाद्ब्रह्मन्पुत्रोभवतुमेभवान् । पद्मयोनिरितिख्यातोमत्प्रियार्थंजगन्मय
ततः स भगवान्देवो वरं दत्त्वा किरीटिने । प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत ॥
भवान्सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः । सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम्
अहं वै सर्वलोकानामात्मालोको महेश्वरः । मन्मयं सर्व्वमेवेदं ब्रह्मणः पुरुषः परः ॥
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानांपरमेश्वरः । एकामूर्तिर्द्विधाभिन्नानारायणपितामहौ
तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् । इयंप्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति
किं न पश्यसियोगेन ब्रह्माधिपतिमव्ययम् । प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम् ॥

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः साङ्ख्या अपि महेश्वरम् ।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज ॥ ४३ ॥

ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्माप्रोवाच केशवम् । भगवन्नूनमात्मानं वेद्मितत्परमाक्षरम्
ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम् । नावाभ्यां विद्यतेह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय ।
तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वाऽपि स तदा प्रभुः ॥ ४६ ॥
मामैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः । न मे ह्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहंवदामि ते
किन्तुमोहयति ब्रह्मन्ननन्ता पारमेश्वरी । मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा ॥४८
एतावदुक्त्वा भगवान्विष्णुस्तूष्णींबभूवह । ज्ञात्वाततपरमंतत्वंस्वमात्मानंसुरेश्वरः
कुतोह्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः । प्रसादं ब्रह्मणेकर्तुं प्रादुरासीत्ततो हरः ॥५०
ललाटनयनो देवो जटामण्डलमण्डितः । त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः
विद्याविलासग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः ।
मालामत्यद्भुताकारां धारयन्पादलम्बिनीम् ॥ ५२ ॥
तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मालोकपितामहः । मोहितो माययात्यर्थं पीतवाससमब्रवीत्
क एष पुरुषो नीलः शूलपाणिस्त्रिलोचनः । तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्द्दन
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्द्दनः । अपश्यर्दीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि
ज्ञात्वा तं परमं भावमैश्वरं ब्रह्मभावनः । प्रोवाचोत्थाय भगवान्देवदेवं पितामहम् ॥
अयं देवो महादेवः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान् ॥ ५७ ॥
शङ्करः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः । भूतानामधिपो योगी महेशोविमलःशिवः
एषधाता विधाता च प्रधानः प्रभुरव्ययः । यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेनभाविताः
सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा । कालोभूत्वा महादेवःकेवलोनिष्कलःशिवः
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः । वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायातिशङ्करः
अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम् । वासुदेवाभिधानं मामवेहि प्रपितामह
किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् । दिव्यं भवतुतेचक्षुर्येनद्रक्ष्यसितत्परम्
लब्ध्वा चैवं तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामहः । बुबुधे परमंज्ञानं पुरतः समवस्थितम्
स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः । प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम् ॥६५

ओङ्कारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना । अथर्वशिरसादेवं तुष्टावच कृताञ्जलिः

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः । अवाप परमांप्रीतिं व्याजहारस्मयन्निव ॥
मत्समस्त्वंनसन्देहोवत्स! भक्तश्चमेभवान् । मयैवोत्पादितःपूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययः
त्वमात्माह्यादिपुरुषो ममदेहसमुद्भवः । वरंवरय विश्वात्मन्वरदोऽहं तवानघ ॥ ६६॥
स देवदेववचनं निशम्यकमलोद्भवः । निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्योवाच शङ्करम्
भगवन्भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते !। त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशंसुतम्
मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया । न जाने परमंभावंयाथातथ्येनतेशिव
त्वमेव देवभक्तानां माता भ्राता पितासुहृत् । प्रसीदतवपादाब्जं नमामि शरणागतः
स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथोवृषध्वजः । व्याजहार तदापुत्रं समालोक्यजनार्द्दनम्
यदर्थितं भगवता तत्करिष्यामि पुत्रक! । विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यतितवानघम्
त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्त्ता नियोजितः । कुरुष्वतेषु देवेश मायां लोकपितामह
एषनारायणो मत्तो ममैव परमा तनुः । भविष्यति तवेशान योगक्षेमवहो हरिः ॥७७
एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतः स परमेश्वरः । संस्पृश्य देवं ब्रह्माणंहरिं वचनमब्रवीत्

तुष्टोऽस्मि सर्वथाऽहं ते भक्तस्त्वं च जगन्मय !।
वरं वृणीष्व नावाभ्यामन्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७९ ॥

श्रुत्वाऽथ देववचनं विष्णुर्विश्वमयंजगत् । प्राह प्रसन्नयावाचासमालोक्यचतन्मुखम्
एषएव वरः श्लाघ्योयदहं परमेश्वरम् । पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि ॥
तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत । भवान्सर्वस्य कार्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम्
त्वन्मयं मन्मयं चैव सर्वमेतन्न संशयः । भवान्सोमस्त्वहं सूर्यो भवान्रात्रिरहंदिनम्
भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च । भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान्मायाहमीश्वरः ॥

भवान्विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः ।
योऽहं स निष्कलो देवः सोऽसि नारायणः प्रभुः ॥ ८५ ॥
एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः ।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन्न योगी मामुपैष्यति ॥
पालयैतज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥ ८६ ॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः स्वमायया मोहितभूतभेदः ।
जगाम जन्मर्द्धिविनाशहीनं धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः ॥ ८७ ॥

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

———

दशमोऽध्यायः

रुद्रसृष्टिवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

गते महेश्वरे देवे भूय एव पितामहः । तदेव सुमहत्पद्मं भेजेनाभिसमुत्थितम् ॥ १ ॥
अथदीर्घेणकालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ । महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२॥
क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ । कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः । त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि
तदस्यवचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः । आज्ञापयामासतयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ ॥५॥

तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद्द्विजाः !।
व्यजयत्कैटभं जिष्णुः विष्णुश्च व्यजयन्मधुम् ॥ ६ ॥

ततःपद्मासनासीनं जगन्नाथः पितामहम् । वभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः
अस्मान्मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो । नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयंगुरुम्

ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः ।
अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूतोऽथ विष्णुना ॥ ९ ॥

सह तेनतथाविश्य शङ्खचक्रगदाधरः । ब्रह्मानारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा
सोऽनुभूय चिरंकालमानन्दं परमात्मनः । अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसञ्ज्ञितम्
ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वादेवश्चतुर्मुखः । ससर्जसृष्टितद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः
पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा । सभुं सनत्कुमारञ्च पूर्वजं तं सनातनम् ॥

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः । विदित्वापरमंभावं ज्ञानेविद्धिरेमतिम्
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः । बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः ॥ १५
ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्त्तिः सनातनः । व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम्

विष्णुरुवाच

कच्चिन्नु विस्मृतोदेवः शूलपाणिः सनातनः । यदुक्तो वै पुराशम्भुःपुत्रत्वे भवशङ्कर
प्रयुक्तवान् मनोयोऽसौपुत्रत्वेनतुशङ्करः । अवापसञ्ज्ञांगोविन्दात्पद्मयोनिःपितामहः
प्रजाः स्रष्टुं मनश्चक्रे तपः परमदुस्तरम् । तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत
ततोदीर्घेणकालेनदुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत । क्रोधाविष्टस्यनेत्राभ्यांप्रापतन्नश्रुबिन्दवः
ततस्तेभ्यः समुद्भूताःभूताःप्रेतास्तदाभवन् । सर्वांस्तानग्रतोदृष्ट्वाब्रह्मात्मानमविन्दत
जहौप्राणांश्चभगवान्क्रोधाविष्टःप्रजापतिः । तदाप्राणमयोरुद्रःप्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्
सहस्रादित्यसङ्काशोयुगान्तदहनोपमः । रुरोद सुस्वरङ्घोरं देवदेवः स्वयं शिवः ॥
रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत । रोदनाद्रुद्रइत्येवंलोके ख्यातिं गमिष्यसि

अन्यानि सप्तनामानि पत्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान् ।
स्थानानि तेषामष्टानां ददौ लोकपितामहः ॥ २५ ॥

भवः सर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च । भीमश्चोग्रोमहादेवस्तानि नामानि सप्तवै ॥
सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च । दीक्षितोब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्त्तयः ॥
स्थानेष्वेतेषु ये रुद्रान्ध्यायन्ति प्रणमन्ति च । तेषामष्टतनुर्द्देवो ददाति परमं पदम्

सुवर्च्चला तथैवोमा विकेशी च शिवा तथा ।
स्वाहादिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नयः ॥ २९ ॥
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चैषां सुताः स्मृताः ॥ ३० ॥

एवम्प्रकारो भगवान्देवदेवो महेश्वरः । प्रजाधर्म्मञ्च कामञ्चत्यक्त्वा वैराग्यमाश्रितः
आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः । पीत्वातदक्षरं ब्रह्मशाश्वतंपरमामृतम्
प्रजाःसृजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।

स्वात्मना सदृशान्रुद्रान् ससर्ज्ज मनसा शिवः ॥ ३३ ॥

कपर्द्दिनो निरातङ्कान्नीलकण्ठान् पिनाकिनः ।

त्रिशूलहस्तान्रुद्रिक्तान् सदानन्दांस्त्रिलोचनान् ॥ ३४ ॥

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान् । वीतरागांश्चसर्व्वज्ञान् कोटिकोटिशतान्प्रभुः
तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्म्मलान्नीललोहितान् । जरामरणनिर्मुक्तान्व्याजहारहरंगुरुः
मास्राक्षीरीदृशीर्द्देव प्रजामृत्युविवर्जिताः । अन्याःसृजस्वभूतेशजन्ममृत्युसमन्विताः
ततस्तमाह भगवान् कपर्द्दीकामशासनः । नास्तिमेतादृशःसर्गःसृजत्वंविविधाःप्रजाः
ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते शुभाः प्रजाः । स्वात्मजैरेव तैरुद्रैर्निवृत्तात्माह्यतिष्ठत
स्थाणुत्वं तेनतस्यासीद्देवदेवस्य शूलिनः । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपःसत्यंक्षमा धृतिः
द्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च । अव्ययानिदशैतानिनित्यंतिष्ठन्तिशङ्करे
एवं स शङ्करः साक्षात्पिनाकी परमेश्वरः । ततःस भगवान्ब्रह्मावीक्ष्यदेवंत्रिलोचनम्
सहैव मानसै रुद्रैः प्रीतिविस्फारलोचनः । ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा ॥

तुष्टाव जगतामीशं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव! नमस्ते परमेश्वर !॥ ४४ ॥

नमः शिवायदेवाय नमस्तेब्रह्मरूपिणे । नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ॥
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतयेनमः । नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ॥४६॥
नमःपिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमोनमः । नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं ब्रह्मणे जनकाय ते ॥
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने । नमोवेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ॥ ४८
वेदान्तसारसाराय नमोवेदात्ममूर्त्तये । नमो बुद्धाय रुद्राय योगिनां गुरवे नमः ॥४९
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते । नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ॥
त्र्यम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेष्ठिने । नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमोमुण्डायदण्डिने
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमस्ताराय तीर्थाय नमोयोगर्द्धिहेतवे ॥
नमोऽधर्म्मादिगम्याय योगगम्याय ते नमः । नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासायते नमः

ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने । त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ! । त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः । त्वमक्षरंपरंज्योतिस्त्वंकालःपरमेश्वरः
त्वमेवपुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा । भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहङ्कार एव च

यस्यरूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसञ्ज्ञितम् ।
यस्यद्यौ रभवन्मूर्द्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः ॥ ५८ ॥
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ।
सन्तापयति यो नित्यं स्वभाभिर्भासयन् दिशः ॥ ५६ ॥

ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः । हव्यं वहति योनित्यंरौद्रीतेजोमयीतनुः

कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः ।
आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ॥ ६१ ॥

पीयते देवतासङ्घैस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः । बिभर्त्त्यशेषभूतानि यान्तश्चरतिसर्व्वदा
शक्तिर्म्माहेश्वीतुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः । सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्म्मानुरूपतः
आत्मन्यवस्थितिस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः । यः शेतेशेषशयनेविश्वमावृत्यमायया
स्वात्मानुभूतियोगेनतस्मैविष्ण्वात्मनेनमः।बिभर्त्तिशिरसानित्यंद्विसप्तभुवनात्मकम्

ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः ।
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा देव्यैकसाक्षिकम् ॥ ६६ ॥

नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मैरुद्रात्मने नमः । योऽन्तरा सर्वभूतानांनियन्तातिष्ठतीश्वरः
यस्यकेशेषु जीमूता नद्यःसर्व्वाङ्गसन्धिषु । कुक्षौसमुद्राश्चत्वारस्तस्मैतोयात्मनेनमः
तं सर्वसाक्षिणं देवंनमस्येविश्वतस्तनुम् । यं विनिद्राजितश्वासाःसन्तुष्टाःसमदर्शिनः

ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मैयोगात्मने नमः ।
यया सन्तरते मायां योगी सङ्क्षीणमलषः ॥ ७० ॥

अपारतरपर्य्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः । यस्य भासाविभात्यर्कोमहोयत्तमसःपरम्
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं तद्रूपं पारमेश्वरम् । नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम्

प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम् । एवंस्तुत्वा महादेवं ब्रह्मातद्भावभावितः ॥ ७३

प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्मसनातनम् ।

ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम् ॥ ७४ ॥

ऐश्वरं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः । कराभ्यांकोमलाभ्यांचसंस्पृश्यप्रणतार्त्तिहा
व्याजहार स्मयन्नेव सोऽनुगृह्य पितामहम् । यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वेभवतामम

कृतं मया तत्सकलं सृजस्व विविधं जगत् ।

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया ॥ ७७ ॥

सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः । स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्म्मितः
ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तमः । तस्यदेवाधिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः ॥
सम्बभूवाथ रुद्रोवा सोऽहंतस्यपरातनुः । ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः

विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शङ्करः स्थितः ।

तथाऽन्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि च ॥ ८१ ॥

अरूपःकेवलः स्वस्थो महादेवः स्वभावतः । य एभ्यःपरतोदेवस्त्रिमूर्त्तिः परमातनुः
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा । तस्याएवपरांमूर्त्तिमामवेहि पितामह
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानं तेजोयोगसमन्वितम् । सोऽहं ग्रसामिसकलमधिष्ठायतमोगुणम्
कालोभूत्वानमनसामामन्योऽभिभविष्यति । यदायदाहिमांनित्यंविचिन्तयसिपद्मज
तदातदा मे सान्निध्यंभविष्यतितवानघ । एतावदुक्त्वाब्रह्माणंसोऽभिवन्द्य गुरुं हरः
सहैव मानसैःपुत्रैःक्षणादन्तरधीयत । सोऽपि योगं समास्थायससर्ज विविधंजगत्
नारायणाख्योभगवान्यथापूर्वंप्रजापतिः । मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वशिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया । नवब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयो मतः ॥

सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधकाः ब्रह्मवादिनः ॥ ८६ ॥

सङ्कल्पञ्चैव धर्म्मञ्च युगधर्म्मांश्च शाश्वतान् ।

स्थानाभिमानिनः सर्वान्यथा ते कथितं पुरा ॥ ९० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे रुद्रसृष्टिवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

देव्यवतारवर्णनम्

कूर्म उवाच

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन्देवदेवः पितामहः । सहैवमानसैः पुत्रैस्तताप परमन्तपः ॥१॥
तस्यैवतपतीवक्त्राद्रुद्रःकालाग्निसम्भवः । त्रिशूलपाणिरीशानःप्रादुरासीत्त्रिलोचनः
अर्द्धनारीनरवपुःदुष्प्रेक्ष्योतिभयङ्करः । विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्माचान्तर्द्धेभयात्
तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वंतथाकरोत् । बिभेद पुरुषत्वञ्चदशधाचैकधापुनः
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः । कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः
सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः ।
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैःसितैः ॥ ६ ॥
तावैविभूतयोविप्राविश्रुताःशक्तयोभुवि । लक्ष्म्यादयोयद्वपुषाविश्वंव्याप्नोतिशाङ्करी
विभज्य पुनरीशानी स्वात्मांशमकरोद्द्विजाः । महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता ·
तामाह भगवान्ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव । सापितस्यनियोगेन प्रादुरासीत्प्रजापतेः
नियोगाद् ब्रह्मणोदेवीं ददौ रुद्राय तां सतीम् ।
दाक्षीं रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत् ॥ १० ॥
प्रजापतिविनिर्द्देशात्कालेन परमेश्वरी । विभज्य पुनरीशानी आत्मानं शङ्कराद्विभोः
मेनायामभवत्पुत्री तदा हिमवतःसती । स चापि पर्व्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम्
हिताय सर्वदेवानां त्रैलोक्यस्यात्मनो द्विजाः । सैषामाहेश्वरीदेवीशङ्करार्द्धशरीरिणी
शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता । तस्याः प्रभावमतुलं सर्वेदेवाः सवासवाः
वदन्ति मुनयो वेत्ति शङ्करो वास्वयंहरिः । एतद्वः कथितं विप्राः पुत्रत्वं परमेष्ठिनः
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शङ्करस्यामितौजसः ॥ १६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे देव्यवतारवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनपूर्वकंदेवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनम्

सूत उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्म्मरूपेण भाषितम् । विष्णुनापुनरेवेमं प्रपच्छुःप्रणता हरिम्

ऋषय ऊचुः

कैषाभगवतीदेवी शङ्करार्द्धशरीरिणी । शिवा सती हैमवती यथावद्ब्रूहि पृच्छताम्

तेषां तद्वचनंश्रुत्वामुनीनांपुरुषोत्तमः । प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वंपरमम्पदम्

कूर्म्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभने । रहस्यमेतद्विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

साङ्ख्यानांपरमंसाङ्ख्यंब्रह्मविज्ञानमुत्तमम् । संसारार्णवमग्नानांजन्तूनामेकमोचनम्

या सा माहेश्वरीशक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा । व्योमसंज्ञा परा काष्ठासेयं हैमवती मता

शिवासर्व्वगतानन्तागुणातीतातिनिष्कला । एकानेकविभागस्थाज्ञानरूपातिलालसा

अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा ।

स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला ॥ ८ ॥

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः । परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ ॥

सेयं करोति सकलं तस्याः कार्य्यमिदंजगत् । नकार्य्यंनापिकरणमीश्वरस्येतिसूरयः

चतस्रःशक्तयोदेव्यास्वरूपत्वेनसंस्थिताः । अधिष्ठानवशात्तस्याःशृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः

शान्तिर्विद्याप्रतिष्ठाचनिवृत्तिश्चेतिताःस्मृताः । चतुर्व्यूहस्ततोदेवःप्रोच्यतेपरमेश्वरः

अनया परयादेवः स्वात्मानन्दंसमश्नुते । चतुर्ष्वपि च वेदेषुचतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥१३॥

अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्य्यमतुलंमहत् । तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना

सैषा सर्व्वेश्वरीदेवी सर्व्वभूतप्रवर्तिका । प्रोच्यते भगवान् कालोहरिःप्राणोमहेश्वरः

तत्र सर्व्वमिदंप्रोतमोतञ्चैवाखिलंजगत् । स कालोऽग्निर्हरो रुद्रो गीयते वेदवादिभिः

कालःसृजतिभूतानिकालःसंहरतिप्रजाः । सर्वे कालस्यवशगा न कालःकस्यचिद्वशः
प्रधानंपुरुषस्तत्त्वंमहानात्मात्वहंकृतिः । कालेनान्यानितत्त्वानि समाविष्टानियोगिना
तस्य सर्व्वजगन्मूर्त्तिः शक्तिर्मायेति विश्रुता । तदेयंभ्रामयेदीशो मायावीपुरुषोत्तमः

सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्व्वाकारा सनातनी ।
विश्वरूपं महेशस्य सर्व्वदा सम्प्रकाशयेत् ॥ २० ॥
अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्म्मिताः ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरितित्रयम ॥ २१ ॥

सर्वासामेवशक्तीनांशक्तिमन्तोविनिर्म्मिताः । माययैवाथविप्रेन्द्राःसाचानादिरनश्वरा
सर्व्वशक्त यात्मिकामायादुर्निवारादुरत्यया । मायावीशर्वशक्तीशः कालःकालकरःप्रभुः
करोतिकालः सकलंसंहरेत्कालएव हि । कालः स्थापयतेविश्वंकालाधीनमिदञ्जगत्

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सन्निधिं परमेष्ठिनः ।
अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भोः कालात्मनः प्रभोः ॥ २५ ॥

प्रधानं पुरुषो माया माया सैव प्रपद्यते । एका सर्वगतानन्ताकेवला निष्कला शिवा

एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यतेशिवः ।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः ॥ २७ ॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः । अभेदञ्चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः
शक्तयोगिरिजादेवी शक्तिमानथशङ्करः । विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः
भोग्या विश्वेश्वरीदेवी महेश्वरपतिव्रता । प्रोच्यतेभगवान्भोक्ता कपर्द्दीनीललोहितः
मन्ताविश्वेश्वरोदेवः शङ्करोमन्मथान्तकः । प्रोच्यतेमतिरीशानी मन्तव्याचविचारतः
इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम् । प्रोच्यतेसर्व्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः

एतत्प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तवादेषु निश्चितम्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३३ ॥

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलंध्रुवम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्तिमहादेव्याः परम्पदम्
आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याःपरम्पदम्

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमम्पदम्
शुभं निरञ्जनंशुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्ज्जितम् । आत्मोपलब्धिविषयंदेव्यास्तत्परमम्पदम्

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम् ।
संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयात् ॥ ३८ ॥
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् ।
आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम् ॥ ३९ ॥

लब्ध्वाचपुत्रींशर्वाणींतपस्तप्त्वासुदुश्चरन् । सभार्य्यःशरणंयातःपार्वतींपरमेश्वरीम्
तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छयैव वराननाम् । मेना हिमवतःपत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्

मेनोवाच

पश्य बालामिमांराजन्राजीवसदृशाननाम् । हिताय सर्वभूतानांजाताचतपसाऽऽवयोः

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम् ।
कपर्द्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ॥ ४३ ॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ।
निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्ज्जिताम् ॥ ४४ ॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चाऽतिविह्वलः ।
भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥ ४५ ॥

हिमवानुवाच

कात्वंदेविविशालाक्षिशशाङ्कावयवाङ्किते !। न जाने त्वामहंवत्सेयथावद्ब्रूहिपृच्छते
गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी । व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा

श्रीदेव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ ४८ ॥

अनन्यामव्ययामेकांयांपश्यन्तिमुमुक्षवः । अहं हि सर्वभावानामात्मासर्वात्मनाशिवा
शाश्वतैश्वर्य्यविज्ञानमूर्त्तिः सर्वप्रवर्त्तिका । अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी

दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्यमेरूपमैश्वरम् । एतावदुक्त्वाविज्ञानं दत्त्वाहिमवतेस्वयम्

स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यंतत्परमेश्वरम् । कोटिसूर्य्यप्रतीकाशंतेजोविम्वंनिराकुलम्
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् । दंष्ट्राकरालंदुर्द्धर्षं जटामण्डलमण्डितम्
किरीटिनंगदाहस्तं शङ्खचक्रधरं तथा । त्रिशूलवरहस्तञ्च घोररूपम्भयानकम् ॥५४॥
प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्य्यसंयुतम् । चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम्
किरीटिनंगदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् । दिव्यमाल्याम्वरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्

शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ।
अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं वाह्यमाभ्यन्तरं परम् ॥ ५७ ॥

सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम् । व्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्वुजम्

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वमावृत्य तिष्ठन्तीं ददर्श परमेश्वरीम् ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरम्परम् । भयेनच समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः ॥
आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन् । नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम्

हिमवानुवाच

शिवोमा परमाशक्तिरनन्ता निष्कलामला । शान्तामाहेश्वरीनित्याशाश्वतीपरमाक्षरा

अचिन्त्या केवलाऽनन्त्या शिवात्मा परमात्मिका ।
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाऽचला ॥ ६३ ॥

एकानेकविभागस्था मायातीतासुनिर्म्मला । महामाहेश्वरी सत्यामहादेवी निरञ्जना

काष्ठा सर्वान्तरस्थाच चिच्छक्तिरतिलालसा ।
नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा ॥ ६५ ॥

शान्तिःप्रतिष्ठासर्वेषांनिवृत्तिरमृतप्रदा । व्योममूर्त्तिर्व्योमलयाव्योमाधाराच्युतामरा
अनादिनिधनाऽमोघाकारणात्माकुलाकुला । स्वेतःप्रथमजानाभिरमृतस्यात्मसंश्रया
प्राणेश्वरप्रियामाता महामहिषघातिनी । प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ॥
महामायासुदुष्पूरामूलप्रकृतिरीश्वरी ।सर्व्वशक्तिकलाकाराज्योत्स्नाद्यौर्म्महिमास्पदा
सर्वकायनियन्त्रीच सर्वभूतेश्वरेश्वरी । संसायोनिः सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ॥

संसारपोता दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा ।
प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला ॥ ७१ ॥

महाविभूतिर्दुर्द्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा । अनाद्यनन्तविभवा परमाद्याऽपकर्षिणी ॥ सर्गस्थित्यन्तकरणीसुदुर्वाच्यादुरत्यया । शब्दयोनिःशब्दमयीनादाख्यानादविग्रहा अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी । आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी महामाया सुदुष्पारा मूलप्रकृतिरीश्वरी । प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ॥ पुराणा चिन्मयीपुंसामादिपूरुषरूपिणी । भूतान्तरस्थाकूटस्थामहापुरुषसञ्ज्ञिता जन्ममृत्युजरातीतासर्व्वशक्तिसमन्विता । व्यापिनीचानवच्छिन्नाप्रधानानुप्रवेशिनी क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता । अनादिमायासम्भिन्नात्रितत्त्वाप्रकृतिग्रहा ॥

महामायासमुत्पन्ना तामसीपौरुषी ध्रुवा ।
व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका ॥ ७९ ॥
अकार्य्या कार्य्यजननी नित्यं प्रसवधर्म्मिणी ।
सर्गप्रलयनिर्म्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्म्मिणी ॥ ८० ॥

ब्रह्मगर्भाचतुर्व्विंशापद्मनाभाच्युतात्मिका । वैद्युतीशाश्वतीयोनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया सर्वाधारामहारूपासर्वैश्वर्य्यसमन्विता । विश्वरूपामहागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी महीयसी ब्रह्मयोनिः महालक्ष्मीसमुद्भवा । महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका सर्व्वसाधारणी सूक्ष्माह्यविद्यापारमार्थिका । अनन्तरूपानन्तस्थादेवीपुरुषमोहिनी अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता । ब्रह्मजन्माहरेर्मूर्त्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ब्रह्मेशविष्णुजननीब्रह्माख्याब्रह्मसंश्रया । व्यक्ता प्रथमजाब्राह्मी महती ब्रह्मरूपिणी

वैराग्यैश्वर्य्यधर्म्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता ।
अपां योनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा ॥ ८७ ॥

ईश्वराणी च शर्वाणी शङ्करार्द्धशरीरिणी । भवानीचैवरुद्राणीमहालक्ष्मीरथाम्बिका महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । सर्वैश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शङ्करेच्छानुवर्तिनी । ईश्वरार्द्धासनगता महेश्वरपतिव्रता ॥ ९० ॥

सकृद्विभातासर्व्वार्त्तिसमुद्रपरिशोषिणी। पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी

गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकाशिनी।

सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसिस्थिता ॥ ६२ ॥

सरोजनिलयागङ्गा योगनिद्रा सुरार्दिनी। सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठासुमङ्गला

वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्त्तिः सर्वार्थसाधिका।

योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना ॥ ६४ ॥

गुह्यविद्याऽऽत्मविद्या च धर्म्मविद्यात्मभाविता।

स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ॥ ६५ ॥

नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी।

पूज्याविभावती सौम्या भोगिनी भोगशायिनी ॥ ६६ ॥

शोभा च शङ्करीलोलामालिनीपरमेष्ठिनी। त्रैलोक्यसुन्दरीनम्यासुन्दरीकामचारिणी

महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्द्दिनी। पद्मनाभा पापहरा विचित्रमुकुटाङ्गदा ॥

कान्ताचित्राम्बरधरादिव्याभरणभूषिता। हंसाख्याव्योमनिलयाजगत्सृष्टिविवर्द्धिनी

नियन्त्री यन्त्रमध्यस्था नन्दिनीभद्रकालिका। आदित्यवर्णाकौवेरीमयूरवरवाहना

वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्च्चिता। अदितिर्नियता रौद्रापद्मगर्भाविवाहना

विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी। महाफलाऽनवद्याङ्गी कामरूपा विभावरी

विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनी। कौशिकी कर्षणीरात्रिस्त्रिदशार्त्तिविनाशिनी

बहुरूपा स्वरूपा च विरूपारूपवर्जिता। भक्तार्त्तिशमनी भव्या भवतापविनाशिनी

निर्गुणा नित्यविभवा निःसारानिरपत्रपा। तपस्विनीसामगीतिर्भवाङ्कनिलयालया

दीक्षा विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी।

सर्वातिशायिनी विश्वा सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ १०६ ॥

सर्वेश्वरप्रियाभार्या समुद्रान्तरवासिनी। अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धानिरामया

कामधेनुर्बृहद्गर्भा धीमती मोहनाशिनी। निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रिया

ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोमयी। महाभगवती भर्गा वासुदेवसमुद्भवा ॥

महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा। ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषयागतिः॥
दक्षिणा दहती दीर्घा सर्वभूतनमस्कृता। योगमाया विभागज्ञा महामोहा गरीयसी
सन्ध्यासर्व्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मविद्याश्रयादिभिः। बीजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः

क्षान्तिः प्रज्ञा चितिः सच्चिन्महाभोगीन्द्रशायिनी।
विकृतिः शाङ्करी शास्तिर्गणगन्धर्व्वसेविता॥ ११२॥

वैश्वानरीमहाशालामहासेनागुहप्रिया। महारात्रिः शिवानन्दाशचीदुःस्वप्ननाशिनी

इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी।
तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता॥ ११५॥

गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठामरुत्सुता। हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा। बुद्धिर्महाबुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी

तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता।
सर्व्वेन्द्रियमनोमाता सर्व्वभूतहृदि स्थिता॥ ११८॥

संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया। ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणी
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्त्तिका। सुमालिनी सुरूपाचभाविनी हारिणीप्रभा
उन्मीलनीसर्व्वसहासर्व्वप्रत्ययसाक्षिणी। सुसौम्या चन्द्रवदनाताण्डवासक्तमानसा
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी। जगत्प्रिया जगन्मूर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिरमृताश्रया
निराश्रया निराहारानिरङ्कुशपदोद्भवा। चन्द्रहस्ताविचित्राङ्गीस्रग्विणी पद्मधारिणी
परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा। विश्वेश्वरप्रिया विद्युद्विद्युज्जिह्वा जितश्रमा
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा। सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया

क्षालिनी मृण्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका।
महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा॥ १२६॥
व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानाऽमितप्रभा।
वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी॥ १२७॥

अनाहता कुण्डलिनी नलिनीपद्मभासिनी। सदानन्दासदाकीर्त्तिःसर्वभूताश्रयस्थिता

वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणी । ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया
व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः परा गतिः ।
क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ॥ १३० ॥
अभिन्ना भिन्नसंस्थाना वशिनीवंशहारिणी । गुह्यशक्तिर्गुणातीतासर्वदासर्वतोमुखी
भगिनीभगवत्पत्नी सकला कालहारिणी । सर्ववित् सर्वतोभद्रागुह्यातीतागुहावलिः
प्रक्रियायोगमाताच गङ्गाविश्वेश्वरेश्वरी । कलिलाकपिलाकान्ताकमलाभाकलाऽन्तरा
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरन्दरपुरस्सरा । पोषिणी परमैश्वर्य्यभूतिदाभूतिभूषणा
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा । धर्म्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा
मनोरमा मनोरस्का तापसी वेदरूपिणी । वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी ।
विश्वावस्था वियन्मूर्त्तिर्विद्युन्माला विहायसी ॥ १३७ ॥
किन्नरी सुरभी विद्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा । भारती परमानन्दा परापरविभेदिका
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी । अचिन्त्यानन्तविभवा भूलेखा कनकप्रभा
कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी ।
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिवोदया ॥ १४० ॥
सुदुर्लभा धनाध्यक्षाधन्यापिङ्गललोचना । शान्तिः, प्रभावतीदीप्तिःपङ्कजायतलोचना
आद्या भूः कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया ।
सत्क्रिया गिरिशा शुद्धिर्नित्यपुष्टा निरन्तरा ॥ १४२ ॥
दुर्गाकात्यायनीचण्डी चर्चिताङ्गासुविग्रहा । हिरण्यवर्णा जगती जगद्यन्त्रप्रवर्तिका
मन्दराद्रिनिवासा च गरहा स्वर्णमालिनी । रत्नमाला रत्नगर्भा पुष्टिर्विश्वप्रमाथिनी
पद्मनाभा पद्मनिभा नित्यरुष्टामृतोद्भवा । धुन्वती दुष्प्रकम्पा च सूर्य्यमाता दृषद्वती
महेन्द्रभगिनी सौम्यावरेण्या वरदायिका । कल्याणी कमलावासा पञ्चचूडा वरप्रदा
वाच्याऽमरेश्वरी विद्या दुर्ज्जयादुरतिक्रमा । कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता
भद्रकालीजगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी । कराला पिङ्गलाकारा कालभेदामहास्वना

यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्त्तिका (षडर्त्तुपरिवर्त्तिनी) ।
शङ्खिनी पद्मिनी साङ्ख्या साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तिका ॥ १४६ ॥
चैत्रा सम्वत्सरारूढा जगत्सम्पूरणी ध्वजा ।
शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया ॥ १५० ॥
खगध्वजा खगारूढा वाराही पूगमालिनी । ऐश्वर्य्यपद्मनिलया विरक्ता गरुडासना
जयन्ती हृद्गुहा गम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणीः ।
सङ्कल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ॥ १५२ ॥
कलिः कल्कविहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ।
निष्ठा दृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती ॥ १५३ ॥
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिःशिवामृता । लोहितासर्पमाला चभाषणीवनमालिनी
अनन्तशयनानन्ता नरनारायणोद्भवा । नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा
सङ्कर्षणी समुत्पत्तिरम्बिकापादसंश्रया ।
महाज्वाला महाभूतिः सुमूर्त्तिः सर्व्वकामधुक् ॥ १५६ ॥
शुभ्राच सुस्तना सौरीधर्म्मकामार्थमोक्षदा । भ्रूमध्यनिलयापूर्व्वा पुराणपुरुषारणिः
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयनासमा । अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदलप्रभा
सर्व्वशक्त्यासनारूढा धर्म्माधर्म्मविवर्ज्जिता । वैराग्यज्ञाननिरतानिरालोकानिरिन्द्रिया
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी । स्थानेश्वरीनिरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी
अशेषदेवतामूर्त्तिर्देवता वरदेवता । गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी
अवर्णा वर्णरहिता त्रिवर्णा जीवसम्भवा । अनन्तवर्णाऽनन्यस्थाशङ्करीशान्तमानसा
अगोत्रा गोमतीगोप्त्रीगुह्यरूपा गुणोत्तरा । गौर्गीर्गव्यप्रियागौणीगणेश्वरनमस्कृता
सत्यभामा सत्यसन्धा त्रिसन्ध्या सन्धिवर्ज्जिता ।
सर्व्ववादाश्रया सङ्ख्या साङ्ख्ययोगसमुद्भवा ॥ १६४ ॥
असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्याशुद्धकुलोद्भवा । बिन्दुनादसमुत्पत्तिःशम्भुवामाशशिप्रभा
पिशङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी । महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तमः पारे प्रतिष्ठिता

त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया।
शान्ता भीता मलातीता निर्विकारा शिवाश्रया॥ १६७॥
शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी।
दैत्यदानवनिर्म्माथी काश्यपी कालकर्णिका॥ १६८॥

शास्त्रयोनिः क्रियामूर्त्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका। नारायणीनरोत्पत्तिःकौमुदीलिङ्गधारिणी
कामुकी कलिताभावा परावरविभूतिदा। पराङ्गजातमहिमा वडवा वामलोचना
सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा। मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा
अमन्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुष्टुता। अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया
हिरण्यरजनी हैमा हेमाभरणभूषिता। विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रासत्यदेवता। दीर्घाककुद्मिनी हृद्याशान्तिदाशान्तिवर्द्धिनी
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्त्तिका। त्रिशक्तिजननी जन्या षडूर्मिपरिवर्ज्जिता
सुधौताकर्म्मकरणी युगान्तदहनात्मिका। संकर्षणीजगद्धात्री कामयोनिःकिरीटिनी
ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी। प्रद्युम्नदयितादात्री युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना

मदोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा चण्डविक्रमा।
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्व्वतवासिनी॥ १७८॥

हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी। चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी
वेदविद्या व्रतस्नाता ब्रह्मशैलनिवासिनी। वीरभद्रप्रजा वीरा महाकामसमुद्भवा
विद्याधरप्रिया सिद्धाविद्याधरनिराकृतिः। आप्यायनीहरन्तीचपावनी पोषणीकला
मातृकामन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया। करीषिणीसुधावाणीर्वीणावादनतत्परा

सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती।
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी॥ १८३॥

वसुप्रदा वसुमती वसोर्द्धारा वसुन्धरा। धाराधरा वरारोहा परावाससहस्रदा

श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया।
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्द्धशरीरिणी॥ १८५॥

अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया । निहन्त्रीदैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना
सुवर्चला वसुश्रोणी सुकीर्त्तिश्छिन्नसंशया । रसज्ञा रसदारामालेलिहानाऽमृतस्रवा
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवना । वज्रदण्डावज्रजिह्वावैदेही वज्रविग्रहा
मङ्गल्या मङ्गला माला निर्म्मला मलहारिणी ।
गान्धर्व्वी करुका चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया ॥ १८६ ॥
सौदामिनी जनानन्दाभ्रुकुटीकुटिलानना । कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी
युगन्धरायुगावर्त्तात्रिसन्ध्या हर्षवर्द्धनी । प्रत्यक्षदेवता दिव्यादिव्यगन्धा दिवःपरा
शक्रासनगता शाक्रीसाध्याचारुशरासना । इष्टाविशिष्टाशिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता
शतरूपा शतावर्त्ताविनता सुरभिःसुरा । सुरेन्द्रमाता सुद्युम्नासुषुम्नासूर्य्यसंस्थिता
समीक्ष्यासत्प्रतिष्ठा चनिवृत्तिर्ज्ञानपारगा । धर्म्मशास्त्रार्थकुशला धर्म्मज्ञाधर्म्मवाहना
धर्म्माधर्म्मविनिर्म्मात्री धार्म्मिकाणां शिवप्रदा ।
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ॥ १९५ ॥
धर्मान्तरा धर्ममयी धर्मपूर्व्वा धनावहा । धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा
कापाली शकला मूर्तिःकलाकलितविग्रहा । सर्वशक्तिविनिर्मुक्तासर्वशक्त्याश्रयाश्रया
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी । प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी
सदाशिवा वियन्मूर्त्तिर्वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिका ।
एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वाऽसौ हिमवान्गिरिः ॥ १९६ ॥
भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः । यदेतदैश्वरं रूपं घोरन्ते परमेश्वरि
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वारूपमन्यत्प्रदर्शय । एवमुक्ताऽथ सा देवी तेनशैलेनपार्व्वती
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरम्पुनः ।
नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धि च ॥ २०२ ॥
द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् । रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्
श्रीमद्विलाससद्वृत्तं ललाटतिलकोज्ज्वलम् । भूषितंचारुसर्वाङ्गंभूषणैरतिकोमलम्
दधानमुरसामालां विशालां हेममालिनम् । ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठंनूपुरारावसंयुतम्

प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् । तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः
भीतिं सन्त्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम् ।

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ २०७ ॥
यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रपन्ना दृष्टिगोचरम् ।
त्वया सृष्टं जगत्सर्व्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ॥ २०८ ॥

त्वय्येव लीयते देवित्वमेव परमा गतिः । वदन्ति केचित्त्वामेव प्रकृतिंप्रकृतेः पराम्
अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रयात् । त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वरः
अविद्या नियतिर्मायाकलाद्याः शतशोऽभवन् । त्वंहिसापरमाशक्तिरनन्तापरमेष्ठिनी
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रयाश्रया । त्वामधिष्ठाय योगेशि! महादेवो महेश्वरः
प्रधानाद्यं जगत्सर्वंकरोति विकरोतिच । त्वयैव सङ्गतोदेवः स्वात्मानन्दंसमश्नुते
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी । त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम्
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।
त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि ॥ २१५ ॥

वायुर्बलवतां देवियोगिनांत्वंकुमारकः । ऋषीणाञ्चवसिष्ठस्त्वं व्यासोवेदविदामसि
सांख्यानांकपिलोदेवोरुद्राणाञ्चापिशङ्करः । आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वंवसूनाञ्चैवपावकः
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री च्छन्दसामसि ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः ॥ २१८ ॥

मायात्वंसर्वशक्तीनां कालःकलयतामसि । ओङ्कारःसर्वगुह्यानां वर्णानाञ्चद्विजोत्तमः
आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणांमहेश्वरः । पुसांत्वमेकः पुरुषःसर्वभूतहृदिस्थितः
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे । ईशानश्चापि कल्पानां युगानां कृतमेव च
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती ।
त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि ॥ २२२ ॥

अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि । सूक्तानांपौरुषं सूक्तंसामज्येष्ठं चसामसु

सावित्रीचापिजाप्यानां यजुषांशतरुद्रियम् । पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामपि
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ २२५ ॥
रूपं तवाशेषविकारहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥ २२६
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये ॥ २२७ ॥
अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम् ।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २२८ ॥
आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तथैव नगामि रूपं पुरुषाभिधानम् ॥ ५२६ ॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम् ॥ २३० ॥
आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम् ।
ऐश्वर्य्यविज्ञानविरोधधर्म्मैः समन्वितं देवि! नतोऽस्मि रूपम् ॥ २३१ ॥
द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम् ।
अनेकभेदैरधिवासितं ते नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसञ्ज्ञम् ॥ २३२ ॥
अशेषवेदात्मकनेकमाद्यं त्वत्तेजसा पूरितलोकभेदम् ।
त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसञ्ज्ञं नमामि रूपं रविमण्डलस्थम् ॥ २३३ ॥
सहस्रमूर्द्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम् ।
शयानमन्तः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २३५ ॥
दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं युगान्तकालानलकर्तृ रूपम् ।
अशेषभूताण्डविनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसञ्ज्ञम् ॥ २३५ ॥
फणासहस्रेण विराजमानं भोगीन्द्रमुख्यैरपि पूज्यमानम् ।
जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं नतोऽस्मि रूपं तव शेषसञ्ज्ञम् ॥ २३६

अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम् ।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसञ्ज्ञम् ॥ २३७ ॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
सुकोमलं देवि! विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि !॥ २३८ ॥
ॐ नमस्तेऽस्तु महादेवि! नमस्ते परमेश्वरि !।
नमो भगवतीशानि! शिवायै ते नमोनमः ॥ २३९ ॥
त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम ।
त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि !॥ २४० ॥
मया नाऽस्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ।
जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः ॥ २४१ ॥
एषा तवाऽम्बिके देवि! किलाऽभूत्पितृकन्यका ।
मेनाऽशेषजगन्मातुरहो मे पुण्यगौरवम् ॥ २४२ ॥
पाहि माममरेशानि! मेनया सह सर्वदा ।
नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवम् ॥ २४३ ॥
अहो मे सुमहद्भाग्यं महादेवीसमागमात् ।
आज्ञापय महादेवि! किं करिष्यामि शङ्करि !॥ २४४ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः ।
संप्रेक्षमाणो गिरिजां प्राञ्जलिः पार्श्वगोऽभवत् ॥ २४५ ॥
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः ।
सस्मितं प्राह पितरंस्मृत्वा पशुपतिं पतिम् ॥ २४६ ॥

श्रीदेव्युवाच

शृणुष्व चैतत्प्रथमं गुह्यमीश्वरगोचरम् । उपदेशं गिरिश्रेष्ठ! सेवितं ब्रह्मवादिभिः
यन्मे साक्षात्परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम् । सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम्
शान्तः समाहितमना मानाऽहङ्कारवर्जितः । तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं व्रज

भक्त्या त्वनन्यया तात! मद्भावं परमाश्रितः।
सर्वयज्ञतपोदानैस्तद्देवार्च्चय सर्वदा ॥ २५० ॥

तदेव मनसा पश्यतद्ध्यायस्व यजस्व तत्। ममोपदेशात्संसारं नाशयामि तवानघ
अहं त्वां परयाभक्त्याऐश्वरंयोगमास्थितम्। संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेणतु
ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्याज्ञानेनचैवहि। प्राप्याहन्ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथाकर्मकोटिभिः

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्कर्म वर्णाश्रमात्मकम्।
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥ २५४ ॥
धर्म्मात्सञ्जायते भक्तिर्भक्त्या संप्राप्यते परम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्म्मो यज्ञादिको मतः ॥ २५५ ॥

नान्यतोजायतेधर्म्मोवेदाद्धर्म्मो हि निर्बभौ। तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थीमद्रूपंवेदमाश्रयेत्
ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसञ्ज्ञा पुरातनी। ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ संप्रवर्त्तते
तेषामेवचगुप्त्यर्थंवेदानां भगवानजः। ब्राह्मणादीन्ससर्जाथस्वेस्वे कर्म्मण्ययोजयत्
येन कुर्वन्ति मद्धर्मन्तदर्थं ब्रह्मनिर्म्मिताः। तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत्

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः ॥ २६० ॥
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥ २६१ ॥

कापालं भैरवञ्चैव यामलं वाममार्हतम्। एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानितानि तु
येकुशास्त्राभियोगेनमोहयन्तीहमानवान्। मयासृष्टानिशास्त्राणि मोहायैषांभवान्तरे
वेदार्थवित्तमैःकार्यंयत्स्मृतं कर्म्मवैदिकम्। तत्प्रयत्नेन कुर्वन्तिमत्प्रियास्तेहियेनराः

वर्णानामनुकम्पार्थम्मन्नियोगाद्विराट् स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनुर्द्धर्मान्मुनीनां पूर्वमुक्तवान् ॥ २६५ ॥
श्रुत्वा चाऽन्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्धर्म्ममुत्तमम्।
चक्रुर्द्धर्म्मप्रतिष्ठार्थं धर्म्मशास्त्राणि चैव हि ॥ ६६ ॥

तेषु चान्तर्हितेष्वेवं युगान्तेषुमहर्षयः । ब्रह्मणो वचनात्तानि करिष्यन्ति युगेयुगे
अष्टादशपुराणानि व्यासाद्यैःकथितानितु । नियोगाद्ब्रह्मणो राजंस्तेषुधर्मःप्रतिष्ठितः
अन्यान्युपपुराणानितच्छिष्यैःकथितानितु । युगुयुगेऽत्रसर्वेषांकर्त्तावैधर्म्मशास्त्रवित्

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ।
ज्योतिः शास्त्रं न्यायविद्या सर्वेषामुपबृंहणम् ॥ २७० ॥

एवं चतुर्द्दशैतानि तथा हि द्विजसत्तमाः । चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते
एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम् । स्थापयन्ति ममादेशाद्यावदाभूतसंप्लवम्
ब्रह्मणा सह तेसर्वे संप्राप्ते प्रतिसञ्चरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परम्पदम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत् । धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्
ये तुसङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः । उपासतेसदाभक्तयायोगमैश्वरमास्थिताः

सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः ।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः ॥ २७६ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणामज्ज्ञानकथनेरताः । सन्न्यासिनोगृहस्थाश्चवनस्थाब्रह्मचारिणः

तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वं समुत्थितम् ।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेनतो चिरात् ॥२७८॥

ते सुनिर्धूततमसोज्ञानेनैकेनमन्मयाः । सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः ॥

तस्मात्सर्व्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायणः ।
मामेवाऽर्च्चय सर्वत्र मनसा शरणं गतः ॥ २८० ॥

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरंरूपमव्ययम् । ततो मे परमं रूपं कालाद्यं शरणं व्रज ॥
तद्यत्स्वरूपं मेतातमनसोगोचरंतव । तन्निष्ठस्ततपरो भूत्वा तदर्चनपरो भव ॥२८२
यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रंकेवलंशिवम् । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम्
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यंक्लेशेन परमंपदम् । ज्ञानमेवप्रपश्यन्तोमामेव प्रविशन्ति ते ॥२८४॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्ततपरायणाः । गच्छन्त्यपुनरावृत्तिज्ञाननिर्द्धूतकल्मषाः
मामनाश्रित्य परमं निर्व्वाणममलंपदम् । प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणंव्रज

एकत्वेन पृथक्त्वेनतथाचोभयथापि वा । मामुपास्यमहीपाल ततोयास्यसितत्पदम्
मामनाश्रित्य तत्त्वंस्वभावविमलंशिवम् । ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततोमां शरणं व्रज
तस्मात्त्वमक्षरं रूपंनित्यं वारूपमैश्वरम् । आराधय प्रयत्नेन ततोऽन्धत्वंप्रहास्यसि
कर्म्मणा मनसा वाचाशिवंसर्व्वत्रसर्वदा । समाराधय भावेनततोयास्यासि तत्पदम्
न वै यास्यन्तितंदेवं मोहिता मम मायया । अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम्
सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम् । नित्यानन्दं निराभासंनिर्गुणंतमसःपरम्
अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम् । स्वसंवेद्यमवेद्यंतत्परेव्योम्निव्यवस्थितम्
सूक्ष्मेण तमसानित्यं वेष्टिता मम मायया । संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः
भक्तया त्वनन्ययाराजन् सम्यग्ज्ञानेन चैव हि । अन्वेष्टव्यंहितद्ब्रह्मजन्मबन्धनिवृत्तये
अहङ्कारञ्चमात्सर्य्यंकामंक्रोधपरिग्रहम् । अधर्म्माभिनिवेशञ्चत्यक्त्वावैराग्यमास्थितः
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । अवेक्ष्यचात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः । ऐश्वर्य्यं परमांभक्तिं विन्देतानन्यभाविनीम्
वीक्ष्यते तत्परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्म निष्कलम् । सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते
ब्रह्मणोऽयं प्रतिष्ठानं परस्य परमः शिवः । अनन्यश्चाव्ययश्चैकश्चात्माधारो महेश्वरः
ज्ञानेनकर्म्मयोगेनभक्तयायोगेन वा नृप । सर्वं संसारमुक्तयर्थमीश्वरं शरणं व्रज॥३०१
एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर !। अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टंकर्तुमर्हसि
अहं वै याचिता देवैः सञ्जातापरमेश्वरात् । विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम्
धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात् । मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता
स त्वं नियोगाद्देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे
तत्सम्बन्धान्तरेराजन्सर्वे देवाःसवासवाः । त्वांनमस्यन्तिवै तातप्रसीदेतिचशङ्करः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम् । संपूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं व्रज

स एवमुक्तो हिमवान् देवदेव्या गिरीश्वरः ।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत् ॥ ३०८ ॥

विस्तरेण महेशानियोगं माहेश्वरं परम् । ज्ञानं वै चात्मनो योगं साधनानिप्रचक्ष्वमे

तस्यैतत्परमंज्ञानमात्मनो योगमुत्तमम् । यथावद्व्याजहारेशा साधनानिचविस्तरात्
निशम्यवदनाम्भोजाद्गिरीन्द्रोलोकपूजितः । लोकमातुःपरंज्ञानंयोगासक्तोऽभवत्पुनः
प्रददौचमहेशायपार्वतीं भाग्यगौरवात् । नियोगाद्ब्रह्मणः साध्वींदेवानाञ्चैवसन्निधौ

य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्त्तनम् ।
शिवस्य सन्निधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः ॥ ३१३ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः ।
उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ॥ ३१४ ॥

यश्चैतत्पठति स्तोत्रंब्राह्मणानां समीपतः । समाहितमनाः सोऽपिसर्वपापैःप्रमुच्यते
नाम्नामष्टसहस्रन्तु देव्यायत्समुदीरितम् । ज्ञात्वार्कमण्डलगतामावाह्य परमेश्वरीम्
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वितः । संस्मरन्परमं भावं देव्यामाहेश्वरं परम्

अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद्द्विजः ।
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ३१८ ॥

अथवाजायतेविप्रोब्राह्मणस्यशुचौकुले । पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्

सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत्पारमेश्वरम् ।
शान्तः सुसंयतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयाम् ॥ ३२० ॥

प्रत्येकञ्चाथ नामानि जुहुयात्सवनत्रयम् । महामारिकृतैर्द्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते
जपेद्वाऽहरहर्नित्यं सम्वत्सरमतन्द्रितः । श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वाविधानतः
सम्पूज्य पार्श्वतः शम्भुं त्रिनेत्रंभक्तिसंयुतः । लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जप्तव्यं हि द्विजातिभिः । सर्वपापापनोदार्थं देव्यानामसहस्रकम्

सूत उवाच

प्रसङ्गात्कथितं विप्रा देव्यामाहात्म्यमुत्तमम् । अतःपरंप्रजासर्गंभृग्वादीनां निबोधत

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे देव्यामाहात्म्ये देवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनंनाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

———

त्रयोदशोऽध्यायः

दक्षकन्यानांवंशवर्णनम्

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया ।
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ शुभौ ॥ १ ॥

आयतिर्नियतिश्चैवमेरोःकन्ये महात्मनः । तयोर्धातृविधातृभ्यांयौचजातौसुतावुभौ
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयोमृकण्डुतः । तथा वेदशिरानामप्राणस्यद्युतिमान्सुतः
मरीचेरपि सम्भूतिः पूर्णमासमसूयत । कन्याचतुष्टयञ्चैवसर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४ ॥
तुष्टिर्ज्येष्ठातथावृष्टिःकृष्टिश्चाऽपचितिस्तथा । विरजाःपर्वतश्चैव पूर्णमासस्यतौसुतौ
क्षमातु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः । कर्द्दमञ्च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम् ॥
तथैव च कनीयांसं तपोनिर्द्धूतकल्मषम् । अनसूया तथैवाऽत्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्
सोमं दुर्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्चयोगिनम् । स्मृतिश्चाङ्गिरसःपुत्रीजज्ञे लक्षणसंयुता
सिनीवालींकुहूञ्चैवराकामनुमतीमपि । प्रीत्यांपुलस्त्योभगवान्दम्भोजिमसृजत्प्रभुः

पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
देवबाहुस्तथा कन्या द्वितीया नाम नामतः ॥ १० ॥

पुत्राणांषष्टिसाहस्रंसन्ततिःसुषुवेक्रतोः । तेचोर्द्ध्वरेतसःसर्वेबालखिल्याइतिस्मृताः

वसिष्ठश्च तथोर्जायां सप्त पुत्रानजीजनत् ।
कन्याञ्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ॥ १२ ॥

रजोमात्रोर्द्ध्ववाहुश्च सवनश्चानगस्तथा । सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः

योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः ।
स्वाहा तस्मात्सुतान् लेभे त्रीनुदारान्महौजसः ॥ १४ ॥

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च रूपतः । निर्म्मथ्यःपवमानःस्याद्वैद्युतः पावकःस्मृतः

यश्चासौतपतेसूर्य्येशुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः। तेषान्तुसन्ततावन्येचत्वारिंशच्चपञ्चच
पवमानः पावकश्च शुचिस्तेषां पिता च यः। एतेचैकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः

सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः।
रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ॥ १८ ॥
अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः ॥ १९ ॥
तेभ्यः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः ॥ २० ॥

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चन्तस्यानुजन्तथा। गङ्गा हिमवतो यज्ञे सर्वलोकैकपावनी
स्वयोगाग्निबलाद्देवींपुत्रींलेभेमहेश्वरीम्। यथावत्कथितंपूर्वंदेव्या माहात्म्यमुत्तमम्
धारिणी मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना। देवौधाता विधातारौ मेरोर्जामातरावुभौ

एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसन्ततिः।
व्याख्याता भवतां सद्यो मनोः सृष्टिं निबोधत ॥ २४ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे दक्षकन्यानांवंशवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौमनोःस्वायम्भुवस्य तु। धर्मज्ञौतौ महावीर्यौशतरूपाव्यजीजनत्
ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवोनाम सुतोऽभवत्। भक्तयानारायणेदेवेप्राप्तवान्स्थानमुत्तमम्

ध्रुवाच्छिष्टिश्च भाव्यश्च भाव्याच्छम्भुर्व्यजायत।
शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ ३ ॥

वसिष्ठवचनाद्देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामेजनार्द्दनम्
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं कपिलंवृषतेजसम् । नारायणपरान्शुद्धान्स्वधर्मपरिपालकान् ॥५॥
रिपोराधत्त महिषीचाक्षुषंसर्वतेजसम् । सोऽजीजनत्पुष्करिण्यांसुरूपं चाक्षुषंमनुम्
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः । मनोरजायन्त दश सुतास्ते सुमहौजसः
कन्यायांसुमहावीर्यौ वैराजस्यप्रजापतेः । ऊरुःपूरुःशतद्युम्नस्तपस्वीसत्यवाक्शुचिः
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः । ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाबलान्
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमाङ्गिरसं शिवम् । अङ्गाद्वेनोऽभवत्पश्चाद्वैन्यो वेनादजायत

योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः ।
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकाम्यया ॥ ११ ॥

नियोगाद्ब्रह्मणःसार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा । वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे ॥
सूतः पौराणिकोयज्ञे मायारूपःस्वयंहरिः । प्रवक्तासर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुरुवत्सलः

तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः! पूर्वोद्भूतं सनातनम् ।
अस्मिन्मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥ १४ ॥

श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणःपुरुषोहरिः । मदन्वये तु येसूताः सम्भूता वेदवर्जिताः
तेषांपुराणवक्तृत्वंवृत्तिरासीदजाज्ञया । सच वैन्यःपृथुर्धीमान्सत्यसन्धोजितेन्द्रियः
सार्वभौमोमहातेजाः स्वधर्मपरिपालकः । तस्यबाल्यात्प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत्
गोवर्द्धनगिरिं प्राप्तस्तपस्तेपे जितेन्द्रियः । तपसा भगवान्प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
आगत्यदेवो राजानंप्राह दामोदरःस्वयम् । धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृतांवरौ
मत्प्रसादादसन्दिग्धौ पुत्रौतवभविष्यतः । एवमुक्त्वा हृषीकेशःस्वकीयांप्रकृतिङ्गतः

वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन् ।
सोऽपालयत्स्वकं राज्यं चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥

अचिरादेवतन्वङ्गीभार्यातस्यशुचिस्मिता । शिखण्डिनंहविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत
शिखण्डिनोऽभवत्पुत्रः सुशील इतिविश्रुतः । धार्मिकोरूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः ;
सोऽधीत्य विधिवद्वेदान्धर्मेण तपसि स्थितः ।

मतिश्चक्रे भाग्ययोगात्सन्न्यासम्प्रति धर्मवित् ॥ २४ ॥
स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः ।
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित्सिद्धसेवितम् ॥ २५ ॥
तत्र धर्मवनं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम् । अपश्यद्योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्
तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्याविमलानदी । पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता
स तस्यादक्षिणेतीरेमुनीन्द्रैर्योगिभिर्युतम् । सुपुण्यमाश्रमंरम्यमपश्यत्प्रीतिसंयुतः
मन्दाकिनीजलेस्नात्वासन्तर्प्य पितृदेवताः । अर्च्चयित्वामहादेवंपुष्पैपद्मोत्पलादिभिः
ध्यात्वाऽर्कसंस्थमीशानं शिरस्याधाय चाऽञ्जलिम् ।
सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ३० ॥
रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्यचरितेन च । अन्यैश्च विविधैःस्तोत्रैःशाम्भवैर्वेदसम्भवैः
अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत्समायान्तं महामुनिम् । श्वेताश्वतरनामानंमहापाशुपतोत्तमम्
भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् ।
तपसा क (ह) र्षितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३३ ॥
समाप्यसंस्तवंशम्भोरानन्दास्राविलेक्षणः । ववन्देशिरसापादौप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्दृष्टो योगविदां वरः ॥ ३५ ॥
अहोमेसुमहद्भाग्यंतपांसिसफलानि मे । किंकरिष्यामि शिष्योऽहंतवमांपालयाऽनघ
सोऽनुगृह्याथराजानंसुशीलंशीलसंयुतम् । शिष्यत्वेप्रतिजग्राहतपसाक्षीणकल्मषम्
सान्न्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ।
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं श्वशाखाविहितव्रतम् ॥ ३८ ॥
अशेषं वेदसारन्तत्पशुपाशविमोचनम् । अन्त्याश्रममितिख्यातंब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्
उवाचशिष्यान्सम्प्रेक्ष्यये तदाश्रमवासिनः । ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याब्रह्मचर्यपरायणाः
मया प्रवर्त्तितांशाखामधीत्यैवेह योगिनः । समासते महादेवध्यायन्तोविश्वमैश्वरम्
इह देवो महादेवा रममाणः सहोमया । अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया

इहाऽशेषजगद्धाता पुरा नारायणःस्वयम् । आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया
इहैनं देवमीशानं देवानामपि दैवतम् । आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः
इहैव मुनयः सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम् । दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्
तस्मात्त्वमपिराजेन्द्रतपोयोगसमन्वितः । तिष्ठनित्यंमयासार्द्धंततसिद्धिमवाप्स्यसि

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये ॥ ४७ ॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारंविमुक्तिदम् । अग्निरित्यादिकं पुण्यंऋषिभिःसम्प्रवर्त्तितम्

सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।
साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ४९ ॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधः सन्न्यासविधिमाश्रितः ॥ ५० ॥

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम् । प्राचीनबर्हिषंनाम्नाधनुर्वेदस्य पारगम्
प्राचीनबर्हिर्भगवान्सर्वशस्त्रभृतांवरः । समुद्रतनयायां वै दशपुत्रानजीजनत् ॥ ५२॥
प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः । अधीतवन्तःस्ववेदंनारायणपरायणाः
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायांप्रजापतिः । दक्षो जज्ञेमहाभागो यःपूर्वंब्रह्मणःसुतः
स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता । कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत्
समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः । दृष्ट्वा यथोचितांपूजां दक्षायप्रददौस्वयम्

तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः ।
पूजामनर्हामन्विच्छञ्जगाम कुपितो गृहम् ॥ ५७ ॥

कदाचित्स्वगृहंप्राप्तांसतींदक्षःसुदुर्मनाः । भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामासवैरुषा

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्त्तुस्तव पिनाकिनः ।
त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद्गच्छ यथागतम् ॥ ४९ ॥

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवीशङ्करप्रिया । विनिन्द्य पितरंदक्षं ददाहात्मानमात्मना
प्रणम्यपशुभर्त्तारंभर्त्तारंकृत्तिवाससम् । हिमवद्दुहितासाऽभूत्तत्तपसातस्यतोषिता

ज्ञात्वा तां भगवान्रुद्रः प्रपन्नार्त्तिहरो हरः। शशाप दक्षंकुपितःसमागत्याथतद्गृहम्
त्यक्त्वा देहमिमं ब्राह्मं क्षत्रियाणां कुले भव ।
स्वस्यां सुतायां मूढात्मा पुत्रमुत्पादयिष्यासि ॥ ६२ ॥
एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्व्वतम् ।
स्वायम्भुवोऽ पि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत् ॥६३ ॥
एतद्वः कथितं सर्व्वमनोःस्वायम्भुवस्य तु । निसर्गंदक्षपर्य्यन्तंश्रृण्वतांपापनाशनम्
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे राजवंशानुकीर्त्तनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

———

पञ्चदशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनम्

नैमिषेया ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं विस्तराद्ब्रूहिसूतवैवस्वतेऽन्तरे
स शप्तः शम्भुना पूर्व्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः ।
किमकार्षीन्महाबुद्धे! श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥१ ॥

सूत उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम् । त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्यविस्तरम्
स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः ।
विनिन्द्यः पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽ(ना)यजद्भवम् ॥ ४ ॥
देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुनासह । सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुङ्गवाः
दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शङ्करेणविना गतम् । दधीचो नाम विप्रर्षिःप्राचेतसमथाब्रवीत्

दधीच उवाच

ब्रह्माद्यास्तु पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः ।
स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किन्न पूज्यते ॥ ७ ॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु नभागः परिकल्पितः । न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शङ्करस्येतिनेज्यते
विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयःस्वयम् ॥ ६ ॥

दधीच उवाच

यतःप्रवृत्तिर्विश्वात्मा यश्चासौ परमेश्वरः । सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वाकिन्नशङ्करः

दक्ष उवाच

नह्ययं शङ्करोरुद्रः संहर्त्ता तामसो हरः । नग्नः कपाली विदितो विश्वात्मानोपपद्यते
ईश्वरो हिजगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणोहरिः । सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यतेसर्वकर्मसु

दधीच उवाच

कित्वया भगवानेष सहस्रांशुर्नदृश्यते । सर्वलोकैकसंहर्त्ता कालात्मा परमेश्वरः
यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः ।
सोऽयं साक्षी तीव्ररुचिः कालात्मा शाङ्करी तनुः ॥ १४ ॥
एषरुद्रो महादेवः कपाली चघृणीहरः । आदित्योभगवान्सूर्यो नीलग्रीवोविलोहितः
संस्तूयतेसहस्रांशुः सामगाध्वर्यु होतृभिः । पश्यैनंविश्वकर्माणं रुद्रमूर्त्तिं त्रयीमयम्

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः । सर्वेसूर्य्याइति ज्ञेयान ह्यन्यो विद्यतेरविः
एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः । बाढमित्यब्रुवन्दक्षं तस्य साहाय्यकारिणः
तमसाविष्टमनसो न पश्यन्तो वृषध्वजम् । सहस्रशोऽथशतशोबहुशोभूय एव हि
निन्दन्तोवैदिकान्मन्त्रान्सर्वभूतपतिंहरम् । अपूजयन्दक्षवाक्यंमोहिताविष्णुमायया
देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः । नापश्यन्देवमीशानमृते नारायणं हरिम्
हिरण्यगर्भो भगवान्ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः । पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम् । रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम्
प्रवर्त्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथनिर्भयः । रक्षकोभगवान्विष्णुः शरणागतरक्षकः

पुनः प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवान्नृषिः ।
संप्रेक्ष्यर्षिगणान्देवान्सर्वान्वै रुद्रविद्विषः ॥ २५ ॥

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानाञ्चाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः
असतां प्रग्रहो यत्र सताञ्चैव विमानना । दण्डो दैवकृतस्तत्रसद्यः पतति दारुणः
एवमुक्त्वाथविप्रर्षिःशशापेश्वरविद्विषः । समागतान्ब्राह्मणांस्तान्दक्षसाहाय्यकारिणः
यस्माद्बहिःकृतोवेदाद्भवद्भिः परमेश्वरः । विनिन्दितो महादेवः शङ्करोलोकवन्दितः

भविष्यन्ति त्रयीवाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः ।
निन्दन्तीहैश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तचेतसः ॥ ३० ॥
मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ।
प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः परिपीडिताः ॥ ३१ ॥
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान्पुनः ।
भविष्यति हृषीकेशः स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुखः ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिर्विरराम तपोनिधिः । जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम्
एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम् । पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत्प्राह सर्वदृक्

श्रीदेव्युवाच

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि । विनिन्द्यभवतो भावमात्मानं चापि शंकर!
देवामहर्षयश्चासंन्तत्रसाहाय्यकारिणः । विनाशयाऽऽशु तं यज्ञं वरमेतं वृणोम्यहम्
एवं विज्ञापितो देव्या देवदेवः परः प्रभुः । ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया
सहस्रशिरसं क्रुद्धं सहस्राक्षं महाभुजम् । सहस्रपाणिं दुर्द्धर्षं युगान्तानलसन्निभम्

दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रधरं प्रभुम् ।
दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम् ॥ ३६ ॥

वीरभद्र इति ख्यातं देवदेवसमन्वितम् । स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलिः

तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोऽस्तुते। विनिन्द्य मां सयजतेगङ्गाद्वारे गणेश्वर
ततो वन्धप्रमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया। वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत्क्रतुः
मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी। तया च सार्द्धं वृषभं समारुह्ययया गणः
अन्येसहस्रशोरुद्रानिसृष्टास्तेनधीमता। रोमजाइतिविख्यातास्तस्यसाहाय्यकारिणः
शूलशक्तिगदाहस्ता दण्डोपलकरास्तथा। कालाग्निरुद्रसङ्काशा नादयन्तो दिशोदश
सर्वे वृषसमारूढा सभार्याश्चातिभीषणाः। समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखम्प्रति
सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमितिश्रुतम्। न ददृशुर्यज्ञदेशं वै दक्षस्यामिततेजसः
देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम्। वेणुवीणानिनादाढ्यं वेदवादाभिनादितम्

दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवैः समासीनम्प्रजापतिम् ॥ ४६ ॥
उवाच स प्रियो रुद्रैर्वीरभद्रः स्मयन्निव ॥ ५० ॥

वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः।
भागार्थं लिप्सया भागान् प्राप्ता यच्छत्वभीप्सितान् ॥ ५१ ॥
अथ चेत्कस्यचिदियं माया मुनिवरोत्तमाः !।
भागो भवद्भ्यो देयस्तु नाऽस्मभ्यमिति कथ्यताम् ॥ ५२ ॥

तन्ब्रूताज्ञापयति यो :वेत्स्यामो हि वयं ततः। एवमुक्त्वागणेशेनप्रजापतिपुरःसराः

देवा ऊचुः

प्रमाणं वो न.जानीमो भागे मन्त्रा इतिप्रभुम्। मन्त्राऊचुःसुरा यूयंतमोपहतचेतसः
येनाध्वरस्य राजानं पूजयेयुर्महेश्वरम्। ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हरः
पूज्यते सर्व यज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः। एवमुक्त्वा महेशानमायया नष्टचेतनाः
नमेनिरेययुर्मन्त्रा देवान्मुक्त्वास्वमालयम्। ततः सभद्रोभगवान्सभार्यःसगणेश्वरः
स्पृशन् कराभ्यां विप्रर्षिदधीचंप्राहदेवहा। मन्त्राःप्रमाणं नकृतायुष्माभिर्बलदर्पितैः
यस्मात्प्रसह्यतस्माद्वोनाशयाम्यद्यगर्वितान्। इत्युक्त्वा यज्ञशालांतांददाहगणपुङ्गवः
गणेश्वराश्चसंक्रुद्धा यूपानुत्पाट्यचिक्षिपुः। प्रस्तोत्रासहहोत्रा चअश्वश्चैवगणेश्वराः

गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्रोतसि चिक्षिपुः।

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्यैवोद्यतं करम् ॥ ६१ ॥
व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषांदिवौकसाम् । भगनेत्रे तथोत्पाट्य कराग्रेणैवलीलया
निहत्यमुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत् । तथा चन्द्रमसं देवंपादाङ्गुष्ठेन लीलया
धर्षयामासवलवान् स्मयमानोगणेश्वरः । वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वाजिह्वामुत्पाट्यलीलया
जघानमूर्द्धिन पादेन मुनीनपिमुनीश्वराः । तथा विष्णुंसगरुडं समायान्तं महावलः
विव्याधनिशितैर्वाणैःस्तम्भयित्वासुदर्शनम् । समालोक्यमहाबाहुरागत्यगरुडोगणम्
जघानपक्षैः सहसा ननादाम्वुनिधिर्यथा । ततः सहस्रशो रुद्रःससर्जगरुडान् स्वयम्
वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्रुवुः ।
तान्दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजवः ॥ ६८ ॥
विसृज्य माधवं वेगात्तदद्भुतमिवाभवत् । अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः
आगत्य वारयामास वीरभद्रञ्च केशवम् । प्रसादयामास च तं गौरवात्परमेष्ठिनः
संस्तूयभगवानीशं।शम्भुस्तत्रागमत्स्वयम् । वीक्ष्यदेवाधिदेवं तमुमांसर्वगुणैर्वृताम्
तुष्टावभगवान् ब्रह्मादक्षःसर्वेदिवौकसः । विशेषात्पार्वतीं देवीमीश्वरार्द्धशरीरिणीम्
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्यचकृताञ्जलिः । ततोभगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्
प्रसन्नमनसा रुद्रं वचःप्राहघृणानिधिः । त्वमेवजगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षिता
अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापिदिवौकसः । ततः प्रहस्यभगवान् कपर्द्दीनीललोहितः
उवाच प्रणतान्देवान् प्राचेतसमथो हरः । गच्छध्वंदेवताः सर्वाः प्रसन्नोभवतामहम्
संपूज्यःसर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहंविशेषतः । त्वञ्चाऽपि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्
त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः ।
भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम ॥ ७८ ॥
तावत्तिष्ठ ममादेशात्स्वाधिकारेषु निर्वृतः । एवमुक्त्वातुभगवान्सपत्नीकःसहानुगः
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः । अन्तर्हिते महादेवे शङ्करे पद्मसम्भवः
व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम् ।

किञ्चायं भवतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे ॥ ८१ ॥
यदा च स स्वयं देवः पालयेत्त्वामतन्द्रितः । सर्वेषामेव भूतानां ह्येष परमेश्वरः ॥
पश्यन्ति यंब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः । स चात्मासर्वभूतानांसवीजं परमा गतिः
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः । तमर्च्चयन्ति ये रुद्रं स्वात्मना च सनातनम्
चेतसा भावयुक्तेन ते यान्ति परमं पदम् ।
तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम् ॥ ८५ ॥
कर्म्मणामनसावाचासमाराधययत्नतः । यत्नात्परिहरेशस्यनिन्दांस्वात्मविनाशनीम्
भवन्तिसर्वदोषाय निन्दकस्यक्रिया हि ताः । यस्तुचैषमहायोगीरक्षकोविष्णुरव्ययः
सदेवो भगवान्रुद्रो महादेवोनसंशयः । मन्यन्ते ये जगद्योनिंविभिन्नंविष्णुमीश्वरात्
मोहादवेदनिष्ठत्वात्ते यान्ति नरकंनराः । वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजोभवन्ति ते । योविष्णुःसस्वयंरुद्रोयोरुद्रःसजनार्द्दनः
इति मत्वाभजेद्देवं स यातिपरमांगतिम् । सृजत्येषजगत्सर्वंविष्णुस्तत्पश्यतीश्वरः
इत्थं जगत्सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम् । तस्मात्त्यक्त्वाहरेर्निन्दांहरे चापिसमाहितः
समाश्रय महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम् । उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चस्य प्रजापतिः
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम् । येऽन्येशापाग्निनिर्द्दग्धाःदधीचस्यमंहर्षयः
द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूवुः कलिष्वथ ।
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवाः ॥ ९५ ॥
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मणो वचनादिह । मुक्तशापास्ततः सर्वेकल्पान्तेरौरवादिषु
निपात्यमानाःकालेनसम्प्राप्यादित्यवर्चसम् । ब्रह्माणंजगतामीशमनुज्ञाताःस्वयम्भुवा
समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम् । भविष्यन्ति यथापूर्वंशङ्करस्य प्रसादतः
एतद्वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम् । शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासांचैव सन्ततिम्
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

———

षोडशोऽध्यायः

दक्षकन्यावंशवर्णनम्

सूत उवाच

प्रजाःसृजति सन्दिष्टःपूर्वंदक्षः स्वयंभुवा । ससर्जदेवान्गन्धर्वान्नृषींश्चैवासुरोरगान्
यदास्य सृजतः पूर्वं न व्यवर्द्धन्त ताः प्रजाः । तदा ससर्जभूतानिमैथुनेनैव सर्व्वतः
अशिक्न्यांजनयामासवीरणस्यप्रजापतेः । सुतायांधर्म्मयुक्तायांपुत्राणान्तुसहस्रकम्
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु । षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्यावैरिण्यां वै प्रजापतिः
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश । विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते । द्वे चैवांगिरसेतद्वत्तासांवक्ष्येऽथविस्तरम्
मरुत्वतीवसुर्यामालम्बाभानुररुन्धती । संकल्पाचमहूर्त्ताच साध्याविश्वाचभामिर्नी
धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासांपुत्रान्निबोधत ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायां साध्या साध्यानजीजनत् ॥ ८ ॥
मरुत्वत्यांमरुत्वन्तोवस्वोस्तुवसवस्तथा । भानोस्तुभानवाश्चैवमुहूर्त्तास्तुमुहूर्त्तजाः
लम्बायाश्चाथघोषोवैनागवीथा तु यामिजा । पृथिवीविषयंसर्व्वमरुन्धत्यामजायत
सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो धर्म्मपुत्रा दश स्मृताः ।
ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥ ११ ॥
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवाऽनलोऽनिलः ॥ १२ ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तोध्वनिस्तथा ॥ १३ ॥
ध्रुवस्य पुत्रोभगवान्कालोलोकप्रकालनः । सोमस्यभगवान्वर्चाधरस्यद्रविणः सुतः
मनोजवो नलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा ।

कुमारो ह्यनिलस्यासीत्सेनापतिरिति स्मृतः ॥ १५ ॥
देवलो भगवान्योगी प्रत्यूषस्याऽभवत्सुतः ।
विश्वकर्म्मा प्रभासस्य शिल्पकर्त्ता प्रजापतिः ॥ १६ ॥

अदितिर्द्दितिर्द्दनुस्तद्वदरिष्ठा सुरसा तथा । सुरभिर्विनता चैव ताम्राक्रोधवशात्विरा कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञातत्पुत्रान्वै निबोधत । अंशो धाताभगस्त्वष्टामित्रोऽथवरुणोऽर्य्यमा विवस्वान्सवितापूषाह्यंशुमान्विष्णुरेव च । तुषितानामतेपूर्व्वंचाक्षुषस्यान्तरेमनोः वैवस्वतेऽन्तरेप्रोक्ताआदित्याश्चादितेःसुताः । दितिःपुत्रद्वयंलेभेकश्यपाद्बलगर्वितम् हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथानुजम् । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः

आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेश्वरम् ।
दृष्ट्वा लेभे वरान्दिव्यांस्तुत्वाऽसौ विविधैस्स्तवैः ॥ २२ ॥

अथ तस्यबलाद्देवासर्वएवमहर्षयः । बाधितास्ताडिताजग्मुर्द्देवदेवंपितामहम ॥ २३ ॥ शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम् । ब्रह्माणं लोककर्त्तारं त्रातारं पुरुषं परम् कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम् । स याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः । संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि ॥ २६ ॥ क्षीरोदस्योत्तरं कूलंयत्रास्तेहरिरीश्वरः । दृष्ट्वा देवंजगद्योनिंविष्णुं विश्वगुरुं शिवम्

ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत ।

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः ॥ २८ ॥

व्यापी सर्वामरवपुर्म्महायोगी सनातनः । त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानप्रकृतिः परा वैराग्यैश्वर्यनिरतोवागतीतोनिरञ्जनः । त्वं कर्त्ताचैव भर्त्ता च विहन्ता च सुरद्विषाम् त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्रातासि परमेश्वरः । इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणासम्प्रबोधितः

प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासाः सुरान्द्विजाः ।
किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः ॥ ३२ ॥
इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः ।

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ ३३ ॥

बाधते भगवन्दैत्यो देवान् सर्व्वान् सहर्षिभिः ।

अवध्यः सर्व्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तमम् ॥ ३४ ॥

हन्तुमर्हसि सर्व्वेषां त्राताऽसि त्वं जगन्मय । श्रुत्वातद्दैवतैरुक्तंस विष्णुर्लोकभावनः
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत्पुरुषं स्वयम् । मेरुपर्व्वतवर्ष्माणं घोररूपंभयानकम्
शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः । हत्वा तं दैत्यराजानं हिरण्यकशिपुं पुनः
इमं देशंसमागन्तुं क्षिप्रमर्हसिपौरुषात् । निशम्य वैष्णवंवाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्
महापुरुषमव्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम् । विमुञ्चन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ३६
आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः । आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम् ॥ ४०

समं च चक्रिरे नादं तथा दैत्यपतेर्भयात् ।

असुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवनोदितः ॥ ४१ ॥

विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमो जनार्द्दनम् । ततः सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्
सन्नद्धैः सायुधैःपुत्रैः सप्रह्लादैस्तदा ययौ । दृष्ट्वा तं गरुडारूढं सूर्य्यकोटिसमप्रभम्
पुरुषं पर्व्वताकारं नारायणमिवापरम् । दुद्रुवुः केचिदन्योन्यमूचुः सम्भ्रान्तलोचनाः
अयंस देवो देवानांगोप्ता नारायणोरिपुः । अस्माकमव्ययो नूनंतत्सुतोवासमागतः
इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजुः पुरुषायते । सतानिचाक्षतो देवोनाशयामासलीलया
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारःप्रथितौजसः । पुत्रंनारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिःस्वनाः
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एवच । प्रह्लादः प्राहिणोद्ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम्

संह्लादश्चापि कौमारमाग्नेयं ह्लाद एव च ।

तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्य्यस्त्राणि वैष्णवम् ॥ ४६ ॥

नशेकुश्चालितुं विष्णुम्वासुदेवं यथातथम् । अथासौचतुरः पुत्रान्महाबाहुर्म्महाबलः
प्रगृह्य पादेषु करैश्चिक्षेप च ननाद च । विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुः स्वयम्

पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली । स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुगः
अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणःप्रभुः । गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा
सञ्चिन्त्य मनसादेवःसर्व्वज्ञानमयोऽमलः । नरस्यार्द्धतनुं कृत्वासिंहस्यार्द्धतनुं तथा
नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे । आविर्बभूव सहसा मोहयन्दैत्यदानवान्
दंष्ट्राकरालोयोगात्मा युगान्तदहनोपमः । समारुह्याऽऽत्मनःशक्तिसर्वसंहारकारिकाम्

भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रविः ।
दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम् ॥ ५७ ॥

वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः । इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्मादूनशक्तिकम् ॥
सहैव तेऽनुजैः सर्वैर्नाशयाऽऽशुमयेरितः । सतन्नियोगादसुरःप्रह्लादोविष्णुमव्ययम्
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः । ततः संमोहितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च । तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
न हानिमकरोदस्त्रं तथा देवस्य शूलिनः । दृष्ट्वापराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात्
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् । सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेनचेतसा

ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ।
स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसम्भवैः ॥ ६४ ॥

निवार्यपितरंभ्रातॄन् हिरण्याक्षंतदाब्रवीत् । अयंनारायणोऽनन्तःशाश्वतो भगवानजः
पुराणःपुरुषोदेवो महायोगी जगन्मयः । अयंधाताविधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः
प्रधानं पुरुषं तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्यया । ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ॥
गच्छध्वमेनंशरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् । एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुःस्वयम्

प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ।
अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ॥ ६६ ॥

समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः । विहस्य पितरं पुत्रो वचःप्राहमहामतिः
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् । कथं देवो महादेवः शाश्वतःकालवर्जितः
कालेनहन्यतेविष्णुःकालात्मा कालरूपधृक् । ततःसुवर्णकशिपुर्दुरात्माकालचोदितः

निवारितोऽपिपुत्रेण युयुधे हरिमव्ययम् । संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः । हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः
विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः । अनुह्लादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः
नृसिंहदेहसम्भूतैः सिंहैर्नीता यमक्षयम् । ततः संहृत्य तद्रूपं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥
स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम् । गते नारायणे दैत्यः प्रह्लादोऽसुरसत्तमः
अभिषेकेणयुक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत् । स बाधयामास सुरान्रणे जित्वामुनीनपि

लब्ध्वाऽन्धकं महापुत्रं तपसाऽऽराध्य शङ्करम् ।
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् क्षुब्ध्वा च धरणीमिमाम् ॥ ७६ ॥

नीत्वारसातलंचक्रेवेदान्वैनिष्प्रभांस्तथा । ततःसब्रह्मकादेवाः परिम्लानमुखश्रियः

गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम् ।
स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः ॥ ८१ ॥

सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहञ्च पुरा दधे । गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः ॥

दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम् ।
त्यक्त्वा वाराहसंस्थानं संस्थाप्यैवं सुरद्विषः ॥ ८३ ॥

स्वामेवप्रकृतिंदिव्यांययौविष्णुः परंपरम् । तस्मिन्हतेऽमररिपौप्रह्लादोविष्णुतत्परः
अपालयत्स्वकंराज्यंभावंत्यक्त्वातदासुरम् । यजतेविधिवद्देवान्विष्णोराराधनेरतः
निःसपत्नंसदाराज्यंतस्यासीद्विष्णुवैभवात् । ततःकदाचिदसुरोब्राह्मणंगृहमानतम्
न च सम्भावयामास देवानाञ्चैव मायया । स तेन तापसोऽत्यर्थंमोहितेनावमानितः
शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः । यत्तद्वलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे ॥

सा शक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशन्ते गमिष्यति ।
इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद्द्विजः ॥ ८६ ॥

मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात्ततः । बाधयामासविप्रेन्द्रान्नविवेदजनार्द्दनम्
पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधञ्चक्रे हरिं प्रति । तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥
नारायणस्य दैत्यस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः । कृत्वा तु सुमहद्युद्धं विष्णुना तेनानिर्जितः

पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात्परस्मिन्पुरुषे हरौ । सञ्जातं तस्य विज्ञानंशरण्यं शरणंययौ
ततः प्रभृतिदैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन् । नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि । अवाप तन्महद्राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः ॥
हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः । मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम् ॥
पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः । ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः ॥ ९७ ॥
ततः कदाचिन्महतीकालयोगेनदुस्तरा । अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद्भूतविनाशिनी

समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम् ।
अयाचन्तः क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम् ॥ ९९ ॥

स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः । सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा ॥
गते च द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शङ्करी । बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत् ॥
ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम् । महर्षि गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः

निवारयामास च तान् कञ्चित्कालं यथासुखम् ।
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः ॥ १०३ ॥

ततोमायामयीं सृष्ट्वा कृष्णां गां सर्वएवते । समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्यमहात्मनः

सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः ।
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा ॥ १०५ ॥

स शोकेनाभिसन्तप्तःकार्याकार्यंमहामुनिः । नपश्यतिस्मसहसा तमृषिमुनयोऽब्रुवन्
गोवध्येयंद्विजश्रेष्ठ! यावत्तव शरीरगा । तावत्तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेवहि
तेनातोऽनुमताः सन्तो देवदारुवनंशुभम् । जग्मुः पापवशन्नीत्वातपश्चर्तुं यथापुरा
सतेषांमाययाजातांगोवध्यांगौतमोमुनिः । केनापिहेतुनाज्ञात्वाशशापातीव कोपतः

भविष्यन्ति त्रयी बाह्या महापातकिभिः समाः ।
बहुशस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः ॥ ११० ॥

सर्वेसम्प्राप्यदेवेशंशङ्करंविष्णुमव्ययम् । अस्तुवन्लौकिकैःस्तोत्रैरुच्छिष्टाइवसर्वगौ

देवदेवौ महादेवौ भक्तानामत्तिनाशनौ । कामवृत्त्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हथः

तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः।
किमेतेषां भवेत्कार्य्यं प्राह पुण्यैषिणामिति ॥ ११३ ॥
ततःसभगवान्विष्णुः शरण्योभक्तवत्सलः। गोपतिंप्राहविप्रेन्द्रानालोक्यप्रणतान्हरिः
न वेदबाह्ये पुरुषेपुण्यलेशोऽपि शङ्कर। सङ्गच्छते महादेव धर्मो वेदाद्विनिर्बभौ ॥
तथापिभक्तवात्सल्याद्रक्षितव्यामहेश्वरः। अस्माभिः सर्व एवैते गन्तारो नरकानपि
तस्माद्विवेदबाह्यानांरक्षणार्थायपापिनाम्। विमोहनायशास्त्राणिकरिष्यामोवृषध्वज
एवंसम्बोधितोरुद्रो माधवेन मुरारिणा। चकारमोहशास्त्राणि केशवोऽपिशिवेरितः
कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्। पञ्चरात्रं पाशुपतं तथाऽन्यानि सहस्रशः
सृष्ट्वा तानाह निर्वेदाः कुर्वाणाःशास्त्रचोदितम्।
पतन्तो नरके घोरे बहून्कल्पान् पुनः पुनः ॥ १२० ॥
जायन्तो मानुषेलोके क्षीणपापचयास्ततः। ईश्वराराधनबलाद्गच्छध्वं सुकृताङ्गतिम्
वर्त्तध्वंमत्प्रसादेन नान्यथानिष्कृतिर्हिवः। एवमीश्वरविष्णुभ्यांचोदितास्तेमहर्षयः
आदेशंप्रत्यपद्यन्तशिवस्यासुरविद्विषः। चक्रुस्तेऽन्यानिशास्त्राणि तत्र तत्ररताःपुनः
शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वाफलानि च। मोहापसदनं लोकमवतीर्य महीतले ॥
चकार शङ्करो भिक्षां हितार्थेषां द्विजैःसह। कपालमालाभरणःप्रेतभस्मावगुण्ठितः
विमोहयंल्लोकमिमंजटामण्डलमण्डितः। निक्षिप्यपार्वतींदेवीं विष्णावमिततेजसि
नियोज्य भगवानरुद्रो भैरवं दुष्टनिग्रहे। दत्त्वा नारायणे देव्यानन्दनं कुलनन्दनम् ॥
संस्थाप्य तत्र च गणान्देवानिन्द्रपुरोगमान्।
प्रस्थिते च महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम् ॥ १२८ ॥
स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम्। ब्रह्माहुताशनःशक्रो यमोऽन्ये सुरपुङ्गवाः
सिषेविरे महादेवीं स्त्रीरूपं शोभनङ्गताः। नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभः
द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत। एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः
आहर्त्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम्। सम्प्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शङ्करः कालभैरवः
न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः। तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥

शूलेनोरसितं दैत्यमाजघान वृषध्वजः । ततः सहस्रशो दैत्या सहस्रान्धकसञ्ज्ञिताः
नन्दीश्वरादयो दैत्यैरन्धकैरभिनिर्जिताः । घण्टाकर्णो मेघनादश्चण्डेशश्चण्डतापनः
विनायकोमेघवाहःसोमनन्दी च वैद्युतः । सर्वेऽन्धकंदैत्यवरंसम्प्राप्यातिबलान्विताः
युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधैः । भ्रामयित्वा तु हस्ताभ्यांगृहीत्वाचरणद्वये
दैत्येन्द्रेणाऽतिबलिना क्षिप्तास्तेशतयोजनम् । ततोऽन्धकनिसृष्टाशतशोऽथसहस्रशः
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवश्चाभिदुद्रुवुः । हाहेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयङ्करः ॥
युयुधे भैरवो देवः शूलमादाय भैरवम् । दृष्ट्वान्धकानां सुबलं दुर्जयन्निर्जितो हरः ॥

जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ।
सोऽसृजद्भगवान्विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम् ॥ १४१ ॥

देवीपार्श्वस्थितो देवोविनाशायसुरद्विषाम् । तदान्धकसहस्रन्तुदेवीभिर्यमसादनम्
नीतं केशवमाहात्म्याल्लीलयैवरणाजिरे । दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः ॥
पराङ्मुखोरणात्तस्मात्पलायतमहाजवः । ततःक्रीडांमहादेवःकृत्वाद्वादशवार्षिकीम्
हिताय भक्तलोकानामाजगामाथ मन्दरम् । सम्प्राप्तमीश्वरंज्ञात्वा सर्वएव गणेश्वराः
समागम्योपतिष्ठन्त भानुमन्तमिव द्विजाः । प्रविश्यभवनं पुण्यमयुक्तानां दुरासदम्
ददर्श नन्दिनन्देवं भैरवं केशवं शिवः । प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम् ॥
प्रीत्यैनं पूर्वमीशानःकेशवंपरिषस्वजे । दृष्ट्वा देवो महादेवीं प्रीतिविस्फारितेक्षणाम्
प्रणतः शिरसा तस्याः पादयोरीश्वरस्य च । न्यवेदयज्जयन्तस्मै शङ्करायाथ शङ्करः

भैरवो विष्णुमाहात्म्यम्प्रतीतःपार्श्वगोऽभवत् ।
श्रुत्वा तं विजयं शम्भुर्विक्रमं केशवस्य च ॥ १५० ॥

समास्ते भगवानीशो देव्यासह वरासने । ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखाद्विजाः
आजग्मुर्मन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् । येन तद्विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम्
समागतन्दैत्यसैन्यमीशदर्शनकाङ्क्षया । दृष्ट्वा वरासनासीनन्देव्या चन्द्रविभूषणम्
प्रणेमुरादराद्देव्योगायन्तिस्मातिलालसाः । प्रणेमुर्गिरिजां देवींवामपार्श्वेपिनाकिनः
देवासनगतां देवीं नारायणमनोमयीम् । दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्यो नारायणं तथा

प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गनाः ।

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयम्बाला रविप्रभा ॥ १५६ ॥

को न्वयम्भाति वपुषा पङ्कजायतलोचनः । निशम्यतासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः । अयन्नाराणो गौरी जगन्माता सनातनः
विभज्यसंस्थितोदेवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः । न मे विदुः परन्तत्त्वं देवाश्चन महर्षयः

एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च ।

अहं हि निस्पृहःशान्तः केवलो निष्परिग्रहः ॥ १६० ॥

मामेव केशवं प्राहुर्लक्ष्मीं देवीमथाम्बिकाम् । एषधाता विधाताच कारणंकार्यमेव च
कर्त्ताकारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्त्ता कालरूपधृक्

स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।

कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नाराणोऽव्ययः ॥ १६३ ॥

तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम् । सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना
शान्ता सत्या सदानन्दा परम्पदमितिश्रुतिः । अस्याः सर्वमिदञ्जातमत्रैवलयमेष्यति
एषैव सर्वभूतानाङ्गतीनामुत्तमा गतिः । तयाऽहं सङ्गतो देव्या केवलो निष्कलः परः
पश्याम्यशेषमेवाहं परमात्मानमव्ययम् । तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम्

एकमेव विजानीथ ततो यास्यथ निर्वृतिम् ।

मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विताः ॥ १६८ ॥

येभिन्नदृष्ट्या चेशानं पूजयन्तोनमेप्रियाः । द्विषन्ति येजगत्सूतिं मोहितारौरवादिषु
पच्यमाना नमुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि । तस्मादशेषभूतानां रक्षकोविष्णुरव्ययः
यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः । श्रुत्वा भगवतोवाक्यं देवाःसर्वेगणेश्वराः
नेमुर्नारायणं देवन्देवीं चहिमशैलजाम् । प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे । ततो नारायणं देवं गणेशा मातरोऽपि च ॥
नपश्यन्ति जगत्सूतिन्तदद्भुतमिवाभवत् । तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्धकोमन्मथान्धकः

मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ ।
अथानन्तवपुः श्रीमान्योगी नारायणोऽमलः । तत्रैवाविरभूद्दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः
कृत्वाऽथ पार्श्वे भगवन्तमीशो युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः ।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः स कालरुद्रोऽपि जगाम देवः ॥ १७६ ॥
त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात् ।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः ॥ १७७ ॥
रराज मध्ये भगवान् सुराणां विवाहनो वारिजपर्णवर्णः ।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढस्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः ॥ १७८ ॥
जयन्ननादिर्भगवानमेयो हरः सहस्राकृतिराविरासीत् ।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोषः पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः ॥ १७६ ॥
समागतं वीक्ष्य गणेशराजं समावृतं दैत्यरिपुं गणेशैः ।
युयोध शक्रेण समातृकाभिर्गणैरशेषैरमरप्रधानैः ॥ १८० ॥
विजित्य सर्वानपिबाहुवीर्यात्स संयुगे शम्भुरनन्तधामा ।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः ॥ १८१ ॥
दृष्ट्वान्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः । व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम्
हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम् ।
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते ॥ १८३ ॥
त्वं हर्त्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः ।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणैः ॥ १८४ ॥
स वासुदेवस्यवचोनिशम्यभगवान् हरः । निरीक्ष्यविष्णुं हननेदैत्येन्द्रस्यमतिन्दधौ
जगाम देवतानीकं गणानां हर्षवर्द्धनम् । स्तुवन्ति भैरवन्देवमन्तरीक्षचरा जनाः ॥
जयानन्त महादेव कालमूर्त्ते सनातन । त्वमग्निः सर्वभावानामन्तस्तिष्ठसि सर्वगः
त्वमन्तको लोककर्त्ता त्वन्धाताहरिरव्ययः । त्वंब्रह्मात्वंमहादेवस्त्वन्धामपरमं पदम्
ओङ्कारमूर्त्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः । महाविभूतिर्विश्वेशो जयानन्तजगत्पते

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वाऽन्धकमीश्वरः ।
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त्त सताङ्गतिः ॥ १६० ॥
दृष्ट्वान्धकन्देवगणाःशूलप्रोतंपितामहः । प्रणेमुरीश्वरंदेवंभैरवम्भवमोचनम् ॥ १६१ ॥
अस्तुवन्मुनयःसिद्धाजगुर्गन्धर्वकिन्नराः । अन्तरीक्षेऽप्सरःसङ्घानृत्यन्तिस्ममनोहराः
संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्विषः ।
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १६३ ॥

अन्धक उवाच

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं समाहितो यं विदुरीश तत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं कालं कविं योगवियोगहेतुम् ॥ १६४ ॥
दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्तं भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ॥ १६५ ॥
जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे विभागहीनामलतत्त्वरूप !।
त्वमग्निरेको वहुधाभिपूज्यो वाह्यदिभेदैरखिलात्मरूपः ॥ १६६ ॥
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगणानुजुष्टः ॥ १६७ ॥
एकोऽन्तरात्मा वहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वमात्मतत्त्वं परमात्मशब्दं भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ॥ १६८ ॥
त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदविदां प्रसिद्धः स्वायम्भुवोऽशेषविशेषहीनः ॥ १६९ ॥
त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञः ।
प्रजापतिर्भगवानेकरूपो नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः ॥ २०० ॥
नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ २०१ ॥

नमः परस्मै तमसः परस्तात्परात्मने पञ्चनवान्तराय ।

त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥ २०२ ॥
त्रिमूर्त्तयेऽनन्तपदात्ममूर्त्ते जगन्निवासाय जगन्मयाय ।
नमो जनानां हृदि संस्थिताय फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ २०३॥
मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्मऐश्वर्य्यधर्म्मासनसंस्थिताय ।
नमः परान्ताय भवोद्भवाय सहस्रचन्द्रार्कसहस्रमूर्त्ते ॥ २०४ ॥
नमोऽस्तु सोमाय सुमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यबाहो ॥
नमोऽग्निचन्द्रार्कविलोचनाय नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय ॥ २०५ ॥
नमोऽस्तु गुह्याय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ॥ २०६ ॥
एवं स्तुतः स भगवान् शूलाग्रादवतार्य तम् ।
तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा च परमेश्वरः ॥ २०७ ॥
प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेनसाम्प्रतम् । सम्प्राप्यगाणपत्यंमेसन्निधानेसदावस
अरोगश्छिन्नसन्देहो देवैरपि सुपूजितः । नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः ॥
एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः । गणेश्वरं महादैत्यमन्धकं देवसन्निधौ ॥ २१०
सहस्रसूर्य्यसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम् । नीलकण्ठं जटामौलिंशूलासक्तं महाकरम्
दृष्ट्वातन्तुष्टुवुर्दैत्यमाश्चर्यं परमङ्गताः । उवाच भगवान्विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव ॥२१२
स्थानेतवमहादेव प्रभावः पुरुषो महान् । नेक्षतेज्ञातिजान् दोषान् गृह्णातिचगुणानपि
इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवः सकेशवःसहान्धकोजगामशङ्करान्तिकम्
निरीक्ष्यदेवमागतं सशङ्करःसहान्धकम् समाधवं समातृकं जगामनिर्वृतिहरः ॥
प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजं जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा
विलोकयसासमागतं पतिम्भवार्तिहारिणम् उवाच सान्धकंसुखंप्रसादमन्धकम्प्रति
अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगां पपात दण्डवत्क्षितौ ननामपादपद्मयोः
नमामि देववल्लभानादिमद्रिजामिमां यतः प्रधानपूरुषौ निहन्ति याऽखिलञ्जगत्
विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया ।

हिरण्मयेऽतिनिर्म्मले नमामि तां हिमाद्रिजाम् ॥
यदन्तराखिलञ्जगज्जगन्ति यान्ति सङ्क्षयं,
नमामि यत्र तामुमामशेषदोषवर्ज्जिताम् ॥ २१७ ॥
न जायते नहीयते नवर्द्धतेचतामुमां नमामि तां गुणातिगांगिरीशपुत्रिकामिमाम्
क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहितं सुरासुरैर्नमस्कृतं नमामि ते पदाम्बुजम्
इत्थं भगवती देवी भक्तिनम्रेण पार्व्वती । संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वेजगृहेऽन्धकम्
ततः स मातृभिः सार्द्धं भैरवोरुद्रसम्भवः । जगाम त्वाज्ञयाशम्भोः पातालं परमेश्वरः
यत्र सा तामसी विष्णोर्मूर्त्तिः संहारकारिका ।
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वरः ॥ २२१ ॥
ततोऽनन्ताकृतिः शम्भुः शेषेणाऽपि सुपूजितः ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजाऽऽत्मानमात्मनि ॥ २२२ ॥
युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वाएवाथ मातरः । बुभुक्षिता महादेवं प्रणम्याहुस्त्रिलोचनम्

मातर ऊचुः

बुभुक्षितामहादेव त्वमनुज्ञातुमर्हसि । त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामोनान्यथा तृप्तिरस्तिनः
एतावदुक्त्वा वचनंमातरो विष्णुसम्भवाः । भक्षयाञ्चक्रिरे सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम्
ततः स भैरवो देवो नृसिंहवपुषं हरिम् । दध्यौनारायणं देवं प्रणम्य च कृताञ्जलिः
उमेशचिन्तितं ज्ञात्वा क्षणात्प्रादुरभूद्धरिः । विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीयाभगवन्निति । संस्मृता विष्णुनादेव्योनृसिंहवपुषापुनः
उपतस्थुर्म्महादेवं नरसिंहाकृतिं ततः ॥ २२८ ॥
सम्प्राप्य सन्निधिं विष्णोः सर्वाः संहारकारिकाः ।
प्रददुः शम्भवे शक्तिं भैरवायाऽतितेजसे ॥ २२९ ॥
अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमतिभैरवम् । क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिश्चापि मातरः
व्याजहार हृषीकेशोये भक्ताः शूलपाणये । येच मां संस्मरन्तीह पालनीयाःप्रयत्नतः
मयैव मूर्त्तितला सर्वसंहारकारिका । महेश्वराङ्गसम्भवा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी

अनन्तोऽभगवान् कालो द्विधावस्थाममैव तु । तामसी राजसी मूर्त्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः

सोऽहं देवो दुराधर्षः कालोलोकप्रकालनः ।
भक्षयिष्यामि कल्पान्ते रौद्रेण निखिलं जगत् ॥ २३४ ॥
या सा विमोहिनी मूर्त्तिर्मम नारायणाह्वया ।
सत्त्वोद्रिक्ता जगत्सर्वं संस्थापयति नित्यदा ॥ २३५ ॥

स विष्णुः परमं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः । मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देतिकथ्यते
इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विष्णुमातरः । प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं परम्
एतद्वः कथितं सर्वं मयान्धकनिषूदनम् । माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे दक्षकन्यावंशानुकार्त्तनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

त्रिविक्रमचरितवर्णनम्

सूत उवाच

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः । विरोचनो नाम बली बभूव नृपतिःसुतः
देवाञ्जित्वासदेवेन्द्रान् बहून्वर्षान्महासुरः । पालयामास धर्म्मेणत्रैलोक्यंसचराचरम्
तस्यैवंवर्त्तमानस्य कदाचिद्विष्णुचोदितः । सनत्कुमारो भगवान् पुरंप्रापमहामुनिः
गत्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः । ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरोत्तमम् ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्यतोऽसौ ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ५ ॥

किमर्थमागतोब्रह्मन् स्वयंदेवः पितामहः । ब्रूहिमेब्रह्मणःपुत्र किंकार्य्यं करवाण्यहम्
सोऽब्रवीद्भगवान्देवो धर्मयुक्तं महासुरम् । द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तंभाग्यवानसि
सुदुर्लभा[illegible]

इत्युक्तोऽसुरराजोऽसौ पुनः प्राह महामुनिम् । धर्माणां परमं धर्मंब्रूहि मेब्रह्मवित्तम
सोऽब्रवीद्भगवान्योगी दैत्येन्द्राय महात्मने । सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम् ॥
सलब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ११ ॥
स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः ।
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरन्दरम् ॥ १२ ॥
कृत्वा तेन महद्युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः । जगाम निर्जितोविष्णुं देवं शरणमच्युतम्
तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता ।
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम् ॥ १४ ॥
तताप सुमहाघोरं तपोराशिं ततः परम् । प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्
कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलंपरमम्पदम् । वासुदेवमनाद्यन्त मामन्दंव्योमकेवलम्
प्रसन्नो भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः । आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः
दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता । मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम्

अदितिरुवाच

जयाऽशेषदुःखौघनाशैकहेतो! जयानन्त! माहात्म्ययोगाभियुक्त !।
जयाऽनादिमध्यान्तविज्ञानमूर्त्ते! जयाऽऽकाशकल्पामलानन्दरूप !॥ १६ ॥
नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम् ।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते ॥ २० ॥
नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम् ।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते ॥ २१ ॥
नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्त्ते! नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य !।
नमो भूधरायाऽप्रमेयाय तुभ्यं प्रभो! विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥ २२ ॥
नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम् ।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं [illegible] भूयो नमस्ते ॥ २३ ॥

एवं स भगवान् विष्णुर्देवमात्रा जगन्मयः । तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव
प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम् । त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम्
तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः । दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततो बहुतिथेकाले भगवन्तं जनार्द्दनम् । दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम्
समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम् । उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचनेः पुरे ॥२८॥
निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान्दैत्येन्द्रो भयविह्वलः । प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम्

बलिरुवाच

पितामहमहाप्राज्ञजायतेऽस्मिन्पुरान्तरे । किमुत्पातोभवेत्कार्यमस्माकंकिंनिमित्तकः
निशम्य तस्य वचनश्चिरं ध्यात्वामहासुरः । नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्

प्रह्लाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यतेविष्णुर्यस्यसर्वमिदञ्जगत् । दधारासुरनाशार्थंमातातंत्रिदिवौकसाम्

यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि ।
स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत् ॥ ३३ ॥

न यस्य देवा जानन्तिस्वरूपंपरमार्थतः । स विष्णुरदितेर्देहंस्वेच्छयाद्यसमाविशत्
यस्माद्भवन्तिभूतानियत्र संयान्तिसंक्षयम् । सोऽवतीर्णोमहायोगीपुराणपुरुषोहरिः
न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना । सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेनजायते

यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी ।
माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्द्दनः ॥ ३७ ॥

यस्यसातामसीमूर्त्तिःशङ्करो राजसीतनुः । ब्रह्मासञ्जायते विष्णुरंशेनैकेनसत्त्वधृक्
इतिसञ्चिन्त्यगोविन्दंभक्तिनम्रेणचेतसा । तमेवगच्छशरणंततोयास्यसिनिर्वृतिम्
ततःप्रह्लादवचनाद्बलिर्वैरोचनिर्हरिम् । जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मवित् ॥
काले प्राप्ते महाविष्णुंदेवानांहर्षवर्द्धनम् । असूत कश्यपाच्चैनंदेवमातादितिःस्वयम्
चतुर्भुजंविशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानंश्रियावृतम्
उपतस्थुः सुराः सर्वेसिद्धाःसाध्याश्चचारणाः । उपेन्द्र इन्द्रप्रमुखाब्रह्माचर्षिगणैर्वृतः

कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः । सदाचारं भरद्वाजात्त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥
एवं च लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

ततः कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनिःस्वयम् ।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्च्चयामास सर्वगम् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणान्पूजमामास दत्त्वा बहुतरं धनम् । ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः ॥

विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः ।
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत् ॥ ४८ ॥

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेनविराजितः । ब्राह्मणो जटिलोवेदानुद्गिरन्सुमहाद्युतिः

सम्प्राप्याऽसुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः ।
स्वपद्भ्यां क्रमितं देशमयाचत बलिन्त्रिभिः ॥ ५० ॥
प्रक्ष्याल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः ।
आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्म्मितम् ॥ ५१ ॥

दास्ये तथेदम्भवते पदत्रयं प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः ।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे निपातयामास सुशीतलञ्जलम् ॥ ५२ ॥
विचक्रमे पृथिवीमेव चैतामथान्तरिक्षन्दिवमादिदेवः ।
व्यपेतरागन्दितिजेश्वरन्तं प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम् ॥ ५३ ॥
आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकञ्जगाम ।
प्रणेमुरादित्यमुखाः सुरेन्द्राः ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः ॥ ५४ ॥
अथोपतस्थे भगवाननादिः पितामहस्तोषयामास विष्णुम् ।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्द्धं जगाम दिव्याभरणोऽथ भूयः ॥ ५५ ॥
अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं महाजलं पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम् ।
प्रवर्त्तिता चापि सरिद्वरा सा गङ्गेत्युक्त्वा ब्रह्मणा व्योमसंस्था ॥ ५६ ॥
गत्वा महान्तं प्रकृतिं ब्रह्मयोनिं ब्रह्माणमेकं पुरुषं विश्वयोनिम् ।
अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं दृष्ट्वा [illegible] स्तुवन्ति ॥ ५७ ॥

आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम् ।
ननाम नारायणमेकमव्ययं स्वचेतसा यं प्रणमन्ति वेदाः ॥ ५८
तमब्रवीद्भगवानादिकर्त्ता भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः ।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥ ५६ ॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो निपातयामास जलं कराग्रे ।
दास्ये तवाऽऽत्मानमनन्तधाम्ने त्रिविक्रमायाऽमितविक्रमाय ॥ ६० ॥
प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्तं प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः ।
जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥ ६१ ॥
समास्यतां भवता तत्र नित्यं भुक्त्वा भोगान्देवतानामलभ्यान् ।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम् ॥ ६२ ॥
उक्त्वैवं दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः । पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौजिष्णुरुरुक्रमः
संस्तुवन्तिमहायोगंसिद्धा देवर्षिकिन्नराः । ब्रह्माशक्रोऽथ भगवान्रुद्रादित्यमरुद्गणाः
कृत्वैतदद्भुतं कर्म्म विष्णुर्वामनरूपधृक् । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥
सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान्पातालं प्राप नोदितः । प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुभक्तस्तु तत्परः
अपृच्छद्विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम् । पूजाविधानंप्रह्लादं तदाहासौचकारसः
अथ रथचरणं सशङ्खपाणिं सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम् ।
शरणमुपययौ स भावयोगात्प्रणयगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥ ६८ ॥
एष वः कथितोविप्रा वामनस्यपराक्रमः । स देवकार्य्याणिसदा करोति पुरुषोत्तमः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे त्रिविक्रमचरितवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

———

अष्टादशोऽध्यायः

कश्यपवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

बलेः पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम् । तेषां प्रधानो द्युतिमान्बाणो नाममहाबलः

सोऽतीव शङ्करे भक्तो राजा राज्यमपालयत् ।

त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम् ॥ २ ॥

ततः शक्रादयो देवा गत्वोचुः कृत्तिवाससम् ।

त्वदीयो बाधते ह्यस्मान्बाणो नाम महासुरः ॥ ३ ॥

व्याहृतो दैवतैः सर्वैर्देवदेवो महेश्वरः । ददाह बाणस्य पुरंशरेणैकेन लीलया ॥

दह्यमाने पुरेतस्मिन्बाणो रुद्रंत्रिशूलिनम् । ययौशरणमी शानंगोपतिंनीललोहितम्

मूर्द्धन्याधाय तल्लिङ्गं शाम्भवंरागवर्जितः । निर्गत्य तु पुरात्तस्मात्तुष्टाव परमेश्वरम्

संस्तुतो भगवानीशः शङ्करो नीललोहितः । गाणपत्येन बाणंतं योजयामासभावतः

अथैवश्चदनोः पुत्रास्ताराद्याश्चातिभीषणाः । तारस्तथा शम्बरश्चकपिलः शङ्करस्तथा

स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥

सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामभवद्द्विजाः । अनेकशिरसां तद्वत्खेचराणांमहात्मनाम्

अरिष्टाजनयामास गन्धर्वाणांसहस्रकम् । अनन्ताद्यामहानागाः काद्रवेयाःप्रकीर्त्तिताः

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुङ्गवाः ।

शुकीं श्येनीञ्च भासीञ्च सुग्रीवां ग्रन्थिकां शुचिम् ॥ ११ ॥

गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा । इरा वृक्षलतावल्लीतृणजातीश्च सर्वशः

तथा वै यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा । रक्षोगणं क्रोधवशाज्जनयामास सत्तमाः

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ ।

तयोश्च गरुडो धीमांतपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥

प्रसादाच्छूलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम् ॥ १४ ॥
आराध्य तपसा देवं महादेवं तथाऽरुणः । सारथ्येकल्पितःपूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनम् ॥ १६ ॥
सप्तविंशत्सुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्याश्चसुव्रताः । अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानां ह्यनेकशः
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः । तद्वदंगिरसः श्रेष्ठा ऋषयो वृषसत्कृताः
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवः प्रहरणः सुतः ।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यकार्य्यैः स्वनामभिः ॥ १९ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे कश्यपवंशानुकीर्त्तनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ऋषिवंशकथनम्

सूत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् । कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः
तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौसुताविमौ । वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्चसुमहायशाः । रैभ्यस्य जज्ञिरेशूद्राःपुत्राः श्रुतिमतांवराः
च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महात्मनः ।
सुमेधा जनयामास पुत्रान्वै कुण्डपायिनः ॥ ४ ॥
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत । नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः
शाण्डिल्यः परमः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थविच्छुचिः ।
प्रसादात्पार्वतीशस्य योगमुक्तमवाप्तवान् ॥ ६ ॥

शाण्डिल्यो नैध्रुवो रैभ्यः त्रयः पुत्रास्तु काश्यपाः ।
नरप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः ॥ ७ ॥
तृणविन्दोः सुता विप्रा नाम्ना ऐलविला स्मृता ।
पुलस्त्याय तु राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥ ८ ॥
ऋषिस्त्वैलविलस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत ॥
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धिकाः ॥ ६ ॥

पुष्पोत्कटा च वाकाचकैकसीदेववर्णिनी । रूपलावण्यसम्पन्नास्तासाञ्च श्रृणुतप्रजाः
ज्येष्ठं वैश्रवणंतस्य सुषुवे देववर्णिनी । कैकस्यजनयत्पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्
कुम्भकर्णंशूर्पणखां तथैव चविभीषणम् । पुष्पोत्कटाप्यजनयत्पुत्रान्विश्रवसःशुभान्
महोदरं प्रहस्तञ्चमहापार्श्वं खरं तथा । कुम्भीनसींतथा कन्यांवाकायाः सृजतेप्रजाः

त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महावलः ।
इत्येते क्रूरकर्म्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश ॥
सर्वे तपोवलोत्कृष्टा रुद्रभक्ताः सुभीषणाः ॥ १४ ॥

पुलहस्यमृगाःपुत्राःसर्वेव्यालाश्चदंष्ट्रिणः । भूताःपिशाचाःसर्पाश्चशूकराहस्तिनस्तथा
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन्स्मृतोवैवस्वतेऽन्तरे । मरीचेःकश्यपःपुत्रःस्वयमेवप्रजापतिः
भृगोरथाभवच्छुक्रो दैत्याचार्योमहतपाः । स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युतिः
अत्रेःपुत्रोऽभवद्वह्निःसोदर्यस्तस्यनैध्रुवः । कृशाश्वस्यतुविप्रर्षेःघृताच्यामितिनःश्रतम्

स तस्याञ्जनयाम्मास स्वस्त्यात्रेयान्महौजसः ।
वेदवेदाङ्गनिरतान्तपसा हतकिल्विषान् ॥ १६ ॥

नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम् । ऊर्द्धरेतास्तु तत्रैव शापाद्दक्षस्य नारदः
हर्यश्वेषु तुनष्टेषुमायया नारदस्य तु । शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥
यस्मान्ममसुताःसर्वे भवतामाययाद्विज । क्षयन्नीतास्त्वशेषेणनिरपत्यो भविष्यति

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम् ।

आराध्य देवदेवेशमीशानंत्रिपुरान्तकम् । लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्
द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शङ्करः । अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम्
शुकस्याऽस्याभवन् पुत्राः पञ्चाऽत्यन्ततपस्विनः ।
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ २६ ॥
कन्याकीर्तिमतीचैवयोगमाताधृतव्रता । एतेऽत्रिवंशाःकथिता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनाम्
अत ऊद्र्ध्वं निबोधध्वं कश्यपाद्राजसन्ततिम् ॥ २८ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे ऋषिवंशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विंशोऽध्यायः

राजवंशकीर्तनम्

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात्प्रभुम् ।
तस्याऽऽदित्यस्य चैवासीद्भार्य्याणान्तु चतुष्टयम् ॥ १ ॥
सञ्ज्ञा राज्ञीप्रभाछायापुत्रांस्तासान्निबोधत । सञ्ज्ञात्वाष्ट्रीतुसुषुवेसूर्यान्मनुमनुत्तमम्
यमञ्च यमुनाञ्चैव राज्ञी रेवन्तमेव च । प्रभा प्रभातमादित्या छाया सावर्णिमात्मजम्
शनिञ्च तपतीञ्चैव विष्टिञ्चैव यथाक्रमम् ।
मनोस्तु प्रथमस्यासन्नव पुत्रास्तु तत्समाः ॥ ४ ॥
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्टःकरुषस्तथा
पृषध्रश्च महातेजा नवैते शक्रसन्निभाः । इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशं व्यवर्द्धयत्
बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण सङ्गता । असूत सोमजाद्देवी पुरूरवसमुत्तमम्
पितृणां तृप्तिकर्त्तारं बुधादिति हिनःश्रुतम् । प्राप्य पुत्रंसुविमलं सुद्युम्नइतिविश्रुतम्
इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत । उत्कलश्च गयश्चैव विनतश्च तथैव च

सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम् । इक्ष्वाकोश्चाभवद्वीरो विकुक्षिर्नामपार्थिवः
ज्येष्ठपुत्रः स तस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुताः ।
तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत्काकुत्स्थस्तु सुयोधनः ॥ ११ ॥
सुयोधनात्पृथुः श्रीमान्विश्वकश्च पृथोः सुतः ।
विश्वकादार्द्रको धीमान्युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १२ ॥
स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान् । दृष्ट्वाऽसौ गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम्
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ पुत्रकामो महीपतिः ।
अपृच्छत्कर्म्मणा केन धार्म्मिकं प्राप्नुयात्सुतम् ॥ १४ ॥

गौतम उवाच

आराध्य पुरुषं पूर्वं नारायणमनामयम् । अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम्
तस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः ।
तमादिकृष्णमीशानमाराध्याऽऽप्नोति सत्सुतम् ॥ १६ ॥
नयस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्तितत्त्वतः । तमाराध्यहृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्
सगौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वोमहीपतिः । आराधयन् हृषीकेशं वासुदेवं सनातनम्
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः सावस्तिरिति विश्रुतः ।
निर्मिता येन सावस्तिः गौडदेशे महापुरी ॥ १६ ॥
तस्माच्चवृहदश्वोऽभूत्तस्मात्कुवलयाश्वकः । धुन्धुमारःसमभवत् धुन्धुं हत्वामहासुरम्
धुन्धुमारस्यतनयास्त्रयःप्रोक्ताद्विजोत्तमाः ॥ दृढाश्वश्चैवदण्डाश्वःकपिलाश्वस्तथैवच
दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात्संहताश्वकः ॥ २२ ॥
कृताश्वोऽथरणाश्वश्चसंहिताश्वस्यवैसुतौ । युवनाश्वोरणाश्वस्यशक्रतुल्यबलोयुधि
कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः ।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम् ॥ २४ ॥
मान्धातारंमहाप्राज्ञंसर्वशस्त्रभृतांवरम् । मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्चवीर्यवान्

मुचुकुन्दश्चपुण्यात्मासर्वेशक्रसमायुधि । अम्बरीषस्यदायादोयुवनाश्वोऽपरःस्मृतः

हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः ॥ २७ ॥
नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तत्सुतः स्मृतः ।
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत्ततः ॥
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्य्यश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥ २८ ॥

सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः । प्रसादाद्धार्मिकंपुत्रंलेभे सूर्यपरायणम्
सतुसूर्य्यंसमभ्यर्च्य राजावसुमनाः शुभम् । लेभेत्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिन्दमम्

अयजच्चाश्वमेधेन शत्रूञ्जित्वा द्विजोत्तमाः ॥
स्वाध्यायवान्दानशीलस्तितीर्षुर्द्धर्मतत्परः ॥ ३१ ॥

ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः । वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥

तान्प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः ।
समाप्य विधिवद्यज्ञं वसिष्ठादीन्द्विजोत्तमान् ॥ ३३ ॥

वसुमना उवाच

किंहिश्रेयस्करतरंलोकेऽस्मिन्ब्राह्मणर्षभाः । यज्ञस्तपोवा सन्यासोब्रूतमेसर्ववेदिनः

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान्विधिवत्सुतांश्चोत्पाद्ययत्नतः । इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद्वनमथात्मवान्

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनम्परमेश्वरम् । प्रव्रजेद्विधिवद्यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान् ॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणम्परमेश्वरम् । तमाराध्य सहस्रांशुं तपसो मोक्षमाप्नुयात् ॥

जमदग्निरुवाच

अजो विश्वस्यकर्त्तायोजगद्बीजंसनातनः । अन्तर्यामीचभूतानां स देवस्तपसेज्यते

विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः ॥ ३९ ॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो वासुदेवः सनातनः । स सर्वदैवततनुः पूज्यते परमेश्वरः ॥४०॥

अत्रिरुवाच

अतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः । तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिरिदञ्जगत् । स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षीशम्भुः प्रजापतिः । प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसापरः

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि । नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मः शास्त्रेषु दृश्यते

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान्प्रणम्याऽतिहृष्टधीः ।
विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत् ॥ ४५ ॥

आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम् । प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम्
त्वन्तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः । चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्
एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निधायात्मभवे नृपः । जगामारण्यमनघस्तपस्तप्तुमनुत्तमम्
हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवनाश्रये । कन्दमूलफलाहारैरुत्पन्नैरयजत्सुरान् ॥ ४६ ॥
संवत्सरशतं साग्रन्तपोनिर्द्धूतकिल्बिषः । जजापमनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्
तस्यैवन्तपतोदेवः स्वयम्भूः परमेश्वरः । हिरण्यगर्भोविश्वात्मा तं देशमगमत्स्वयम्
दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणंविश्वतोमुखम् । ननामशिरसातस्य पादयोर्नामकीर्त्तयन्
नमोदेवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने । हिरण्यमूर्त्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे ॥५३॥
नमो धात्रेविधात्रे च नमोदेवात्ममूर्त्तये । साङ्ख्ययोगाधिगम्याय नमस्तेज्ञानमूर्त्तये
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने । पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः ॥

ततः प्रसन्नो भगवान्विरिञ्चिर्विश्वभावनः । वरम्वरय भद्रन्ते वरदोऽस्मीत्यभाषत

राजोवाच

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम् । भूयो वर्षशतं साग्रन्तावदायुर्भवेन्मम ॥ ५७ ॥

बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम् ।
स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ५८ ॥

सोऽपि लब्धवरःश्रीमाञ्जजापातिप्रसन्नधीः । शान्तस्त्रिषवणस्नायीकन्दमूलफलाशनः
तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः । प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः
तं दृष्ट्वा वेदवपुषं मण्डलस्थं सनातनम् । स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयङ्गतः
तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः । क्षणादपश्यत्पुरुषं तमेव परमेश्वरम् ॥
चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम् । चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम्

भासयन्तं जगत्कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः ।
रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥ ६४ ॥

तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि । ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यातेनचैव हि
नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने । त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे ॥६६
तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः । इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणुचानघ
सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु । नमः कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः
अधीष्व शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम् । जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमनानृप
ब्रह्मचारी निराहारो भस्मनिष्ठः समाहितः । जपेदामरणाद्रुद्रं स याति परमम्पदम्
इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया । पुनः सम्वत्सरशतंराज्ञे ह्यायुरकल्पयत्
दत्त्वाऽस्मै तत्परंज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः । क्षणादन्तर्दधेरुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥७२

राजाऽपि तपसा रुद्रं जजापाऽनन्यमानसः ।
भस्मच्छन्नस्त्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः ॥ ७३ ॥

जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णेवर्षशते पुनः । योगप्रवृत्तिरभवत्कालात्कालपरं पदम् ॥ ७४
विवेशै[illegible]ष्ठिनः । भानोः [illegible] शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्

यः पठेच्छृणुयाद्वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे राजवंशकीर्त्तने हर्य्यश्वचरित्रवर्णनंनाम
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

इक्ष्वाकुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

त्रिधन्वाराजपुत्रस्तुधर्म्मेणापालयन्महीम् । तस्यपुत्रोऽभवद्विद्वांस्त्रय्यारुणइतिश्रुतः
तस्यसत्यव्रतोनाम कुमारोऽभून्महाबलः । भार्य्यासत्यधनानामहरिश्चन्द्रमजीजनत्
हरिश्चन्द्रस्यपुत्रोऽभूद्रोहितोनामवीर्यवान् । रोहितस्यवृकःपुत्रस्तस्माद्बाहुरजायत
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्यसुतोऽभवत् । विजयश्चसुदेवश्चधुन्धुपुत्रौबभूवतुः
विजयस्याभवत्पुत्रःकारुकोनामवीर्य्यवान् । सगरस्तस्यपुत्रोऽभूद्राजापरमधार्मिकः
द्वे भार्ये सगरस्याऽपि प्रभा भानुमती तथा ॥ ५ ॥
ताभ्यामाराधितो वह्निः प्रददौ वरमुत्तमम् । एकं भानुमतीपुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ॥
प्रभाषष्टिसहस्रन्तु पुत्राणां जगृहे शुभा । असमञ्जसपुत्रोऽभूदंशुमान्नाम पार्थिवः ॥
तस्यपुत्रो दिलीपस्तुदिलीपात्तु भगीरथः । येनभागीरथीगङ्गातपःकृत्वाऽवतारिता
प्रसादाद्देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः । भगीरथस्य तपसादेवः प्रीतमना हरः ॥ ६ ॥
बभार शिरसा गङ्गां सोमान्तेसोमभूषणः । भगीरथसुतश्चापि श्रुतोनाम बभूव ह

नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।
अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णो महाबलः ॥ ११ ॥
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सुदासो नाम धार्मिकः ।
सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः ॥ १२ ॥

वसिष्ठस्तुमहातेजाः क्षेत्रेकल्माषपादके । अश्मकं जनयामासतमिक्ष्वाकुकुलध्वजम्

अश्मकस्योत्कलायान्तु नकुलोनामपार्थिवः। सहिरामभयाद्राजा वनंप्रापसुदुःखितः

दधत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत्।

तस्माद्द् विलिविलिः श्रीमान् वृद्धशर्म्मा च तत्सुतः॥ १४॥

तस्माद्विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।

दीर्घबाहुः सुतस्तस्माद्रघुस्तस्मादजायत॥ १५॥

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः। रामोदाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः। सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः

जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक्। रामस्यभार्यासुभगाजनकस्यात्मजाशुभा

सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता।

तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा॥ १६॥

प्रायच्छज्जानकींसीतांराममेवाश्रितांपतिम्। प्रीतश्चभगवानीशस्त्रिशूलीनीललोहितः

प्रददौ शत्रुनाशार्थंजनकायाद्भुतंधनुः। सराजाजनकोधीमान् दातुकामःसुतामिमाम्

अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन्द्विजपुङ्गवाः। इदं धनुःसमादातुं यः शक्नोतिजगत्त्रये

देवो वा दानवो वाऽपि स सीतां लब्धुमर्हति। विज्ञायरामोबलवाञ्जनकस्यगृहंप्रभुः

भञ्जयामास चादायगत्वाऽसौ लीलयैव हि। उद्ववाहाथ तांकन्यांपार्वतीमिवशङ्करः

रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः। ततो बहुतिथे काले राजादशरथःस्वयम्

रामं ज्येष्ठसुतं वीरं राजानं कर्त्तुमारभत्। तस्याथ पत्नीसुभगा कैकेयीचारुहासिनी

निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा। मत्सुतं भरतं वीरंराजानं कर्त्तुमर्हसि॥

पूर्वमेव वरौ यस्माद्दत्तौ मेभवता यतः। सतस्या वचनं श्रुत्वाराजादुःखितमानसः

वाढमित्यब्रवीद्वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्।

प्रणम्याऽथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः॥ २६॥

ययौवनं सपत्नीकः कृत्वासमयमात्मवान्। संवत्सराणां चत्वारिंदश चैव महाबलः

उवासतत्र भगवान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः। कदाचिद्वसतोऽरण्ये रावणोनाम राक्षसः

परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम्।

अदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ ॥ ३२ ॥
दुःखशोकाभिसन्तप्तौ बभूवतुररिन्दमौ । ततः कदाचित्कपिनासुग्रीवेण द्विजोत्तमाः
वानराणामभूत्सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः । सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनूमान्नामवानरः
वायुपुत्रो महातेजा रामस्याऽऽसीत्प्रियः सदा ।
स कृत्वा परमं धैर्य्यं रामाय कृतनिश्चयः ॥ ३५ ॥
आनयिष्यामितांसीतामित्युक्त्वाविचचारह । महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः
जगामरावणपुरींलङ्कांसागरसंस्थिताम् । तत्राथनिर्ज्जनेदेशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम्
अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिःसमावृताम् ।
अश्रुपूर्णेक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम् ॥ ३८ ॥
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणञ्चात्मसंस्थितम् ।
निवेदयित्वा चाऽऽत्मानं सीतायै रहसि प्रभुः ॥ ३९ ॥
असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम् । दृष्ट्वाऽङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम्
मेनेसमागतंरामंप्रीतिविस्फुरितेक्षणा । समाश्वास्यतदासीतांदृष्ट्वारामस्यचान्तिकम्
नयिष्ये त्वां महाबाहुमुक्त्वा रामं ययौ पुनः ।
निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान् ॥ ४२ ॥
तस्थौ रामेणपुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः । ततः स रामोबलवान्सार्द्धंहनुमतास्वयम्
लक्ष्मणेनच युद्धाय बुद्धिञ्चक्रे हि रक्षसः । कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः ॥
सेतुम्परमधर्मात्मा रावणं हतवान्प्रभुः । सपत्नीकं हि ससुतं सभ्रातृकमरिन्दमः ॥
आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान् ।
सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम् ॥ ४६ ॥
स्थापयामासलिङ्गस्थंपूजयामास राघवः । तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः
प्रत्यक्षमेवभगवान्दत्तवान्वरमुत्तमम् । यत्त्वयास्थापितंलिङ्गं द्रक्ष्यन्तीदंद्विजातयः
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापंविनङ्क्ष्यति । अन्यानिचैवपापानिस्नातस्यात्रमहोदधौ

दर्शनादेवलिङ्गस्यनाशं यान्तिन संशयः । यावत्स्थास्यन्तिगिरयोयावदेषाचमेदिनी

यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ।
स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वम्भवतु चाऽक्षयम् ॥ ५१ ॥
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापम्प्रणश्यति ।
इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुःपरिष्वज्य तु राघवम् ॥ ५२ ॥
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत । रामोऽपिपालयामास राज्यन्धर्मपरायणः
अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः । विशेषाद्ब्राह्मणान्सर्वान्पूजयामास चेश्वरम्
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शङ्करम् । रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥५५॥
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित्सुधीः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ५६ ॥
नलश्चनिषधस्यासीत् नभास्तस्मादजायत । नभसःपुण्डरीकाक्षःक्षेमधन्वातुतत्सुतः
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ।
अहीनगुस्तस्य सुतो महस्वांस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ५८ ॥
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु ताराधीशश्च तत्सुतः ।
ताराधीशाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत् ॥ ५९ ॥
श्रुतायुरभवत्तस्मादेतेचेक्ष्वाकुवंशजाः । सर्वे प्राधान्यतःप्रोक्ताःसमासेन द्विजोत्तमाः
य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवलोके महीयते ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराण इक्ष्वाकुवंशवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजाराज्यमपालयत् । तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः ॥
आयुर्मायुरमायुश्चविश्वायुश्चैव वीर्यवान् । शतायुश्च श्रुतायुश्चदिव्याश्चैवोर्वशीसुताः
आयुषस्तनयावीराः पञ्चैवासन्महौजसः । स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामितिनःश्रुतम्

नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
नहुषस्य तु दायादा पञ्चेन्द्रोपमतेजसः ॥ ४ ॥
उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः ।
याति (य) र्ययातिः संयातिरायातिः पञ्चमोऽश्वकः ॥ ५ ॥

तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः । देवयानीमुशनसः सुतां भार्य्यामवाप सः
शर्मिष्ठामासुरीञ्चैव तनयां वृषपर्वणः । यदुञ्च तुर्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ॥ ७ ॥
द्रुह्युञ्चानुञ्चपूरुञ्चशर्मिष्ठाचाप्यजीजनत् । सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्यज्येष्ठंयदुमनिन्दितम्
पुरुमेवकनीयांसम्पितुर्वचनपालकम् । दिशि दक्षिणपूर्वस्यान्तुर्वसुं पुत्रमादिशत्
दक्षिणापरयोराजा यदुं श्रेष्ठं न्ययोजयत् । प्रतीच्यामुत्तरायाञ्च द्रुह्युञ्चानुमकल्पयत्
तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता । राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशाः
यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः । सहस्रजित्तथाश्रेष्ठः क्रोष्टुर्नीलोजिनोरघुः
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नामपार्थिवः । सुताःशतजितोऽप्यासंस्त्रयःपरमधार्मिकाः
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः । हैहस्याभवत्पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः ॥

तस्य पुत्रोऽभवद्विप्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान् ।
धर्मनेत्रस्य कीर्त्तिस्तु सञ्जितस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १५ ॥

महिष्मः सञ्जितस्याभूद्भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः । भद्रश्रेण्यस्यदायादो दुर्दमोनामपार्थिवः

दुर्द्दमस्य सुतो धीमानन्धको नाम वीर्यवान् ।
अन्धकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ १७ ॥

कृतवीर्यःकृताग्निश्चकृतवर्माच तत्सुतः । कृतौजाश्चचतुर्थोऽभूत्कार्त्तवीर्यस्तथार्जुनः
सहस्रबाहुर्द्युतिमान्धनुर्वेदविदाम्वरः । तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्द्दनः
तस्य पुत्रशतान्यासन्पञ्चतत्र महारथाः । कृतास्त्रा वलिनःशूराःधर्मात्मानोमनस्विनः
शूरश्च शूरसेनश्च कृष्णो धृष्णस्तथैवच । जयध्वजश्च वलवान्नारायणपरो नृपः ॥
शूरसेनादयः पूर्वे चत्वारः प्रथितौजसः । रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्तिस्म शङ्करम्
जयध्वस्तु मतिमान्देवं नारायणं हरिम् । जगाम शरणं विष्णुं दैवतंधर्मतत्परः
तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ । ईश्वराराधनरतः पिताऽस्माकमिति श्रुतिः ॥
तानब्रवीन्महातेजा ह्येष धर्मः परो मम । विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो ये महीतले

राज्यं पालयिताऽवश्यम्भगवान्पुरुषोत्तमः ।
पूजनीयोऽजितो विष्णुः पालको जगतां हरिः ॥ २६ ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयं प्रभुः ।
तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ॥ २७ ॥

सत्त्वात्माभगवान्विष्णुःसंस्थापयतिसर्वदा । सृजेद्ब्रह्मारजोमूर्त्तिःसंहरेत्तामसीहरः

तस्मान्महीपतीनान्तु राज्यम्पालयतामिदम् ॥
आराध्यो भगवान्विष्णुः केशवः केशिमर्द्दनः ॥ २६ ॥

निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्येमनस्विनः । प्रोचुःसंहारकोरुद्रः पूजनीयोमुमुक्षुभिः
अयं हि भगवान्रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः । तमोगुणं समाश्रित्यकालान्तेसंहरेत्प्रभुः
या सा घोरतमा मूर्त्तिरस्य तेजोमयी परा । संहरेद्विद्ययापूर्वं संसारं शूलभृत्तया ॥

ततस्तानब्रवीद्राजा विचिन्त्याऽसौ जयध्वजः ।
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान्हरिः ॥ ३३ ॥

तमूचुर्भ्रातरोरुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः । मोचयेत्सत्त्वसंयुक्तः पूजयेत्सततं हरम्

अथाब्रवीद्राजपुत्रः प्रहसन्व जयध्वजः । स्वधर्मामुक्तये युक्तो नान्यो मुनिभिरिष्यते

तथा च वैष्णवीं शक्तिंनृपाणांद्धधतां सदा । आराधनम्परोधर्म्मो मुरारेरमितौजसः
तमब्रवीद्राजपुत्रः कृष्णोमतिमताम्वरः । यदर्ज्जुनोऽस्मज्जनकः स धर्मंकृतवानिति
एवं विवादे वितते सूरसेनोऽब्रवीद्वचः । प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्तेतत्तथैव तत् ॥
ततस्ते राजशार्दूलाःपप्रच्छुर्ब्रह्मवादिनः । गत्वासर्वे सुसंरब्धाः सप्तर्षीणां तदाश्रमम्

तानब्रुवंस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थतः ।
या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता ॥ ४० ॥

किन्तुकार्यविशेषेणपूजिताचेष्टदानृणाम् । विशेषात्सर्वदानाऽयन्नियमोह्यन्यथानृपाः
नृपाणां दैवतं विष्णुस्तथेशश्चपुरन्दरः । विप्राणामग्निरादित्योब्रह्माचैवपिनाकधृक्
दैवानांदैवतम्विष्णुर्दानवानांत्रिशूलधृक् । गन्धर्वाणांतथासोमोयक्षाणामपिकथ्यते

विद्याधराणां वाग्देवी सिद्धानां भगवान् हरिः ।
रक्षसां शङ्करो रुद्रः किन्नराणाञ्च पार्वती ॥ ४४ ॥
ऋषीणां भगवान् ब्रह्मा महादेवस्त्रिशूलभृत् ।
मान्या स्त्रीणामुमा देवी तथा विष्ण्वीशभास्कराः ॥ ४५ ॥

गृहस्थानाञ्चसर्वे स्युर्ब्रह्म वै ब्रह्मचारिणाम् । वैखानसानामर्कःस्याद्यतीनाञ्चमहेश्वरः
भूतानां भगवान्रुद्रःकूष्माण्डानांविनायकः । सर्वेषांभगवान्ब्रह्मा देवदेवः प्रजापतिः
इत्येवं भगवान्ब्रह्मा स्वयं देवोह्यभाषत । तस्माज्जयध्वजोनूनं विष्ण्वाराधनमर्हति
किन्तु रुद्रेण तादात्म्यं बुद्ध्वा पूज्यो हरिर्नरैः । अन्यथानृपतेःशत्रुं नहरिःसंहरेद्यतः
सम्प्रणम्याथते जग्मुःपुरीम्परमशोभनाम् । पालयाञ्चक्रिरेपृथ्वीञ्जित्वासर्वान्त्रिपून्रणे
ततः कदाचिद्विप्रेन्द्रा विदेहोनामदानवः । भीषणः सर्वसत्त्वानांपुरीं तेषांसमाययौ
दंष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपमः । शूलमादाय सूर्याभं नादयन्वै दिशो दश
तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्रये निवसन्ति ते । तत्यजुर्जीवितं त्वन्ये दुद्रुवुर्भयविह्वलाः
ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्त्तवीर्यात्मजास्तदा । शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः
युयुधुर्दानवंशक्ति गिरिकूटासिमुद्गरैः । तान्सर्वान् स हि विप्रेन्द्राःशूलेनप्रहसन्निव
युयुद्धाय कृतसंरम्भा विदेहन्त्वभिदुद्रुवुः । शूरोऽस्त्रंप्राहिणोद्रौद्रंशूरसेनस्तुवारुणम्

प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च । जयध्वजश्चकौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च

भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ।

ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ॥ ५८ ॥

स्पृष्टमात्रेणतरसाचिक्षेपचननादच । सम्प्राप्यसा गदाऽस्योरो विदेहस्यशिलोपमम्

न दानवञ्चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम् । दुद्रुवुस्तेभयग्रस्ता दृष्ट्वातस्यातिपौरुषम्

जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम् ।

विष्णुञ्जयिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ॥ ६१ ॥

त्रातारं पुरुषंपूर्वं श्रीपतिम्पीतवाससम् । ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥६२॥

आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहणात्तदा । जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वानारायणं नृपः

प्राहिणोद्वैविदेहायदानवेभ्यो यथाहरिः । सम्प्राप्यतस्यघोरस्य स्कन्धदेशंसुदर्शनम्

पृथिव्यांपातयामासशिरोऽद्रिशिखराकृति । तस्मिन्हतेदेवरिपौ शूराद्याभ्रातरोनृपाः

तद्धिचक्रंपुराविष्णुस्तपसाराध्यशङ्करम् । यस्मादवापतत्तस्मादसुराणांविनाशकम्

समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरश्चाप्यपूजयन् । श्रुत्वाजगाम भगवाञ्जयध्वजपराक्रमम्

कार्त्तवीर्यसुतन्द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ।

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः ॥ ६८ ॥

समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः । उवाच भगवन्घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः

निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः ।

त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहो विष्णुं सत्यपराक्रमम् ॥ ७० ॥

प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः । यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्

कथंकेन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः । कोऽयन्नारायणो देवः किं प्रभावश्चसुव्रत

सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परंकौतूहलं हि मे । जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः

दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत् ॥ ७४ ॥

स विष्णुः सर्वभूतात्मातमाश्रित्य विमुच्यते । यमक्षरात्परतरात्परं प्राहुर्गुहाश्रयम्
आनन्दंपरमंव्योमसवैनारायणःस्मृतः । नित्योदितोनिर्विकल्पोनित्यानन्दोनिरञ्जनः
चतुर्व्यूहधरोविष्णुरव्यूहःप्रोच्यतेस्वयम् । परमात्मा परं धाम परं व्योम परम्पदम्
त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्ब्रह्मवादिनः । स वासुदेवो विश्वात्मा योगात्मापुरुषोत्तमः
यस्यांशसम्भवो ब्रह्मा रुद्रोऽपिपरमेश्वरः । स्ववर्णाश्रमधर्मेणपुंसाऽयं पुरुषोत्तमः

अकामाद्व्रतभावेन समाराध्यो न चाऽन्यथा ।

एतावदुक्त्वा भगवान्विश्वामित्रो महातपाः ८० ॥

शूराद्यैः पूजितो विप्रोजगामाऽथ स्वमाश्रमम् । अथशूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्
यज्ञेन यज्ञगम्यन्तंनिष्कामा रुद्रमव्ययम् । तान्वसिष्ठस्तुभगवान्याजयामासधर्मवित्
गौतमोऽगस्तिरत्रिश्च सर्वेरुद्रपराक्रमाः । विश्वामित्रस्तु भगवाञ्जयध्वजमरिन्दमम्

याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्द्दनम् ।

तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद्देवः स्वयं हरिः ॥ ८४ ॥

आविरासीत्स भगवान्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८५ ॥

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम् ।

इत्येवं सर्वदा बुद्ध्वा यत्नेनाऽयजदच्युतम् ॥ ८६ ॥

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे सोमवंशानुकीर्त्तनेजयध्वजपराक्रमवर्णनंनाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

जयध्वजवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घ इतिस्मृतः। शतंपुत्रास्तुतस्यासन्तालजङ्घा इतिस्मृताः

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः।

वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्म्मिणः ॥ २ ॥

वृषोवंशकरस्तेषांतस्यपुत्रोऽभवन्मधुः। मधोःपुत्रशतन्त्वासीद्वृषणस्तस्यवंशभाक्

वीतिहोत्रसुतश्चापिविश्रुतोऽनन्तइत्यतः। दुर्ज्जयस्तस्यपुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः

तस्यभार्य्यारूपवतीगुणैःसर्वैरलङ्कृता। पतिव्रताऽऽसीत्पतिनास्वधर्मपरिपालिका

स कदाचिन्महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम्।

अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरश्रुतिम् ॥ ६ ॥

ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै। प्रोवाच सुचिरंकालं देवि! रन्तुं मयार्हसि

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम्। रेमे तेन चिरङ्कालं कामदेवमिवापरम् ॥

कालात्प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम्।

गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्तीत्यब्रवीद्वचः ॥ ९ ॥

न ह्येतेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर!। प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरम्पुरीम्।

आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि ॥ ११ ॥

तमब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते। नान्यथाप्सरसा तावद्रन्तव्यम्भवतापुनः

ओमित्युक्त्वाययौतूर्णंपुरींपरमशोभनाम्। गत्वापतिव्रतांपत्नीं दृष्ट्वाभीतोऽभवन्नृपः

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्य्या तस्य पतिव्रता। भीतं प्रसन्नयाप्राहवाचापीनपयोधरा

स्वामिन् किमत्रभवतोभातिरव्यप्रवर्तते। तद्ब्रूहि मे यथातत्त्वं ...

स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतमानसः ।
नोवाच किञ्चिन्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा ॥ १९ ॥
न भेतव्यंत्वयाराजन्कार्य्यंपापविशोधनम् । भीतेत्वयिमहाराज राष्ट्रन्तेनाशमेष्यति
ततः स राजा द्युतिमान्निर्गत्यतुपुरात्ततः । गत्वा कण्वाश्रमंपुण्यं दृष्ट्वातत्रमहामुनिम्
निशम्य कण्ववदनात्प्रायश्चित्तविधिंशुभम् । जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिष्टं महाबलः
सोऽपश्यत्पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम् ।
भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया ॥ २० ॥
वीक्ष्य मालाममित्रघ्नःसस्माराप्सरसंवराम् । उर्वशींतां मनश्चक्रे तस्याएवेयमर्हति
सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि । चकार सुमहद्युद्धं मालामादातुमुद्यतः
विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्ज्जयो द्विजाः ॥
जगाम तामप्सरसंकालिन्दीं द्रष्टुमादरात् ॥ २३ ॥
अदृष्ट्वाप्सरसंतत्र कामबाणाभिपीडितः । बभ्रामसकलां पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम्
आक्रम्य हिमवत्पार्श्वमुर्वशीदर्शनोत्सुकः । जगामशैलप्रवरं हेमकूटमिति श्रुतम् ॥
तत्र तत्राप्सरावर्या दृष्ट्वा तं सिंहविक्रमम् । कामंसन्दधिरे घोरं भूषितं चित्रमालया
संस्मरन्नुर्वशीवाक्यं तस्यां संसक्तमानसः ।
न पश्यति स्म ताः सर्वा गिरेः शृङ्गाणि जग्मिवान् ॥ २७ ॥
तत्राप्यप्सरसन्दिव्यामदृष्ट्वा कामपीडितः । देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः ॥
स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम् । भेजे शृङ्गमतिक्रम्य स्वबाहुबलभावितः
तस्य तीरेषु सुभगाञ्चरन्तीमतिलालसाम् । दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालां ददौपुनः
स मालया तदा देवीं भूषिताम्प्रेक्ष्य मोहितः ।
रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरं तया ॥ ३१ ॥
अथोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमब्रवीत् । किं कृतम्भवता वीर पुरींगत्वा तदा नृप
स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत्समुदीरितम् । कण्वस्य दर्शनञ्चैव मालापहरणन्तथा

श्रुत्वैतद्व्याहृतन्तेन गच्छेत्याह हितैषिणी ।

शापंदास्यति ते कण्वो ममाऽपि भवतः प्रिया ॥ ३४ ॥
तयासकृन्महाराजःप्रोक्तोऽपिमदमोहितः । न च तत्कृतवान्वाक्यंतत्रसंन्यस्तमानसः
तदोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम् । सुरोमशम्पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा
तस्यां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम् ।
धिङ्मामिति विनिश्चित्य तपः कर्त्तुं समारभत् ॥ ३७ ॥
सम्वत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः । भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः ॥
गत्वाकण्वाश्रमंभीत्यातस्मैसर्वं न्यवेदयत् । वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम्
वीक्ष्यतंराजशार्दूलंप्रसन्नोभगवानृषिः । कर्त्तुकामो हि निर्बीजंतस्याघमिदमब्रवीत्

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम् ।
आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः ॥ ४१ ॥
स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवद्गङ्गायां देवताः पितॄन् ।
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्विषान्मोक्ष्यसे क्षणात् ॥ ४२ ॥
प्रणम्य शिरसाकण्वमनुज्ञाप्यचदुर्ज्जयः । वाराणस्यांहरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत्ततः
जगामस्वपुरींशुभ्रांयाजयामासमेदिनीम् । याजयामासतंकण्वोयाचितोघृणयामुनिः
तस्य पुत्रोऽथ मतिमान्सुप्रतीक इति स्मृतः । बभूवजातमात्रंतंराजानमुपतस्थिरे
उर्वश्याश्च महावीर्याःसप्तदेवसुतोपमाः । कन्याजगृहिरे सर्वा गन्धर्वोदयितादिजाः
एषवः कथितः सम्यक् सहस्रजितउत्तमः । वंशः पापहरो नृणां क्रोष्टोरपिनिबोधत

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे राजवंशानुकीर्त्तनेसहस्रजिद्वंशवर्णनंनाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वज्रवानिति विश्रुतः ।
तस्य पुत्रोऽभवच्छान्तिः कुशिकस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १ ॥
कुशिकादभवत्पुत्रो नाम्ना चित्ररथोवली । अथचैत्ररथिर्लोके शशविन्दुरिति स्मृतः
तस्य पुत्रः पृथुयशाराजाभूद्धर्म्मतत्परः । पृथुकर्माच तत्पुत्रतस्मात्पृथुजयोऽभवत्
पृथुकीर्त्तिरभूत्तस्मात्पृथुदानस्ततोऽभवत् ।
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत्पृथुसत्तमः ॥ ४ ॥
उशनास्तस्यपुत्रोऽभूच्छतेषुस्तत्सुतोऽभवत् । तस्माद्वैरुक्मकवचपरावृत्तश्चतत्सुतः
परावृत्तसुतोजज्ञे यामघोलोकविश्रुतः । तस्माद्विदर्भः सञ्जज्ञे विदर्भात्क्रथकौशिकौ
लोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृपः ।
धृतिस्तस्याऽभवत्पुत्रः श्वेतस्तस्याप्यभूत्सुतः ॥ ७ ॥
श्वेतस्यपुत्रो बलवान्नाम्ना विश्वसहः स्मृतः ।
तस्यपुत्रो महावीर्यः प्रभावात्कौशिकः स्मृतः ॥ ८ ॥
अभूत्तस्यसुतोधीमान्सुमन्तश्चततोऽनलः । अनलस्यसुतःश्वेनिःश्वेनेरन्येऽभवन्सुताः
तेषां प्रधानो द्युतिमान्वपुष्मांस्तत्सुतोऽभवत् ।
वपुष्मतो वृहन्मेधाः श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १० ॥
तस्यवीतरथोविप्रारुद्रभक्तोमहाबलः ।क्रथस्याप्यभवत्कुन्तिर्वृष्णिस्तस्याभवत्सुतः
तस्मान्नवरथोनाम बभूव सुमहाबलः । कदाचिन्मृगयां यातोदृष्ट्वा राक्षसमूर्ज्जितम्
दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुङ्गवाः । अन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः ॥

दुर्य्योधनोऽग्निसंकाशः शूलासक्तमहाकरः । राजानवरथो भीतो नातिदूरादवस्थितम्

अपश्यत्परमं स्थानं सरस्वत्याः सुगोपितम् ।
स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान्नृपः ॥ १५ ॥
ववन्देशिरसादृष्ट्वासाक्षाद्देवींसरस्वतीम् । तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित्
पपात दण्डवद्भूमौत्वामहं शरणंगतः । नमस्यामि महादेवींसाक्षाद्देवीं सरस्वतीम्
वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरींब्रह्मचारिणीम् । नमस्येजगतांयोनिंयोगिनींपरमांकलाम्
हिरण्यगर्भसम्भूतां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
नमस्ये परमानन्दाञ्चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ १६ ॥
पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम् । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः
हन्तुं समागतः स्थानं यत्रदेवी सरस्वती । समुद्यम्य तथा शूलं प्रविष्टो बलगर्वितः
त्रिलोकमातुर्हि स्थानं शशाङ्कादित्यसन्निभम् ।
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ २२ ॥
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तम्भुवि । गच्छेत्याहमहाराजनस्थातव्यंत्वयापुनः
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन्राक्षसोहतः । ततःप्रणम्यहृष्टात्माराजानवरथःपरम्
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरन्दरपुरोपमाम् । स्थापयामास देवेशीं तत्रभक्तिसमन्वितः
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम् । तस्य चासीद्दशरथः पुत्रः परमधार्म्मिकः
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः ।
तस्मात्करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत्ततः ॥ २७ ॥
ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः । मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात्कुरुरजायत
पुत्रद्वयमभूत्तस्यसुत्रामाचानुरेव च । अनोस्तु प्रियगोत्रोऽभूदंशुस्तस्यचरिक्थभाक्
अथांशोरन्धको नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् । महात्मादाननिरतो धनुर्वेदविदाम्वरः
स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः । शास्त्रं प्रवर्त्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम्
तस्यनाम्ना तु विख्यातं सात्वतानाञ्च शोभनम् ।
प्रवर्त्तते महच्छास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् ॥ ३२ ॥

सात्वतस्तस्यपुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः । पुण्यश्लोकोमहाराजस्तेनवैतत्प्रवर्तितम्

सात्वतान्सत्वसम्पन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
अन्धकं वै महाभोजं वृष्णिंदेवावृधं नृपम् ॥ ३४ ॥
ज्येष्ठञ्च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदाम्वरम् । तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः ॥
पुत्रः सर्वगुणोपेतोममभूयादितिप्रभुः । तस्यबभ्रुरितिख्यातःपुण्यश्लोकोऽभवन्नृपः
धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा । भजमानाःश्रियं दिव्यांभजमानाद्विजज्ञिरे
तेषां प्रधानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च ।
महाभोजकुले जाता भोजा वैमातृकास्तथा ॥ ३८ ॥
वृष्णेः सुमित्रोबलवाननमित्रस्तिमिस्तथा । अनमित्रादभून्निघ्नोनिघ्नस्यद्वौबभूवतुः
प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः ।
अनमित्रात्सिनिर्ज्जज्ञे कनिष्ठो वृष्णिनन्दनात् ॥ ४० ॥
सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत् ।
सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्याऽसङ्गोऽभवत्सुतः ॥ ४१ ॥
कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगन्धरः ।
माद्र्यां वृष्णिः सुतो जज्ञे वृष्णेर्वै यदुनन्दनः ॥ ४२ ॥
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तु हि ।
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत ॥ ४३ ॥
तस्यामजनयत्पुत्रमक्रूरं नामधार्मिकम् । उपमङ्गुं तथा मङ्गुमन्ये च बहवः सुताः ॥
अक्रूरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः । उपदेवश्च देवात्मातयोर्विश्वप्रमाथिनौ
चित्रकस्याभवत्पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधाश्वकगवेक्षकौ
अन्धकस्य सुतायां तु लेभे च चतुरः सुतान् । कुकुरं भजमानञ्चशमीकंबलगर्वितम्
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत् ।
कपोतरोमा विख्यातस्तस्य पुत्रो विलोमकः ॥ ४८ ॥
तस्यासीत्तुम्बुरुसखा विद्वान्पुत्रस्तमः किल ।

तमस्याऽप्यभवत्पुत्रस्तथैवाऽऽनकदुन्दुभिः ॥ ४९ ॥

स गोवर्द्धनमासाद्य ततापविपुलन्तपः। वरंतस्मै ददौ देवो ब्रह्मालोकमहेश्वरः॥
वंशस्ते चाक्षयाकीर्त्तिर्ज्ञानयोगस्तथोत्तमः। गुरोरप्यधिकंविप्राःकामरूपित्वमेव च
स लब्ध्वा वरमव्यग्रोवरेण्याद्वृषवाहनम्। पूजयामासगानेनस्थाणुं त्रिदशपूजितम्
तस्यगानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः। कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि
तया संसङ्गतोराजागानयोगमनुत्तमम्। अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियांतांभ्रान्तलोचनाम्

तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नामशोभनम्।
रूपलावण्यसम्पन्नां ह्रीमतीमितिकन्यकाम्॥ ५५॥

ततस्तं जननीपुत्रंबाल्येवयसिशोभनम्। शिक्षयामासविधिवद्गानविद्याञ्चकन्यकाम्

कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद्गुरोः।
उद्ववाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणान्तु मानसीम्॥ ५७॥

तस्यामुत्पादयामास पञ्चपुत्राननुत्तमान्। वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्
पुत्रैःपौत्रैः सपत्नीको राजाज्ञानविशारदः। पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम्॥
ह्रीमतीञ्चारुसर्वाङ्गींश्रीमिवायतलोचनाम्। सुबाहुनामागन्धर्वस्तामादाययर्यौपुरीम्
तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः। सुषेणधीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः॥
अथासीदभिजित्पुत्रश्चन्दनोदकदुन्दुभेः। पुनर्वसुश्चाभिजितः सम्बभूवाहुकस्ततः
आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः। देवकस्यसुतावीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः
देववानुपदेवश्च सुदेवोदेवरक्षितः। तेषां स्वसारः सप्तासन्वसुदेवाय ता ददौ॥ ६४
धृतदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता। श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत्सुमध्यमा। उग्रसेनस्यपुत्रोऽभून्न्यग्रोधःकंसएवच
सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च। भजमानादभूत्पुत्रः प्रख्यातोऽसौविदूरथः

तस्य सूरसमस्तस्मात्प्रतिक्षत्रश्च तत्सुतः।
स्वयम्भोजस्ततस्तस्माद्धात्रीकः शत्रुतापनः॥ ६८॥

कृतवर्माथ तत्पुत्रः शूरसेनः सुतोऽभवत्। वसुदेवोऽथ तत्पुत्रो नित्यं धर्मपरायणः

वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः। बभूवदेवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥ ७०

रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्यशोभना । असूत पत्नी सङ्कर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम्
स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मयः । हलायुधः स्वयंसाक्षाच्छेषःसङ्कर्षणःप्रभुः
भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम् । बभूव तस्यांदेवक्यांरोहिण्यामपिमाधवः
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्राच कौशिकी । नियोगाद्वासुदेवस्ययशोदातनयात्वभूत्
ये चान्ये वासुदेवस्य वासुदेवाग्रजाःसुताः । प्रागेव कंसस्तान्सर्वाञ्जघानमुनिसत्तमाः
सुषेणश्च ततोदायी भद्रसेनो महाबलः । वज्रदम्भो भद्रसेनः कीर्त्तिमानपि पूजितः
हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणीवसुदेवतः । असूतरामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम् ॥ ७७॥
जातेऽथ रामेदेवानामादिमात्मानमच्युतम् । असूतदेवकीकृष्णंश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्

रेवती नाम रामस्य भार्य्याऽऽसीत्सुगुणान्विता ।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशितोल्मुकौ ॥ ७६ ॥

षोडशस्त्रीसहस्राणिकृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः । बभूवुश्चात्मजास्तासुशतशोऽथसहस्रशः
चारुदेष्णः सुधारुश्च चारुवेषो यशोधरः । चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नःसाम्बएव च
रुक्मिण्यां वासुदेवस्यमहाबलपराक्रमाः । विशिष्टाःसर्वपुत्राणांसम्बभूवुरिमेसुताः

तान्दृष्ट्वा तनयान्वीरान्रौक्मिणेयाञ्जनार्द्दनात् ।
जाम्बवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता ॥ ८३ ॥

ममत्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टगुणवत्तरम् । सुरेशसम्मितं पुत्रं देहि दानवसूदन !॥
जाम्बवत्या वचःश्रुत्वाजगन्नाथः स्वयं हरिः । समारेभेतपःकर्त्तुं तपोनिधिररिन्दमः
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकीसुतः । दृष्ट्वालेभे सुतं रुद्रं तप्त्वातीव्रम्महत्तपः

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे यदुवंशानुकीर्तनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

यदुवंशकीर्त्तनेकृष्णतपश्चरणवर्णनम्

सूत उवाच

अथदेवो हृषीकेशो भगवान्पुरुषोत्तमः । ततापघोरं पुत्रार्थं निधानं तपसस्तपः ॥ १

स्वेच्छयाऽप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वसृक् ।

चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन्परमेश्वरम् ॥ २ ॥

जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् । आश्रमंतूपमन्योर्वैमुनीन्द्रस्यमहात्मनः

पतत्त्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम् । शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्साङ्कितलक्षणः॥

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् । ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्

सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम् । विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम् ॥

आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः । ऋषिभिर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा ॥

वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितश्चाग्निहोत्रिभिः ।

योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥ ८ ॥

उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । नदीभिरभितोजुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः

सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः । प्रशान्तैः सत्यसङ्कल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः

भस्मावदातसर्वाङ्गैःरुद्रजाप्यपरायणैः । मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः

सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः । तत्राऽऽश्रमवरेरम्ये सिद्धाश्रमविभूषिते

गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाऽघनाशिनी ।

स तत्र वीक्ष्य विश्वात्मा तापसान्वीतकल्मषान् ॥ १३ ॥

प्रणामेनाथवचसा पूजयामास माधवः । तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥

प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम् । स्तुवन्तिवैदिकैर्मन्त्रैःकृत्वाहृदिसनातनम्

प्रोचुः [illegible] दिदेवं महामुनिम् । [illegible] वरः

आगच्छत्यधुनादेवः प्रधानपुरुषः स्वयम् । अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्त्ता चैव रक्षकः

अमूर्त्तो मूर्त्तिमाम् भूत्वा मुनीन्द्रष्टुमिहागतः ।

एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः ॥ १८ ॥

अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः ।

श्रुत्वा बुद्ध्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः ॥ १६ ॥

ययौ स तूर्णं गोविन्दःस्थानंतस्यमहात्मनः । उपस्पृश्याथभावेनतीर्थेतीर्थेसयादवः

चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्प्पणम् । नदीनां तीरसंस्थाने स्थापितानि मुनीश्वरः

लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजसः । दृष्ट्वादृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनार्द्दनम्

पूजयाञ्चक्रिरेपुष्पैरक्षतैस्तन्निवासिनः । समीक्ष्यवासुदेवंतंशार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्

तस्थिरे निश्चलाःसर्वे शुभाङ्गा यतमानसाः । यानि तत्रारुरुक्षूणां मानसानिजनार्द्दनम्

दृष्ट्वासमाहितान्यासन्निष्क्रामन्तिपुराहरिम् । अथावगाह्यगङ्गायां कृत्वादेवर्षितर्पणम्

आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याऽऽविशद्गृहम् ।

दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्धूलितविग्रहम् ॥ २६ ॥

जटाचीरधरंशान्तंननामशिरसा मुनिम् । आलोक्यकृष्णमायान्तंपूजयामासतत्त्ववित्

आसने वासयामासयोगिनांप्रथमातिथिम् । उवाचवचसांयोनिज्ञानीमःपरमम्पदम्

विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेनसंस्थितम् । स्वागतन्तेहृषीकेशसफलानितपांसिनः

यत्साक्षादेवविश्वात्मामद्गेहंविष्णुरागतः । त्वांनपश्यन्तिमुनयोयतन्तोपीहयोगिनः

तादृशस्यात्रभवतः किमागमनकारणम् । श्रुत्वोपमन्योस्तद्वाक्यं भगवान्देवकीसुतः

व्याजहार महायोगी प्रसन्नं प्रणिपत्यतम् ॥ ३१ ॥

कृष्ण उवाच

भगवन्द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम् ॥ ३२ ॥

सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः । कथं स भगवानीशोदृश्योयोगविदाम्वरः

मयाचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम् । प्रत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरः

भक्त्यैवाग्रेण तपसा तत्कुरु ... । ... देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ॥ ३३

ध्यायन्त्याराधयन्त्येनंयोगिनस्तापसाश्च ये । इहदेवःसपत्नीको भगवान्वृषभध्वजः
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः । इहाश्रमे पुरारुद्रं तपस्तप्त्वा सुदारुणम्
लेभे महेश्वराद्योगं वसिष्ठो भगवानृषिः । इहैव भगवान्व्यासःकृष्णद्वैपायनःस्वयम्
दृष्ट्वा तं परमेशानं लब्धवाञ्ज्ञानमैश्वरम् । इहाश्रमपदे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्द्दिनः ॥
अविन्दन्पुत्रकान्रुद्रात्सूरयो भक्तिसंयुताः । इह देवा महादेवं भवानीञ्च महेश्वरीम्
संस्तुवन्तो महादेवंनिर्भया निर्वृतियुः । इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपताम्वरः
लब्धवान्परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम् । प्रवर्त्तयामाससतांकृत्वावै संहितांशुभाम्

इहैव संहितां दृष्ट्वा कामो यः शशिपायिनः ।
महादेवश्चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः ॥

द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानांपुरुषोत्तम ।। इह प्रवर्त्तिता पुण्याद्व्यष्टसाहस्रिकोत्तरा
वायवीयोत्तरंनामपुराणं वेदसम्मतम्)। द्विजःपौराणिकींपुण्यां प्रसादेनद्विजोत्तमैः

(इहैव ख्यापितं शिष्यैर्वैशम्पायनभाषितम् ॥ ४३ ॥

याज्ञवल्क्यं महायोगी दृष्ट्वाऽत्रतपसा हरम् । चकारतन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्
इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा पूर्वं महातपः । शुक्रो महेश्वरात्पुत्रोलब्धो योगविदाम्वरः
तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रम्भीमंकपर्द्दिनम्
एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः । व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्म्मणे
स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः । तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत्प्रभुः ॥ ४८ ॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गोमुण्डो बल्कलसंयुतः । जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः
ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्द्धभूषणः । अदृश्यत महादेवो व्योम्निदेव्यामहेश्वरः

किरीटिनं गदिनश्चित्रमालं पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम् ।
शार्दूलचर्माम्बरसम्वृताङ्गं देव्या महादेवमसौ ददर्श ॥ ५१ ॥
प्रभुम्पुराणं पुरुषं पुरस्तात्सनातनं योगिनमीशितारम् ।
अणोरणीयांसमनन्तशक्तिं प्राणेश्वरं शम्भुमसौ ददर्श ॥ ५२ ॥
[illegible]

समुद्गिरन्तं प्रणवं बृहन्तं सहस्रसूर्य्यप्रतिमं ददर्श ॥ ५३ ॥
न यस्य देवा न पितामहोऽपि नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्युः ।
प्रभावमद्याऽपि वदन्ति रुद्रं तमादिदेवं पुरतो ददर्श ॥ ५४ ॥
तदान्वपश्यद्गिरिशस्य वामे स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम् ।
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः शङ्खासिचक्रान्वितहस्तमाद्यम् ॥ ५५ ॥
कृताञ्जलिं दक्षिणतः सुरेशं हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श ।
स्तुवानमीशस्य परम्प्रभावं पितामहं लोकगुरुं दिविस्थम् ॥ ५६ ॥
गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान्नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान् ।
त्रिलोकभर्तुः पुरतोऽन्वपश्यत्कुमारमग्निप्रतिमं गणेशम् ॥ ५७ ॥
मरीचिमत्रिम्पुलहम्पुलस्त्यम्प्रचेतसं दक्षमथापि कण्वम् ।
पराशरं तत्परतो वसिष्ठं स्वायम्भुवञ्चापि मनुं ददर्श ॥ ५८ ॥
तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः ।
प्रणम्य देव्या गिरिशं स्वभक्त्या स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य ॥

कृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत! सर्वयोग! ब्रह्मादयस्त्वामृषयो वदन्ति ।
तमश्च सत्त्वञ्च रजस्त्रयञ्च त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ६० ॥
त्वं ब्रह्मा हरिरथ रुद्र विश्वकर्त्ता संहर्त्ता दिनकरमण्डलाधिवासः ।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेदस्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ॥ ६१ ॥
साङ्ख्यास्त्वामगुणमथाहुरेकरूपं योगस्थं सततमुपासते हृदिस्थम् ।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमीड्यं त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ॥ ६२ ॥
त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं दत्त्वाऽसौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः ।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं स्मृत्वा ते पदयुगलं भवत्प्रसादात् ॥ ६३ ॥
यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं ।

ते त्वां योनिमनन्तमेकमचलं सत्यम्परं सर्वगम् ॥ ६४ ॥

स्थानस्प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदञ्जायते
नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरंतं शिवम् ॥ ६५ ॥

ॐनमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे। महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने। नमस्तेवज्रहस्तायदिग्वस्त्रायकपर्द्दिने
नमोभैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे। नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे ॥ ६८॥

नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः।
नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमोनमः ॥ ६९ ॥

नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने। नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिणे ॥

नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः ॥ ७१ ॥

नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः। नरनारीशरीराय साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तिने ॥
नमोभैरवनाथाय देवानुगतलिङ्गिने। कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ॥ ७३ ॥
नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे। मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः ॥
नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमोनमः। योगिनेयोगगम्याय योगमायाय ते नमः
नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च। कपालिनेनमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतयेनमः

नमो नमोऽस्तु ते तुभ्यं भूय एव नमो नमः।
मह्यं सर्व्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर ॥ ७७ ॥

सूत उवाच

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः। पपातपादयोर्विप्रादेवदेव्योःसदण्डवत्

उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिषूदनम्।
बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ ७९ ॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष! तप्यते भवतातपः। त्वमेव दाता सर्वेषांकामानांकर्मणामिह
त्वं हि सा परमा मूर्त्तिर्मम नारायणाह्वया। न विना त्वां जगत्सर्वंविद्यतेपुरुषोत्तम
वेत्थनारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम्। महादेव महायोगं स्वेन योगेन केशव ॥

श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन्वै वृषध्वजम् ।
उवाचाऽन्वीक्ष्य विश्वेशं देवीञ्च हिमशैलजाम् ॥ ८३ ॥
ज्ञातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शङ्कर !। इच्छाम्यात्मसमं पुत्रं त्वद्भक्तं देहिशङ्कर
तथास्त्वित्याहविश्वात्मा प्रहृष्टमनसाहरः । देवीमालोक्यगिरिजां केशवंपरिषस्वजे
ततः सा जगतां माता शङ्करार्द्धशरीरिणी ।
व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमगिरीन्द्रजा ॥ ८६ ॥
अहं जानेतवाऽनन्त! निश्चलां सर्वदाऽच्युत । अनन्यामीश्वरेभक्तिमात्मन्यपिचकेशव
त्वं हि नारायणः साक्षात्सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ।
प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं सञ्जातो देवकीसुतः ॥ ८८ ॥
पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मानंमम सम्प्रति । नावयोर्विद्यते भेद एकम्पश्यन्तिसूरयः
इमानिह वरानिष्टान्मत्तो गृह्णीष्व केशव !। सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम् ॥
ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपिपरंवरम् । एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्याजनार्द्दनः
आदेशं शिरसा गृह्य देवोऽप्याह तथेश्वरम् ।
प्रगृह्य कृष्णं भगवानथेशः करेण देव्या सह देवदेवः ॥
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुरेशैर्जगाम कैलाशगिरिं गिरीशः ॥ ९२ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे यदुवंशानुकीर्त्तने कृष्णतपश्चरणं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

———

षड्विंशोऽध्यायः

लिङ्गोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम्। रराम भगवान्सोमः केशवेन महेश्वरः॥
अपश्यंस्तेमहात्मानं कैलासगिरिवासिनः। पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमिवाच्युतम्
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम्। किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्
दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम्। दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम्
भ्राजमानं श्रियादेव्यायुवानमतिकोमलम्। पद्माङ्घ्रि पद्मनयनं सस्मितंसद्गतिप्रदम्
कदाचित्तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्द्धनः। भ्राजमानःश्रियाकृष्णश्चचार गिरिकन्दरम्

गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः।
सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वा देवास्तश्च जगन्मयम्॥ ७॥

दृष्ट्वाऽऽश्चर्यम्परंगत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः। मुमुचुःपुष्पवर्षाणितस्यमूर्ध्निमहात्मनः
गन्धर्वकन्यकादिव्यास्तद्वदप्सरसोवराः। दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं सुस्तुतंशुचिभूषणाः
काश्चिद्गायन्तिविविधंगानंगीतविशारदाः। सम्प्रेक्ष्यदेवकीसूनुंसुन्दरं काममोहिताः

काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः।
सम्प्रेक्ष्य सस्मितं काश्चित्पपुस्तद्वनामृतम्॥ ११॥
काश्चिद्भूषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम्।
भूषयाञ्चक्रिरे कृष्णं कन्या लोकविभूषणम्॥ १२॥

काश्चिद्भूषणवर्याणिसमादायतदङ्गतः। स्वात्मानंभूषयामासुःस्वात्मकैरपिमाधवम्
काचिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिता। चुचुम्ब वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणा
प्रगृह्य काचिद्गोविन्दंकरेणभवनंस्वकम्। प्रापयामास लोकादिंमायया तस्यमोहिता

तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः।

बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया ॥ १६ ॥

एवं वै सुचिरं कालंदेवदेवपुरे हरिः। रेमे नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्
गते बहुतिथे कालेद्वारवत्या निवासिनः। बभूवुर्विकलाभीता गोविन्दविरहे जनाः

ततः सुपर्णो बलवान्पूर्व्वमेव विसर्ज्जितः।
स कृष्णं मार्गमाणस्तु हिमवन्तं ययौ गिरिम् ॥ १६ ॥

अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम्। आजगामोपमन्युं तंपुरींद्वारवतींपुनः
तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणाः। आजग्मुर्द्वारकांशुभ्रां भीषयन्तःसहस्रशः
स तान्सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रमः। हत्वा युद्धेनमहतारक्षतिस्मपुरींशुभाम्
एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः। दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः
ते दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्व्वे तत्र निवासिनः! प्रोचुर्नारायणोनाथःकुत्रास्तेभगवान्हरिः
स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरिः। रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाहमिहागतः
तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततांवरः। जगामाकाशगो विप्राःकैलासंगिरिमुत्तमम्
ददर्शदेवकीसूनुं भवनेरत्नमण्डिते। तत्रासनस्थंगोविन्दंदेवदेवान्तिकेहरिम् ॥ २७॥
उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिःसमन्ततः। महादेवगणैःसिद्धैर्योगिभिःपरिवारितम्
प्रणम्यदण्डवद्भूमौ सुपर्णः शङ्करंशिवम्। निवेदयामासहरिंप्रवृत्तंद्वारकापुरे ॥ २८॥
ततः प्रणम्य शिरसा शङ्करंनीललोहितम्। आजगामपुरींकृष्णःसोऽनुज्ञातोहरेण तु
आरुह्यकश्यपसुतंस्त्रीगणैरभिपूजितः। वचोभिरमृतास्वदैर्मानितोमधुसूदनः ॥ ३१ ॥
वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्व्वाप्सरसांवराः। अन्वगच्छन्महायोगंशङ्खचक्रगदाधरम्

विसर्ज्जयित्वा विश्वात्मा सर्व्वा एवाङ्गना हरिः।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम् ॥ ३३ ॥

गते देवेऽसुररिपौ न कामिन्यो मुनीश्वराः। निशेवचन्द्ररहिता विनातेनचकाशिरे
श्रुत्वापौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम्। मण्डयाञ्चक्रिरेदिव्यांपुरींद्वारवतींशुभाम्
पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजैरन्तर्बहिःकृतैः। मालादिभिःपुरींरम्यां भूषयाञ्चक्रिरेजनाः
अवादयन्त विविधान्वादित्रान्मधुरस्वनान्।

शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावाद्यान्वितेनिरे ॥ ३७ ॥

प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरींद्वारवतींशुभाम् । अगायन्मधुरंगानं स्त्रियोयौवनशोभिताः

दृष्ट्वा ननृतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्द्धसु । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि

प्रविश्य भगवान् कृष्णस्त्वाशीर्व्वादाभिवर्द्धितः ।

वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः ॥ ४० ॥

सुरम्ये मण्डपे शुभ्रेशङ्खाद्यैःपरिवारितः । आत्मजैरभितोमुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्चसम्वृतः

तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः । ॥ ४१ ॥

भ्राजते चोमया देवो यथा देव्या समन्वितः ॥ ४२ ॥

आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम् । महर्षयः पूर्व्वजातामार्कण्डेयादयोद्विजाः

ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम् ।

ननामोत्थाय शिरसा स्वासनञ्च ददौ हरिः ॥ ४४ ॥

सम्पूज्यतानृषिगणान्प्रणामेनसहानुगः । विसर्जयामासहरिर्दत्वा तदभिवाञ्छितान्

तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयंहरिः । स्नातः शुक्लाम्बरो भानुमुपतिष्ठनकृताञ्जलिः

जजाप जाप्यं विधिवत्प्रेक्षमाणो दिवाकरम् ।

तर्पयामास देवेशो देवान् पितृगणान्मुनीन् ॥ ४७ ॥

प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि । पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशम्भूतिभूषणम्

समाप्य नियमं सर्व्वं नियन्ता स स्वयंनृणाम् ।

भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥ ४९ ॥

कृत्वाऽऽत्मयोगं विप्रेन्द्रा! मार्कण्डेयेन चाऽच्युतः ।

कथाम्पौराणिकीं पुण्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥

अथैतत्सर्व्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म्म महामुनिः ।

मार्कण्डेयो हसन्कृष्णं वभाषे मधुरं वचः ॥ ५१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्म्मभिः शुभैः ।

ब्रूहि त्वं कर्म्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च ॥ ५२ ॥

त्वं हि तत्परमं ब्रह्म निर्वाणममलम्पदम् । भारावतरणार्थायजातो वृष्णिकुले प्रभुः
तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णोब्रह्मविदाम्वरः । शृण्वतामेवपुत्राणां सर्व्वेषांप्रहसन्निव

श्रीभगवानुवाच

भवता कथितं सर्व्वं तथ्यमेव न संशयः । तथापिदेवमीशानं पूजयामिसनातनम्
न मे विप्रास्ति कर्त्तव्यं नानवाप्तं कथञ्चन । पूजयामि तथापीशञ्जानन्वै परमं शिवम्
नवैपश्यन्तितेदेवंमाययामोहिताजनाः । ततश्चैवाऽऽत्मनो मूलञ्ज्ञापयन्पूजयामि तम्
नचलिङ्गार्चनात्पुण्यंलोकेदुर्गतिनाशनम् । तथालिङ्गेहितायैषांलोकानांपूजयेच्छिवम्
योऽहन्तल्लिङ्गमित्याहुर्वेदवादविदोजनाः । ततोऽहमात्ममीशानं पूजयाम्यात्मनैवतत्
तस्यैव परमा मूर्त्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः । नावयोर्विद्यते भेदो वेदेष्वेतन्नसंशयः
एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः । याज्यः पूज्यश्चवन्द्यश्चज्ञेयोलिङ्गेमहेश्वरः

मार्कण्डेय उवाच

किं तल्लिङ्गं सुरश्रेष्ठ लिङ्गे सम्पूज्यते च कः । ब्रूहिकृष्णविशालाक्षगहनं ह्येतदुत्तमम्

श्रीभगवानुवाच

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षयम् । वेदा महेश्वरंदेवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्
पुराचैकार्णवे घोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ ६३ ॥
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतो महाशिवः ।
तस्मात्कालात्समारभ्यब्रह्मा चाहं सदैव हि । पूजयावोमहादेवंलोकानांहितकाम्यया

मार्कण्डेय उवाच

कथं लिङ्गमभूत्पूर्वमैश्वरं परमम्पदम् । प्रबोधार्थं स्वयं कृष्ण वक्तुमर्हसिसाम्प्रतम्

श्रीभगवानुवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् । मध्येचैकार्णवे तस्मिञ्छङ्खचक्रगदाधरः
सहस्रशीर्षा भूत्वाहं सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ६६ ॥

सहस्रबाहुः पुरुषः शयितोऽहं सनातनः ।

एतस्मिन्नन्तरेदूरे पश्यामिस्मामितप्रभम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशंभ्राजमानंश्रियावृतम्
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं कारणं प्रभुम् । कृष्णाजिनधरंदेवमृग्यजुःसामभिःस्तुतम्
निमेषमात्रेणसमास्प्राप्तो योगविदाम्वरः । व्याजहार स्वयंब्रह्मास्मयमानोमहाद्युतिः

कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे प्रभो !।
अहं कर्ताहि लोकानां स्वयम्भूः प्रपितामहः ॥ ७० ॥
एवमुक्तस्तदातेन ब्रह्मणाऽहमुवाच ह ।
अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः ॥ ७१ ॥

एवं विवादे वितते मायया परमेष्ठिनः । प्रबोधार्थं परं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्

कालानलसमप्रख्यं ज्वालामालासमाकुलम् ।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ७३ ॥
ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वै ।
अन्तमस्य विजानीव ऊद्ध्वं गच्छेऽहमित्यजः ॥ ७४ ॥

तदाशुसमयंकृत्वा गतावूद्ध्वमधश्चतौ । पितामहोऽप्यहन्नान्तंज्ञातवन्तौसमेत्य तौ

ततोविस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिनः ।
मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम् ॥ ७६ ॥

प्रोच्चरन्तौ महानादम्प्रोङ्कारं परमं पदम् । तं प्राञ्जलिपुटौभूत्वाशम्भुंतुष्टुवतुः परम्

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

अनादिमूलसंसाररोगवैद्याय शम्भवे । नमः शिवायशान्तायब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥७८
प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयोद्भूतिहेतवे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥
ज्वालामालाप्रतीकाय ज्वलनस्तम्भरूपिणे । नमः शिवायशान्ताय ब्रह्मणेलिङ्गमूर्त्तये
आदिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदीप्तये । नमः शिवायानन्ताय ब्रह्मणेलिङ्गमूर्त्तये ॥
प्रधानपुरुषेशाय व्योमरूपाय वेधसे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥
निर्विकाराय सत्याय नित्यायाऽतुलतेजसे । वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय ते नमः ॥
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणेलिङ्गमूर्त्तये । एवं संस्तूयमानस्तुव्यक्तो भूत्वा महेश्वरः

भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः। वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम्
सहस्रहस्तचरणःसूर्यसोमाग्निलोचनः। पिनाकपाणिभगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलधृक्
व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनिःस्वनः। अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहंसुरसत्तमौ
पश्येतं मां महादेवं भयं सर्वं प्रमुच्यताम्। युवां प्रसूतौगात्रेभ्यो ममपूर्वंसनातनौ
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः। वामपार्श्वे च मे विष्णुःपालकोहृदयेहरः

प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरंदद्मि यथेप्सितम्।
एवमुक्त्वाऽथ मां देवो महादेवः स्वयं शिवः॥ ९०॥

आलिङ्ग्यदेवंब्रह्माणं प्रसादाऽभिमुखोऽभवत्। ततः प्रहृष्टमनसौप्रणिपत्य महेश्वरम्
ऊचतुः प्रेक्ष्यतद्वक्त्रं नारायणपितामहौ। यदि प्रीतिःसमुत्पन्नायदिदेयोवरो हि नः
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयिदेव महेश्वरे। ततः स भगवानीशः प्रहसन्परमेश्वरः॥

उवाच मां महादेवः प्रीतं प्रीतेन चेतसा।

देव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते !॥ ९४॥
वत्स ! वत्स ! हरे ! विश्वम्पालयैतच्चराचरम्।
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया॥ ९५॥

सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणेऽपि निरञ्जनः। सम्मोहन्त्यज भोविष्णोपालयैनंपितामहम्
भविष्यत्येव भगवांस्तवपुत्रः सनातनः। अहञ्च भवतोवक्त्रात्कल्पादौ घुररूपधृक्
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः। एवमुक्त्वामहादेवो ब्रह्माणं मुनिसत्तम
अनुगृह्य च मां देवस्तत्रैवान्तरधीयत। ततः प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चासुप्रतिष्ठिता॥
लिङ्गन्तत्तु यतोब्रह्मन् ब्रह्मणः परमं वपुः। एतल्लिङ्गस्य माहात्म्यं भाषितं ते मयानघ

एतद् बुद्ध्यन्ति योगज्ञा न देवा न च दानवाः।
एतद्धि परमं ज्ञानमव्यक्तं शिवसञ्ज्ञितम्॥ १०१॥

येन सूक्ष्ममचिन्त्यं तत्पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। तस्मैभगवते नित्यंनमस्कारं प्रकुर्म्महे

महादेवायदेवाय देवदेवाय भृङ्गिणे। नमोवेदरहस्याय नीलकण्ठाय वै नमः॥ १०३

विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे हेतवे नमः ब्रह्मणे वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे ॥
शङ्कराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च । नमः कुरुष्वसततंध्यायस्व च महेश्वरम्
संसारसागरादस्मादचिरादुद्धरिष्यसि । एवं स वासुदेवेन व्याहृतो मुनिपुङ्गवः ॥
जगाममनसा देवमीशानं विश्वतोमुखम् । प्रणम्यशिरसाकृष्णमनुज्ञातो महामुनिः
जगामचेप्सितं शम्भुं देवदेवं त्रिशूलिनम् । यइमं श्रावयेन्नित्यंलिङ्गाध्यायमनुत्तमम्
शृणुयाद्वा पठेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । श्रुत्वा सकृदपि ह्येतत्तपश्चरणमुत्तमम् ॥
वासुदेवस्य विप्रेन्द्राः पापं मुञ्चति मानवः । जपेद्वाऽहरहर्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ।
एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ॥ ११० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे यदुवंशानुकीर्त्तने लिङ्गोत्पत्तिर्नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

राजवंशानुकीर्त्तनेश्रीकृष्णस्यस्वधामगमनवर्णनम्

सूत उवाच

ततोलब्धवरःकृष्णोजाम्बवत्यांमहेश्वरात् । अजीजनन्महात्मानंसाम्बमात्मजमुत्तमम्
प्रद्युम्नस्य ह्यभूत्पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः । तावुभौगुणसन्पन्नौ कृष्णस्यैवापरेतनू

हत्वा च कंसं नरकमन्यांश्च शतशोऽसुरान् ।
विजित्य लीलया शक्रंजित्वा बाणं महासुरम् ॥ ३ ॥
स्थापयित्वा जगत्कृस्नं लोकेधर्मांश्च शाश्वतान् ।
चक्रे नारायणो गन्तुं स्वस्थानं बुद्धिमुत्तमाम् ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भृग्वाद्याः कृष्णमीश्वरम् ।
आजग्मुर्द्वारकां द्रष्टुं कृतकार्यं सनातनम् ॥ ५ ॥

सतानुवाचविश्वात्मा प्रणिपत्याभिपूज्य च । आसनेषूपविष्टान्वै सहरामेणधीमता
गमिष्यामि परं स्थानं स्वकीयं विष्णुसञ्ज्ञितम् ।
कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः !॥ ७ ॥
इदं कलियुगंघोरंसम्प्राप्तमधुनाऽशुभम् । भविष्यन्तिजनाःसर्वेंह्यस्मिन्पापानुवर्त्तिनः
प्रवर्त्तयध्वं विज्ञानमज्ञानाञ्च हिताषहम् । येनेमे कलिजैःपापैर्मुच्यन्ते हि द्विजोत्तमाः
ये मां जनाः संस्मरन्तिकलौसकृदपिप्रभुम् । तेषांनश्यतितत्पापंभक्तानांपुरुषोत्तमे
येऽर्च्चयिष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः ।
विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत्पदम् ॥ ११ ॥
ये ब्राह्मणा वंशजाता युष्माकं वै सहस्रशः । तेषां नारायणेभक्तिर्भविष्यति कलौयुगे
परात्परतरं यान्ति नारायणपरा जनाः । न ते तत्र गमिष्यन्तियेद्विषन्ति महेश्वरम्
ध्यानंयोगस्तपस्तप्तंज्ञानंयज्ञादिकोविधिः । तेषांविनश्यतिक्षिप्रंयेनिन्दन्तिमहेश्वरम्
यो मांसमर्च्चयेन्नित्यमेकान्तंभावमाश्रितः । विनिन्दन्देवमीशानंसयातिनरकांयुतम्
तस्मात्सम्परिहर्तव्या निन्दापशुपतेर्द्विजाः । कर्म्मणामनसावाचामद्भक्तेष्वपियत्नतः
ये च दक्षाध्वरे शप्तादधीचेनर्द्विजोत्तमाः । भविष्यन्ति कलौभक्तैःपरिहार्याःप्रयत्नतः
द्विषन्तो देवमीशानंयुष्माकंवंशसम्भवाः । शप्ताश्चगौतमेनोर्व्यांनसम्भाष्याद्विजोत्तमैः
एवमुक्ताश्च कृष्णेन सर्वे ते वै महर्षयः ।
ओमित्युक्त्वा ययुस्तूर्णं स्वानि स्थानानि सत्तमाः ॥ १६ ॥
ततो नारायणः कृष्णो लीलयैवजगन्मयः । संहृत्यस्वकुलंसर्वं ययौ तत्परमं पदम्
इत्येषवः समासेनराज्ञांवंशःसुकीर्त्तितः । न शक्योविस्तराद्वक्तुंकिंभूयःश्रोतुमिच्छथ
यः पठेच्छृणुयाद्वापि वंशानां कथनं शुभम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे राजवंशानुकीर्त्तने श्रीकृष्णस्यस्वधामगमनंनाम
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

पार्थाय व्यासदर्शनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेतिचतुर्युगम् । एषां प्रभावं सूताद्य कथयस्व समासतः

सूत उवाच

गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परमं पदम् । पार्थः परमधर्मात्मा पाण्डवः शत्रुतापनः
कृत्वा चैवोत्तरविधिं शोकेन महतावृतः । अपश्यत्पथि गच्छन्तंकृष्णद्वैपायनंमुनिम्
शिष्यैः प्रशिष्यैरभितः सम्वृतं ब्रह्मवादिनम् ।
पपात दण्डवद् भूमौ त्यक्त्वा शोकं तदाऽर्जुनः ॥ ४ ॥
उवाच परमप्रीत्या कस्मादेतन्महामुने । इदानींगच्छसिक्षिप्रं कं वा देशं प्रति प्रभो!
सन्दर्शनाद्वैभवतः शोको मे विपुलो गतः । इदानीं मम यत्कार्यं ब्रूहि पद्मदलेक्षण
तमुवाच महायोगी कृष्णद्वैपायनः स्वयम् । उपविश्यनदीतीरेशिष्यैःपरिवृतोमुनिः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे पार्थायव्यासदर्शनवर्णनंनामा-
ष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

युगवंशानुकीर्त्तनम्

व्यास उवाच

इदं कलियुगांतेऽयं समयासंपापदुर्लक्ष्ण । ततोऽहम्गच्छामि देवस्य पुरींवाराणसींशुभाम्

अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्त्तिनः ।

भविष्यन्ति महाबाहो वर्णाश्रमविवर्ज्जिताः ॥ २ ॥

नान्यत्पश्यामिजन्तूनांमुक्त्वावाराणसींपुरीम् । सर्वपापोपशमनंप्रायश्चित्तंकलौयुगे
कृतं त्रेता द्वापरश्च सर्वेष्वेतेषु वै नराः । भविष्यन्तिमहात्मानोधार्मिकाःसत्यवादिनः
त्वं हिलोकेषुविख्यातोधृतिमाञ्जनवत्सलः । पालयाद्यपरंधर्मंस्वकीयंमुच्यसेभयात्
एवमुक्तो भगवता पार्थः परपुरञ्जयः । पृष्टवान्प्रणिपत्यासौ युगधर्मान्द्विजोत्तमाः ॥
तस्मैप्रोवाच सकलं मुनिः सत्यवतीसुतः । प्रणम्य देवमीशानं युगधर्मान्सनातनान्

व्यास उवाच

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान्नरेश्वर । नशक्यते मया राजन्विस्तरेणाभिभाषितुम्
आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः । तृतीयं द्वापरं पार्थ! चतुर्थं कलिरुच्यते॥
ध्यानं तपः कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥
ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान्रविः । द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः
ब्रह्माविष्णुस्तथा सूर्यः सर्वएवकलिष्वपि । पूज्यन्तेभगवान्रुद्रश्चतुर्ष्वपिपिनाकधृक्
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादःप्रकीर्त्तितः । त्रेतायुगेत्रिपादःस्याद्द्विपादोद्वापरेस्थितः
त्रिपादहीनस्तिष्ठेत्तुसत्तामात्रेण तिष्ठति । कृतेतुमिथुनोत्पत्तिवृत्तिःसाक्षादलोलुपा

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः ।

अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां निर्विशेषाः पुरञ्जय ॥ १५ ॥

तुल्यमायुः सुखंरूपंतासुतस्मिन् कृतेयुगे । विशोकास्तत्त्वबहुलाएकान्तबहुलास्तथा

ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः ।

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ॥ १७ ॥

पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताः परन्तप !।

रसोल्लासः कालयोगात्त्रेताख्ये नश्यति द्विजाः !॥ १८ ॥

तस्यांसिद्धौप्रनष्टायामन्यासिद्धिरवर्त्तत । अपां सौख्ये प्रतिहितेतदामेघात्मनातु वै
मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्ज्जनम् । सकृदेव तयावृष्ट्या संयुक्तपृथिवीतले

प्रादुरासंस्तथा तासां वृक्षा वै गृहसञ्ज्ञिताः ।

सर्वःप्रत्युपयोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते ॥ २१ ॥

वर्त्तयन्ति स्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेप्रजाः । ततः कालेन महता तासामेवविपर्ययात्

रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।

विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविताः ॥ २३ ॥

प्रणश्यन्ति ततः सर्वेवृक्षास्तेगृहसञ्ज्ञिताः । ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः

अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यानतस्तदा ।

प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसञ्ज्ञिताः ॥ २५ ॥

वस्त्राणि ते प्रसूयन्तेफलान्याभरणानिच । तेष्वेव जायते तासांगन्धवर्णरसान्वितम्

अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु । तेन ताः कर्त्तयन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजाः

हृष्टास्तुष्टास्तया सिद्ध्या सर्वा वै विगतज्वराः ।

पुनः कालान्तरेणैव ततो लोभावृतास्तदा ॥ २८ ॥

वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकंबलात् । तासां तेनापचारेण पुनर्लोभकृतेनवै

प्रनष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित् ।

शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्तास्ततो दुःखिता भृशम् ॥ ३० ॥

द्वन्द्वैः सम्पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ।

कृत्वा द्वन्द्वविनिर्घातान्वार्त्तोपायमचिन्तयन् ॥ ३१ ॥

नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा । ततः प्रादुरभूत्तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः

वार्त्तायाःसाधिका ह्यन्या वृष्टिस्तासान्निकामतः ।

तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ॥ ३३ ॥

अभवन् वृष्टिसन्तत्यास्रोतस्थानानिनिम्नगाः । यदाआपोबहुतराआपन्ना पृथिवीतले

अपाम्भूमेश्चसंयोगादौषध्यस्तास्तदाऽभवन् । अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्द्दश

ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे । ततः प्रादुरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः

अवश्यम्भावितार्थेन त्रेतायुगवशेन वै । ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्

वृक्षगुल्मौषधीश्चैवप्रसह्यतु यथाबलम् । विपर्ययेण तासान्ताओषध्योविविशुर्महीम्
पितामहनियोगेनदुदोहपृथिवीं पृथुः । ततस्ता जगृहुःसर्वाह्यन्योन्यंक्रोधमूर्च्छिताः
सदाचारे विनष्टे तु बलात्कालबलेन च । मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद्भगवानजः
सससर्ज क्षत्रियान्ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय वै ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च त्रेतायां कृतवान्प्रभुः ॥ ४१ ॥
यज्ञप्रवर्तनञ्चैव पशुहिंसाविवर्जितम् । द्वापरेऽप्यथ विद्यन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम्
रागो लोभस्तथा युद्धं मत्वा बुद्धिविनिश्चयम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रिधा त्विह विभाव्यते ॥ ४३ ॥
वेदव्यासैश्चतुर्द्धा च न्यस्यते द्वापरादिषु । ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैःस्वरवर्णविपर्ययैः । संहिताऋग्यजुःसाम्नांप्रोच्यन्तेपरमर्षिभिः
सामान्योद्भावना चैवदृष्टिभेदैःक्वचित्क्वचित् । ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि ब्रह्मप्रवचनानिच
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत । अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैवान्ये ह्युपद्रवाः ॥
वाङ्मनःकायजैर्दोषै निर्वेदोजायतेनृणाम् । निर्वेदाज्जायतेतेषां दुःखमोक्षविचारणा
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् । दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः
एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे द्विजाः ॥ आद्ये कृते तु धर्मोऽस्तित्रेतायांप्रवर्त्तते
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौयुगे ॥ ५१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे युगवंशानुकीर्त्तनं नामैकोनत्रिंशोध्यायः ॥ २९ ॥

———

त्रिंशोऽध्यायः

व्यासार्जुनसम्वादेयुगधर्मनिरूपणम्

व्यास उवाच

तिष्येमायामसूयाञ्चवधञ्चैवतपस्विनाम् । साधयन्तिनरानित्यंतपसाव्याकुलीकृताः
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयन्तथा । अनावृष्टिभयंघोरं देशानाञ्च विपर्य्ययः

अधार्म्मिका निराहारा महाकोपाल्पतेजसः ।

अनृतं ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताः सुदुष्प्रजाः ॥ ३ ॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः । विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम्
नाधीयते तदावेदान् न यजन्तिद्विजातयः । यजन्ति यज्ञान्वेदांश्च पठन्तेचाल्पवुद्धयः
शूद्राणांमन्त्रयोगैश्चसम्बन्धोब्राह्मणैःसह । भविष्यतिकलौतस्मिञ्छयनासनभोजनैः
राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान्बाधयन्ति च । भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेत नरेश्वरे
स्नानंहोमंजपंदानं देवतानां तथार्चनम् । तथान्यानि च कर्माणिन कुर्वन्तिद्विजातयः
विनिन्दन्तिमहादेवंब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम् । आम्नायधर्मशास्त्राणिपुराणानिकलौयुगे
कुर्वन्त्यवेददृष्टानि कर्माणि विविधानि तु । स्वधर्मेतुरुचिर्नैव ब्राह्मणानां प्रजायते
कुशीलचर्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृताः । वहुयाचनकालोकाभविष्यन्तिपरस्परम्
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति कलौयुगे

शुक्लदन्ताजिनाख्याश्च मुण्डाः काषायवाससः ।

शूद्रा धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥ १३ ॥

शस्यचौराभविष्यन्तितथाचेलाभिमर्शिनः । चौराचौराश्चहर्त्तारो हर्त्तुर्हन्तातथापरः
दुःखप्रचुरमल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता । अधर्माभिनिवेशत्वात्तमोवृत्तं कलौस्मृतम्

काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये ।

वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे ॥ १६ ॥

आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वा चालयन्त्यल्पबुद्धयः ।
ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपजीविनः ॥ १७ ॥
उच्चासनस्थाः शूद्राश्च द्विजमध्ये परन्तप । द्विजामानकरो राजा कलौकालबलेन तु
पुष्पैश्च भूषणैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैर्द्विजाः । शूद्रान्परिचरन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः
न प्रेक्षन्तेऽर्च्चितांश्चापि शूद्रान्द्विजवरान्नृप । सेवावसरमालोक्यद्वारेतिष्ठन्तिचद्विजाः
वाहनस्थान्समावृत्य शूद्राञ्छूद्रोपजीविनः ।
सेवन्ते ब्राह्मणास्तांस्तु स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ ॥ २१ ॥
अध्यापयन्ति वै वेदाञ्छूद्राञ्छूद्रोपजीविनः ।
एवं निर्वेदकानर्थान्नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ॥ २२ ॥
तपोयज्ञफलानान्तु विक्रेतारो द्विजोत्तमाः । यतयश्च भविष्यन्तिशतशोऽथसहस्रशः
नाशयन्तः स्वकान्धर्म्मानधिगच्छन्तितत्पदम् ।
गायन्ति लौकिकैर्गानैर्दैवतानि नराधिप !॥ २४ ॥
वामपाशुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिकाः ।
भविष्यन्ति कलौ तस्मिन्ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ॥ २५ ॥
ज्ञानेकर्मण्यपगते लोके निष्क्रियतां गते । कीटमूषिकसर्पाश्चधर्षयिष्यन्तिमानुषान्
कुर्वन्तिचावताराणि ब्राह्मणानांकुलेषु वै । देवीशापविनिर्द्दग्धाःपुरादक्षाध्वरेद्विजाः
निन्दन्ति च महादेवंतमसाविष्टचेतसः । वृथाधर्मञ्चरिष्यन्तिकलौतस्मिन्युगान्तिके
सर्वे वीरा भविष्यन्ति ब्राह्मणाद्याः स्वजातिषु ।
ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः ॥ २६ ॥
सर्वेतेऽवतरिष्यन्तिब्राह्मणास्तासुयोनिषु । विनिन्दन्तिहृषीकेशंब्राह्मणाब्रह्मवादिनः
वेदबाह्यव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमाः । मोहयन्तिजनान् सर्वान्दर्शयित्वाफलानिच
तमसाऽऽविष्टमनसोवैडालव्रतिकाधमाः । कलौ रुद्रो महादेवोलोकानामीश्वरः परः
तदेव साधयेन्नृणां देवतानाञ्च दैवतम् । करिष्यत्यवताराणि शङ्करो नीललोहितः

श्रौतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया ।

उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसञ्ज्ञितम् ॥ ३४ ॥
सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान्वेदनिदर्शितान् । सर्ववर्णान् समुद्दिश्यस्वधर्माये निदर्शिताः
ये सम्प्रीता निषेवन्ते येन केनोपचारतः । विजित्यकलिजान्दोषान्यान्तितेपरमम्पदम्
अनायासेन सुमहत्पुण्यमाप्नोति मानवः । अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेको महान् गुणः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्यमाहेश्वरं युगम् । विशेषाद्ब्राह्मणो रुद्रमीशानंशरणंव्रजेत्
ये नमन्ति विरूपाक्षमीशानं कृत्तिवाससम् । प्रसन्नचेतसो रुद्रं ते यान्तिपरमम्पदम्
यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकामफलोध्रुवः । अन्यदेवनमस्कारान्नतत्फलमवाप्नुयात् ॥
एवम्विधे कलियुगे दोषाणामेव शोधनम् । महादेवनमस्कारोध्यानं दानमितिश्रुतिः
तस्मादनीश्वरानन्यान्त्यक्त्वादेवं महेश्वरम् । समाश्रयेद्विरूपाक्षंयदीच्छेत्परमम्पदम्
नाऽर्चयन्तीह येरुद्रं शिवं त्रिदशवन्दितम् । तेषां दानं तपो यज्ञोवृथाजीवितमेव च
नमो रुद्राय महते देवदेवायशूलिने । त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिनां गुरवे नमः ॥४४
नमोऽस्तुदेवदेवाय महादेवाय वेधसे । शम्भवे स्थाणवेनित्यं शिवाय परमेष्ठिने ॥
नमःसोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतवे । प्रपद्येऽहं विरूपाक्षं शरण्यं ब्रह्मचारिणम् ॥
महादेवंमहायोगमीशानञ्चाम्बिकापतिम् । योगिनां योगदातारं योगमायासमावृतम्
योगिनांगुरुमाचार्यंयोगिगम्यम्पिनाकिनम् । संसारतारणंरुद्रंब्रह्माणंब्रह्मणोऽधिपम्
शाश्वतं सर्वगं शान्तं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् । कपर्दिनं कालमूर्त्तिममूर्त्तिम्परमेश्वरम्
एकमूर्त्तिमहामूर्त्तिं वेदवेद्यंदिवस्पतिम् । नीलकण्ठंविश्वमूर्त्तिं व्यापिनंविश्वरेतसम्
कालाग्निकालदहनं कामदंकामनाशनम् । नमस्ये गिरिशं देवं चन्द्रावयवभूषणम्
विलोहितंलेलिहानमादित्यम्परमेष्ठिनम् । उग्रम्पशुपतिं भीमं भास्करं परमन्तपः ॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः । अतीतानागतानां वै यावन्मन्वन्तरक्षयः

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।

व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पः कल्पेन चैव हि ॥ ५४ ॥

मन्वन्तरेषु चैतेषु अतीतानागतेषु वै । तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ॥
एवमुक्तोभगवता किरीटीश्वेतवाहनः । बभारपरमां भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिणीम्

नमश्चकारतमृषिं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् । सर्वज्ञंसर्वकर्त्तारं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम्
तमुवाच पुनर्व्यासः पार्थं परपुरञ्जयम् । कराभ्यां सुशुभाभ्याञ्च संस्पृश्य प्रणतंमुनिः
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि त्वादृशोऽन्यो न विद्यते ।
त्रैलोक्ये शङ्करे नूनं भक्तः परपुरञ्जयः ॥ ५६ ॥
दृष्टवानसि तं देवं विश्वाक्षं विश्वतोमुखम् । प्रत्यक्षमेव सर्वेषां रुद्रं सर्वजगन्मयम्
ज्ञानं तदैश्वरं दिव्यं यथावद्विदितं त्वया । स्वयमेव हृषीकेशः प्रीत्योवाचसनातनः
गच्छ गच्छस्वकं स्थानंनशोकंकर्त्तुमर्हसि । व्रजस्वपरयाभक्त्या शरण्यंशरणंशिवम्
एवमुक्त्वा स भगवाननुगृह्यार्ज्जुनं प्रभुः । जगाम शङ्करपुरीं समाराधयितुं भवम् ॥
पाण्डवेयोऽपि तद्वाक्यात्संप्राप्य शरणं शिवम् ।
सन्त्यज्य सर्वकर्म्माणि ज्ञात्वा तत्परमोऽभवत् ॥ ६४ ॥
नार्चनेनसमःशम्भोर्भक्त्याभूतोभविष्यति । मुक्तवासत्यवतीसूनुं कृष्णंवादेवकीसुतम्
तस्मै भगवते नित्यं नमःशान्तायधीमते । पाराशर्य्याय मुनये व्यासायामिततेजसे
कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव सनातनः । को ह्यन्यस्तत्त्वतोरुद्रं वेत्तितंपरमेश्वरम्
नमःकुरुध्वंतमृषिं कृष्णंसत्यवतीसुतम् । पाराशर्य्यंमहात्मानंयोगिनंविष्णुमव्ययम्
एवमुक्त्वा तु मुनयःसर्वएव समाहिताः । प्रणेमुस्तं महात्मानंव्यासं सत्यवतीसुतम्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे व्यासार्ज्जुनसंवादे युगधर्मनिरूपणंनाम
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

प्राप्य वाराणसीं दिव्यां कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
किमकार्षीन्महाबुद्धिः श्रोतुं कौतूहलं हि नः ॥ १ ॥

सूत उवाच

प्राप्य वाराणसीं दिव्यामुपस्पृश्य महामुनिः ।
पूजयामास जाह्नव्यां देवं विश्वेश्वरं शिवम् ॥ २ ॥

तमागतंमुनिं दृष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै । पूजयाञ्चक्रिरे व्यासं मुनयो मुनिपुङ्गवम्

पप्रच्छुः प्रणताः सर्वे कथां पापप्रणाशिनीम् ।
महादेवाश्रयास्पुण्यां मोक्षधर्म्मान्सनातनान् ॥ ४ ॥

सचापि कथयामास सर्वज्ञो भगवानृषिः । माहात्म्यं देवदेवस्य धर्म्यं वेदनिदर्शनात्
तेषांमध्येमुनीन्द्राणांव्यासशिष्योमहामुनिः । पृष्टवाञ्जैमिनिर्व्यासंगूढमर्थंसनातनम्

जैमिनिरुवाच

भगवन् ! संशयञ्चैकं छेत्तुमर्हसि सर्ववित् । न विद्यते ह्यविदितं भवतः परमर्षिणः
केचिद्ध्यानं प्रशंसन्तिधर्म्ममेवापरेजनाः । अन्येसाङ्ख्यं तथायोगं तपश्चान्येमहर्षयः
ब्रह्मचर्य्यमथो नूनमन्ये प्राहुर्म्महर्षयः । अहिंसां सत्यमप्यन्ये सन्न्यासमपरे विदुः ॥
केचिद्दयां प्रशंसन्ति दानमध्ययनं तथा । तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम्
किमेषाञ्च भवेच्छ्रेयः प्रब्रूहि मुनिपुङ्गव !। यदि वाविद्यतेऽप्यन्यद्गुह्यं तद्वक्तुमर्हसि

श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम् ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच

साधु साधु महाभाग! यत्पृष्टंभवता मुने !। वक्ष्ये गुह्यतमाद्गुह्यंश्रृण्वन्त्यन्ये महर्षयः
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत्सनातनम् । गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभिः ॥
नाऽश्रद्दधाने दातव्यं नाऽभक्ते परमेष्ठिनः । नावेदविदुषे देयं ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥
मेरुश्रृङ्गे महादेवमीशानं त्रिपुरद्विषम् । देवासनगतादेवी महादेवमपृच्छत ॥ १६ ॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव! महादेव! भक्तानामार्त्तिनाशन । कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति ॥

साङ्ख्ययोगस्तपो ध्यानं कर्म्मयोगश्च वैदिकः ।
आयासबहुलान्याहुर्यानि चाऽन्यानि शङ्कर !॥ १८ ॥

येनविभ्रान्तचित्तानां विज्ञानांयोगिनामपि । द्रश्योहिभगवान्सूक्ष्मःसर्वेषामपिदेहिनाम्
एतद्गुह्यतमंज्ञानं गूढं ब्रह्मादिसेवितम् । हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद्गूढार्थं ज्ञातमज्ञैर्बहिष्कृतम् । वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः
परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी । सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी ॥

तस्मिन् (तत्र) भक्ता महादेवि! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः ॥ २३ ॥

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमञ्चयत् । ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम ॥

स्थानान्तरे पवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च ।
श्मशाने संस्थितान्येव दिवि भूमिगतानि च ॥ २५ ॥

भूर्लोके नैवसंलग्नमन्तरिक्षेममालयम् । अविमुक्ता न पश्यन्तिमुक्ताः पश्यन्तिचेतसा
श्मशानमेतद्विख्यातमविमुक्तमितिस्मृतम् । कालोभूत्वाजगदिदं संहराम्यत्रसुन्दरि!
देवीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतमं मम । मद्भक्ता यत्र गच्छन्ति मामेवप्रविशन्तिते
दत्तं जप्तं हुतञ्चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् । ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राऽक्षयं भवेत्
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम् । अविमुक्ते प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये वर्णसङ्कराः ।

स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः ॥ ३१ ॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्येमृगपक्षिणः । कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्तेवरानने
चन्द्रार्द्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहनाः । शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः

नाऽविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी ।

ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति पराङ्गतिम् ॥ ३४ ॥

मोक्षं सुदुर्लभंज्ञात्वा संसारञ्चातिभीषणम् । अश्मनाचरणौहत्वावाराणस्यांवसेन्नरः
दुर्लभा तपसोऽवाप्तिर्मृ तस्यपरमेश्वरि । यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षणी
प्रसादाद्दह्यते ह्येनो मम शैलेन्द्रनन्दिनि । अत्राबुधा न पश्यन्तिममायाविमोहिताः
अविमुक्तंनपश्यन्ति मूढा ये तमसावृताः । विण्मूत्ररेतसमां मध्ये सम्विशन्तिपुनःपुनः
हन्यमानोऽपियो देवि! विशेद्विघ्नशतैरपि । स यातिपरमंस्थानंयत्र गत्वानशोचति
जन्ममृत्युजरामुक्तंपरं याति शिवालयम् । अपुनर्मरणानांहिसागतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्

यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्येत पण्डितः ।

न दानैर्नतपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया ॥ ४१ ॥

प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा या विमुक्ते तु लभ्यते ।

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डालाद्या जुगुप्सिताः ॥ ४२ ॥

किल्बिषैः पूर्णदेहा ये प्रकृष्टैस्तापकैस्तथा । भेषजम्परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः
अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तम्परं पदम् । अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम् ॥
कृत्वावै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्तेवसन्ति ये । तेषां तत्परमं ज्ञानं ददास्यन्ते परंपदम्
प्रयागं नैमिषं पुण्यं श्रीशैलोऽथ हिमालयः । केदारं भद्रकर्णञ्च गया पुष्करमेव च
कुरुक्षेत्रं रुद्रकोटिर्नर्मदा हाटकेश्वरम् । शालिग्रामञ्च पुष्पाग्रं वंशं कोकामुखं तथा
प्रभासंविजयेशानंगोकर्णं शङ्कुकर्णकम् । एतानिपुण्यस्थानानि त्रैलोक्येविश्रुतानिच

यास्यन्ति परमं मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः ।

वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ ४६ ॥

प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् । अन्यत्र सुलभागङ्गा श्राद्धं दानं तथाजपः

व्रतानि सर्वमेवैतद्वाराणस्यां सुदुर्लभम् । यजेत्तु जुहुयान्नित्यं ददात्यर्च्चयतेऽपरान्
वायुभक्षश्चसततंवाराणस्यांस्थितोनरः । यदिपापो यदि शठो यदिवाधार्मिकोनरः
वाराणसींसमासाद्यपुनातिसकुलत्रयम् । वाराणस्यांमहादेवंयेस्तुवन्त्यर्च्चयन्तिच
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेविज्ञेयागणेश्वराः । अन्यत्रयोगाज्ज्ञानाद्वासन्न्यासादथवान्यतः

प्राप्यते तत्परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना ।
ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै ॥ ५५ ॥

ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना । यत्र योगस्तथा ज्ञानंमुक्तिरेकेन जन्मना
अविमुक्तंसमासाद्यनान्यद्गच्छेत्तपोवनम् । यतोमया न मुक्तन्तदविमुक्तमितिस्मृतम्
तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद्विज्ञाय मुच्यते । ज्ञानध्याननिविष्टानां परमानन्दमिच्छताम्

या गतिर्विहिता सुभ्रू! साऽविमुक्ते मृतस्य तु ।
यानि कान्यविमुक्तानि देवैरुक्तानि नित्यशः ॥ ५६ ॥
पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्योऽप्यधिका शुभा ।
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्तेऽक्षय्यमीश्वरः ॥ ६० ॥

व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तथैव ह्यविमुक्तकम् । यत्तत्परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति स्मृतम्
एकेन जन्मनादेवि वाराणस्यां तदाप्यते । भ्रूमध्ये नाभिमध्येच हृदयेऽपिचमूर्द्धनि

यथा विमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम् ।
वरणायास्तथा ह्यस्या मध्ये वाराणसी पुरी ॥ ६३ ॥
तत्रैव संस्थितन्तत्त्वं नित्यमेवाऽविमुक्तिकम् ।
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति ॥ ६४ ॥

यथा नारायणोदेवो महादेवादिवेश्वरात् । तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः
उपासते मां सततं देवदेवः पितामहः । महापातकिनो ये च ये तेभ्यः पापकृत्तमाः

वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम् ।
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेच्चाऽऽमरणान्तिकम् ॥ ६७ ॥

वाराणस्यां महादेवि! ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते।

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम् ॥ ६८ ॥
ततो नैव चरेत्पापं कायेन मनसा गिरा । एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां द्विजोत्तमाः
अविमुक्ताश्रयंज्ञानं न किञ्चिद्वेद्मितत्परम् । देवतानामृषीणाञ्च शृण्वतां परमेष्ठिनाम्
देव्यै देवेन कथितं सर्वपापविनाशनम् । यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः
यथेश्वराणां गिरिशःस्थानानाञ्चैतदुत्तमम् । यैःसमाराधितोरुद्रःपूर्वस्मिन्नेव जन्मनि
तं विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम् । कलिकल्मषसम्भूता येषामुपहता मतिः
न तेषां वीक्षितुं शक्यं स्थानं तत्परमेष्ठिनः ।
ये स्मरन्ति सदा कालं विन्दन्ति च पुरीमिमाम् ॥ ७४ ॥
तेषांविनश्यतिक्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् । यानित्रेहप्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः
नाशयेत्तानि सर्वाणि तेन कालतनुः शिवः ।
आगच्छतामिदं स्थानं सेवितुं मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ७६ ॥
मृतानां वै पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः
योगी वाप्यथवायोगी पापीवापुण्यकृत्तमः । नलोकवचनात्पित्रोर्न चैवगुरुवादतः
मतिरुत्क्रमणीया स्यादविमुक्तागतिं प्रति ॥ ७९ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वाथ भगवान्व्यासो वेदविदां वरः । सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्याञ्चचारह

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे वाराणसीमाहात्म्यवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

———

द्वात्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्येकृत्तिवासेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

सशिष्यैःसंवृतोधीमान् गुरुर्द्वैपायनोमुनिः। जगामविपुलं लिङ्गमोङ्कारंमुक्तिदायकम्

तत्राऽभ्यर्च्य महादेवं शिष्यैः सह महामुनिः।

प्रोवाच तस्य माहात्म्यं मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २॥

इदं तद्विमलं लिङ्गमोङ्कारं नाम शोभनम्। अस्य स्मरणमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः

अत्र तत्परमंज्ञानं पञ्चायतनमुत्तमम्। अर्चितं मुनिभिर्नित्यं वाराणस्यांविमोक्षदम्

अत्र साक्षान्महादेवः पञ्चायतनविग्रहः। रमते भगवान्रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः॥ ५॥

यत्तत्पाशुपतं ज्ञानं पञ्चार्थमिति कथ्यते। तदेव विमलं लिङ्गमोङ्कारं समवस्थितम्

शान्त्यतीता पराशान्तिर्विद्याचैवयथाक्रमम्। प्रतिष्ठाचनिवृत्तिश्चपञ्चार्थंलिङ्गमैश्वरम्

पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मादीनां यदाश्रयम्। ओङ्कारबोधितं लिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते

संस्मरेदैश्वरं लिङ्गं पञ्चायतनमव्ययम्। देहान्ते तत्परं ज्योतिरानन्दं विशते पुनः

अत्र देवर्षयः पूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा। उपास्य देवमीशानं प्राप्तवन्तः परम्पदम्

मत्स्योदर्यास्तटेपुण्यंस्थानंगुह्यतमंशुभम्। गोचर्ममात्रं विप्रेन्द्राओङ्कारेश्वरमुत्तमम्

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम्। विश्वेश्वरं तथोङ्कारं कपर्दीश्वरमुत्तमम्

एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः।

न कश्चिदिह जानाति विना शम्भोरनुग्रहात्॥ १३॥

एवमुक्त्वा ययौ कृष्णःपाराशर्यो महामुनिः। कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंद्रष्टुं देवस्यशूलिनः

समभ्यर्च्य सदा शिष्यैर्माहात्म्यं कृत्तिवाससः।

कथयामास विप्रेभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तमः॥ १५॥

अस्मिन् स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्।

ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते ॥ १६ ॥
तेषांलिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत्त्रिलोचनः। रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्तानांभक्तवत्सलः
हत्वा गजाकृतिर्दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः। वासस्तस्याकरोत्कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः
अत्र सिद्धिम्परां प्राप्ता मुनयो मुनिपुङ्गवाः। तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत्परमम्पदम्
विद्या विद्येश्वरा रुद्राः शिवा ये वः (च) प्रकीर्त्तिताः।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं नित्यमावृत्य संस्थिताः ॥ २० ॥
ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलञ्जनाः। कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्तेनसंशयः
जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा। एकेनजन्मना मोक्षःकृत्तिवासेतुलभ्यते
आलयः सर्वसिद्धानामेतत्स्थानं वदन्ति हि। गोपितंदेवदेवेन महादेवेनशम्भुना॥
युगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः। उपासते महादेवं जपन्ति शतरुद्रियम्
स्तुवन्ति सततं देवं महादेवं त्रियम्बकम्।
ध्यायन्तो हृदये नित्यं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम् ॥ २५ ॥
गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि ये वाराणस्यां निवसन्ति विप्राः।
तेषामथैकेन भवेन मुक्तिः ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥
सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं सुदुर्ल्लभं विप्रकुलेषु जन्म।
ध्यानं समादाय जपन्तिरुद्रं ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम् ॥ २७ ॥
आराधयन्ति प्रभुमीशितारं वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः।
यजन्ति यज्ञैरभिसन्धिहीनाःस्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शम्भुम् ॥ २८ ॥
नमो भवायाऽमलभावधाम्ने स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं जाने महादेवमनेकरूपम् ॥ २९ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे वाराणसीमाहात्म्येकृत्तिवासेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कपर्द्दीश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

समाभाष्य मुनीन्धीमान्देवदेवस्य शूलिनः। जगाम लिङ्गं तद्द्रष्टुं कपर्दीश्वरमव्ययम्
स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन्द्विजाः। पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम्
तत्राश्चर्यमपश्यंस्ते मुनयो गुरुणा सह। मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्यं प्रणेमुर्गिरिशं हरम्
कश्चिदभ्याजगामेमं शार्दूलो घोररूपधृक्। मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम्

तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम्।
धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता॥ ५॥
तां विदार्य्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः सुमहाबलः।
जगाम चान्यद्विजनं स दृष्ट्वा तान्मुनीश्वरान्॥ ६॥
मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी।
अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्य्यसमप्रभा॥ ७॥

त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितशेखरा। वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संयता

पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तस्य मूर्द्धनि।
गणेश्वरः स्वयं भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात्ततः॥ ८॥

दृष्ट्वैतदाश्चर्य्यवरं जैमिनिप्रमुखास्तदा। कपर्द्दीश्वरमाहात्म्यं पप्रच्छुर्गुरुमच्युतम्
तेषां प्रोवाच भगवान्देवाग्रे चोपविश्य सः। कपर्दीशस्य माहात्म्यं प्रणम्य वृषभध्वजम्

(स्मृत्यैवाशेषपापौघं क्षिप्रमस्य विनश्यति।
कामक्रोधादयो दोषा वाराणस्यां निवासिनः।
विघ्नाः सर्वे विनश्यन्ति कपर्द्दीश्वरपूजनात्।
तस्मात्सदैव द्रष्टव्यं कपर्द्दीश्वरमुत्तमम्।)

इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् ।
पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैःस्तवैः ॥ १२ ॥
ध्यायतामत्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम् । जायते योगसिद्धिश्च षण्मासेन न संशयः
ब्रह्महत्यादिपापानि विनश्यन्त्यस्य पूजनात् ।
पिशाचमोचने कुण्डे स्नातस्याऽत्र समीपतः ॥ १४ ॥
अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्वी शंसितव्रतः ।
शङ्कुकर्ण इति ख्यातः पूजयामास शूलिनम् ॥ १५ ॥
जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं रुद्ररूपिणम् । पुष्पधूपादिभिः स्तोत्रैर्नमस्कारैः प्रदक्षिणैः
उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षान्तु नैष्ठिकीम् ।
कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम् ॥ १७ ॥
अस्थिचर्म्मपिनद्धाङ्गं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपयापरया युतः
प्रोवाच को भवान् कस्माद्देशाद्देशमिमङ्गतः ।
तस्मै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद्वचः ॥ १६ ॥
पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वितः । पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः कुटुम्बभरणोत्सुकः
न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा । न कदाचित्कृतं पुण्यमल्पं वा स्वल्पमेव वा
एकदा भगवान्रुद्रो गोवृषेश्वरवाहनः । विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः
तदाचिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागतः । न दृष्टं तन्महाघोरं यमस्यवदनं मुने !॥२३॥
ईदृशीं योनिमापन्नः पैशाचीं क्षुधयार्द्दितः । पिपासया परिक्रान्तो न जानामि हिताहितम्
यदि कश्चित्समुद्धर्त्तुमुपायं पश्यसि प्रभो !। कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणं गतः
इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत् ।
त्वादृशो नहि लोकेऽस्मिन्विद्यते पुण्यकृत्तमः ॥ २६ ॥
यत्त्वया भगवान् पूर्व्वं दृष्टो विश्वेश्वरः शिवः ।
संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि ॥ २७ ॥

तेन कर्म्मविपाकेन देशमेतं समागतः । स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन्कुण्डे समाहितः

येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि ॥ २६ ॥
स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो दयावता देववरं त्रिनेत्रम् ।
स्मृत्वा कपर्द्दीश्वरमीशितारं चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम् ॥ ३० ॥
तदाऽवगाहान्मुनिसन्निधाने ममार दिव्याभरणोपपन्नः ।
अदृश्यतार्कप्रतिमे विमाने शशाङ्कचिह्नाङ्कितचारुमौलिः ॥ ३१ ॥
विभाति रुद्रैरुदितो दिविस्थैः समावृतो योगिभिरप्रमेयैः ।
स बालखिल्यादिभिरेष देवो यथोदये भानुरशेषदेवः ॥ ३२ ॥
स्तुवन्ति सिद्धा दिविदेवसङ्घा नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः ।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमालिमिश्रां गन्धर्वविद्याधरकिन्नराद्याः ॥ ३३ ॥
संस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घैरवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात् ।
समाविशन्मण्डलमेवमग्र्यं त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः ॥ ३४ ॥
दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम् ।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेवमग्र्यं प्रणम्य तुष्टाव कपर्द्दिनं तम् ॥ ३५ ॥

शङ्कुकर्ण उवाच

नमामि नित्यं परतः परस्ताद्गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम् ।
व्रजामियोगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम् ॥ ३६ ॥
त्वां ब्रह्मपारं हृदि सन्निविष्टं हिरण्मयं योगिनमादिहीनम् ।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविस्थंमहामुनिं ब्रह्मपरं पवित्रम् ॥ ३७ ॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्रबाहुं तमसः परस्तात् ।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम् ॥ ३८ ॥
यतः प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृतं सर्वमिदं शिवेन ।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥ ३६ ॥
आलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयंप्रभुश्चित्प्रतिमैकरुद्रम् ।

तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति ॥ ४० ॥

यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगाल्लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः ।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तद्ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम् ॥ ४१ ॥
न यत्र नामानि विशेषतृप्तिर्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४२ ॥
यद्वेदवेदाभिरता विदेहं स ब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम् ।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तद्ब्रह्मपारं प्रणमामि नित्यम् ॥ ४३ ॥
यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो विवर्त्तते यं प्रणमन्ति देवाः ।
नमामि तं ज्योतिषि सन्निविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम् ॥ ४४ ॥
व्रजामि नित्यं शरणं महेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम् ।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि ॥ ४५ ॥
स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽसौ भगवन्तंकपर्द्दिनम् । पपात दण्डवद्भूमौप्रोच्चरन्प्रणवंशिवम्
तत्क्षणात्परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम् ।
ज्ञानमानन्दमद्वैतं कोटिकालाग्निसन्निभम् ॥ ४७ ॥
शङ्कुकर्णोऽथसतदामुनिःसर्वात्मकोऽमलः । निर्लिम्पेविमलेलिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत्
एतद्रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं च कपर्द्दिनः । न कश्चिद्वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्रमुह्यति
य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम् ।
भक्तः पापविमुक्तात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ५० ॥
पठेच्च सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम् । प्रातर्म्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयान्नरः
इहैवनित्यं वत्स्यामो देवदेवं कपर्द्दिनम् । द्रक्ष्यामः सततं देवं पूजयामस्त्रिलोचनम्
इत्युक्त्वाभगवान्व्यासःशिष्यैःसहमहाद्युतिः । उवासतत्रयुक्तात्मा पूजयन्वैकपर्द्दिनम्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये कपर्द्दीश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

———

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

उषित्वा तत्र भगवान् कपर्द्दीशान्तिके पुनः। ययौ द्रष्टुं मध्यमेशं बहुवर्षगणान्प्रभुः
तत्रमन्दाकिनीं पुण्यामृषिसङ्घनिषेविताम्। नदींविमलपानीयां दृष्ट्वा हृष्टोऽभवन्मुनिः
सतामन्वीक्ष्यमुनिभिः सहद्वैपायनःप्रभुः। चकारभावपूतात्मा स्नानंस्नानविधानवित्

(पूजयामास लोकादिं पुष्पर्नानाविधैर्भवम्।
प्रविश्य शिष्यप्रवरैः सार्द्धं सत्यवतीसुतः॥)

सन्तर्प्यविधिवद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा। मध्यमेश्वरमीशानमर्चयामासशूलिनम्
ततः पाशुपताःशान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः। द्रष्टुं समागतारुद्रं मध्यमेश्वरमीश्वरम्
ओङ्कारासक्तमनसोवेदाध्ययनतत्पराः। जटिला मुण्डिताश्चापि शुद्धयज्ञोपवीतिनः
कौपीनवसनाः केचिदपरे चाप्यवाससः। ब्रह्मचर्यरताः शान्ता दान्तावै ज्ञानतत्पराः
दृष्ट्वा द्वैपायनं विप्राः शिष्यैःपरिवृतंमुनिम्। पूजयित्वा यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्

को भवान् कुत आयातः सह शिष्यैर्म्महामुने !।
प्रोचुः पैलादयः शिष्यास्तानृषीन्धर्मभावितान्॥ ६॥

अयं सत्यवतीसूनुः कृष्णद्वैपायनःप्रभुः। व्यासः स्वयं हृषीकेशोयेनवेदाःपृथक्कृताः
यस्य देवो महादेवःसाक्षाद्देवःपिनाकधृक्। अंशांशेनाभवत्पुत्रो नाम्ना शुकइतिप्रभुः
यो वै साक्षान्महादेवं सर्वभावेनशङ्करम। प्रपन्नःपरया भक्त्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम्
ततः पाशुपताः सर्वे ते च हृष्टतनूरुहाः। ऊचुरव्यग्रमनसो व्यासं सत्यवतीसुतम्॥
भगवन् भवता ज्ञातं विज्ञानं परमेष्ठिनः। प्रसादाद्देवदेवस्य यत्तन्माहेश्वरं परम्॥
तद्वदास्माकमव्यग्रं रहस्यं गुह्यमुत्तमम। क्षिप्रं पश्येम तं देवं श्रुत्वाभगवतोमुखात्
विसर्जयित्वा ताञ्छिष्यान् [illegible]।

प्रोवाच तत्परं ज्ञानं योगिभ्यो योगवित्तमः ॥ १८ ॥

तत्क्षणादेव विमलंसम्भूतंज्योतिरुत्तमम् । लीनास्तत्रैव ते विप्राः क्षणादन्तरधीयत
तत शिष्यान्समाहूत्यभगवान्ब्रह्मवित्तमः । प्रोवाचमध्यमेशस्यमाहात्म्यंपैलपूर्वकान्

अस्मिन् स्थाने स्वयं देवो देव्या सह महेश्वरः ।

रमते भगवान्नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः ॥ २१ ॥

अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः । उवास वत्सरं कृष्णः सदापाशुपतैर्वृतः
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राराधनतत्परः । आराधयन्हरिःशम्भुंकृत्वापाशुपतंव्रतम्
तस्य वै बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः । लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञानंदृष्टवन्तो महेश्वरम्
तस्य देवो महादेवःप्रत्यक्षंनीललोहितः । ददौ कृष्णस्य भगवन्वरदो वरमुत्तमम्
येऽर्चयिष्यन्तिगोविन्दंमद्भक्ताविधिपूर्वकम् । तेषांतदैश्वरंज्ञानमुत्पत्स्यतिजगन्मय

त्वमीशोऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः ।

भविष्यसि न सन्देहो मत्प्रसादाद्द्विजातिभिः ॥ २५ ॥

येचद्रक्ष्यन्तिदेवेशंध्यात्वादेवं पिनाकिनम् । ब्रह्महत्यादिकंपापं तेषामाशुविनश्यति

प्राणांस्त्यजन्ति ये विप्राः पापकर्मरता अपि ।

ते यान्ति परमं स्थानं नात्र कार्याविचारणा ॥ २७ ॥

धन्यास्तथ्यन्तु ते विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः ।

अर्चयन्ति महादेवं मध्यमेश्वरमुत्तमम् ॥ २८ ॥

स्नानं दानं तपःश्राद्धं पिण्डनिर्वपणन्त्विह । एकैकशःकृतं विप्राःपुनात्यासप्तमंकुलम्
सन्निहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे । यत्फलंलभते मर्त्यस्तस्माद्दशगुणन्त्विह
एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिकेप्रभुः । उवास सुचिरंकालं पूजयन्वै महेश्वरम्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे वाराणसीमाहात्म्येमध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

तत सर्वाणिगुह्यानितीर्थान्यायतनानि च । जगामभगवान्व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्वृतः
प्रयागं परमं तीर्थं प्रयागादधिकं शुभम् । विश्वरूपं तथा तीर्थं कालतीर्थमनुत्तमम्
आकाशाख्यं महातीर्थंतीर्थञ्चैवानुषंपरम् । स्वर्लीनञ्च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम्
प्राजापत्यं परं तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च । जम्बुकेश्वरमित्युक्तं चर्माख्यं तीर्थमुत्तमम्
गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थञ्चैव महानदी । नारायणं परं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम्
ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं वाराहन्तीर्थमुत्तमम् । यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं सम्वर्त्तकम्परम्
अग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठाः कालकेश्वरमुत्तमम् । नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्य्यतीर्थं तथैवच
पर्वताख्यं महापुण्यं मणिकर्णमनुत्तमम् । घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थञ्च पितामहम्

गङ्गातीर्थन्तु देवेशं तथा तत्तीर्थमुत्तमम् ।
कापिलञ्चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥ ६ ॥

(यत्र लिङ्ग पूजनीयंस्नातु ब्रह्मायदागतः । तदानींस्थापयामासविष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम्

ततः स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम् ।
मयाऽऽनीतमिदं लिङ्गं कस्मात्स्थापितवानसि ॥
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा यतः ।
तस्मात्प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तत्र भविष्यति)॥

भूतेश्वरं तथा तथं तीर्थं धर्मसमुद्भवम् । गन्धर्वतीर्थं सुशुभं वाह्नेयन्तीर्थमुत्तमम् ॥
दौर्वासिकं होमतीर्थंचन्द्रतीर्थंद्विजोत्तमाः । चित्राङ्गदेश्वरं पुण्यंपुण्यंविद्याधरेश्वरम्
केदारं तीर्थ[illegible] शुभम्

लौकिकाख्यंमहातीर्थंतीर्थञ्चैवहिमालयम् । हिरण्यगर्भंगोप्रख्यंतीर्थञ्चैववृषध्वजम्

उपशान्तं शिवञ्चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् । त्रिलोचनंमहातीर्थंलोलार्कञ्चोत्तराह्वयम्
कपालमोचनन्तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम् । शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम् ॥ १५

एवमादीनि तीर्थानि प्राधान्यात्कथितानि तु ।
न शक्या विस्तराद्वक्तुं तीर्थसङ्ख्या द्विजोत्तमाः !॥ १६ ॥

तेषुसर्वेषुतीर्थेषुस्नात्वाऽभ्यर्च्य सनातनम् । उपोष्यतत्रतत्रासौपाराशर्योमहामुनिः
तर्पयित्वा पितॄन्देवान् कृत्वापिण्डप्रदानकम् । जगामपुनरेवापियत्रविश्वेश्वरःशिवः

स्नात्वाऽभ्यर्च्य महालिङ्गं शिष्यैः सह महामुनिः ।
उवाच शिष्यान्धर्मात्मा यथेष्टं गन्तुमर्हथ ॥ १६ ॥

ते प्रणम्यमहात्मानंजग्मुःपैलादयो द्विजाः । वासञ्चतत्रनियतोवाराणस्यांचकारसः

शान्तो दान्तस्त्रिषवणं स्नात्वाऽभ्यर्च्य पिनाकिनम् ।
भैक्षाहारो विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायणः ॥ २१ ॥

कदाचित्तत्र वसताव्यासेनामिततेजसा । भ्रममाणेनभिक्षावै नैवलब्धा द्विजोत्तमाः
ततः क्रोधावृततनुर्नराणामिहवासिनाम् । विघ्नंसृजामिसर्वेषां येन सिद्धिर्हिहीयते
तत्क्षणात्सामहादेवीशङ्करार्द्धशरीरिणी । प्रादुरासीत्स्वयंप्रीत्या वेषंकृत्वातुमानुषम्
भोभोव्यासमहाबुद्धेशप्तव्यानत्वया पुरी । गृहाणभिक्षां मत्तस्त्वमुक्तवैवंप्रददौशिवा
उवाचचमहादेवी क्रोधनस्त्वं यतोमुने !। इह क्षेत्रे न वस्तव्योकृतघ्नोऽसि यतःसदा

एवमुक्तः स भगवान्ध्यानाज्ज्ञात्वा परां शिवाम् ।
उवाच प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा च प्रवरैः स्तवैः ॥ २७ ॥

चतुर्द्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं देहि शाङ्करि !। एवमस्त्वित्यनुज्ञाय देवीचान्तरधीयत ॥

एवं स भगवान्व्यासो महायोगी पुरातनः ।
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्श्वतः ॥ २६ ॥

एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं सेवन्ति पण्डिताः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः ॥ ३० ॥

सूत उवाच

यः पठेदविमुक्तस्य माहात्म्यं शृणुयादथ ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान् स याति परमांगतिम् ॥ ३१ ॥
श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहनि वा द्विजाः । नदीनाञ्चैव तीरेषु देवतायतनेषु च
ज्ञात्वा समाहितमनाः कामक्रोधविवर्जितः । जपेदीशं नमस्कृत्यसयातिपरमांगतिम्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

वाराणसीमाहात्म्यं समाप्तम्

षट्त्रिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्ययथावत्समुदीरितम् । इदानीञ्चप्रयागस्य माहात्म्यंब्रूहिसुव्रत!
यानितीर्थानितत्रैव विश्रुतानिमहान्ति वै । इदानींकथयास्माकंसूत! सर्वार्थविद्भवान्

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयःसर्वे विस्तरेण ब्रवीमिवः । प्रयागस्य च माहात्म्यंयत्र देवः पितामहः
मार्कण्डेयेन कथितं कौन्तेयाय महात्मने । यथा युधिष्ठिरायैतत्तद्वक्ष्ये भवतामहम्
निहत्य कौरवान्सर्वान्भ्रातृभिःसह पार्थिवः । शोकेनमहताविष्टो मुमोहस युधिष्ठिरः
अचिरेणाथ कालेन मार्कण्डेयो महातपाः । सम्प्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे स तिष्ठति
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञे कथितवान्द्रुतम् ।
मार्कण्डेयो द्रष्टुमिच्छंस्त्वामास्ते द्वार्य्यसौ मुनिः ॥ ७ ॥
त्वरितोऽथमुत्रस्तु द्वारमभ्येत्य सत्वरम् । द्वारमभ्यागतस्येह स्वागतन्तेमहामुने!

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम् । अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयितुष्टेसदामुने
सिंहासनमुपस्थाप्यपादशौचार्चनादिभिः । युधिष्ठिरो महात्मेति पूजयामासतंमुनिम्
मार्कण्डेयस्तुसंपृष्टः प्रोवाचसयुधिष्ठिरम् । किमर्थंमुह्यसे चिह्नसर्वंज्ञात्वासमागतः

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत् ।
कथयस्व समासेन येन मुञ्चामि किल्बिषम् ॥ १२ ॥

निहता बहवोयुद्धे पुंसोनिरपराधिनः । अस्माभिःकौरवैः सार्द्धं प्रसङ्गान्मुनिसत्तम
येन हिंसासमुद्भूताज्जन्मान्तरकृतादपि । मुच्येम पातकादद्य तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाभाग ! यन्मांपृच्छसि भारत ! । प्रयागगमनंश्रेष्ठं नराणां पापनाशनम्
तत्र देवोमहादेवो रुद्रोऽवात्सीन्नरेश्वर । समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भूःसहदैवतैः

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम् ।
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानाञ्चैव किम्फलम् ॥ १७ ॥

येवसन्ति प्रयागेतुब्रूहितेषान्तु किम्फलम् । भवतोविदितं ह्येतत्तन्मेब्रूहिनमोऽस्तुते

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामिते वत्स प्रयागस्नानजंफलम् । पुरामहर्षिभिः सम्यक्कथ्यमानंमयाश्रुतम्
एतत्प्रजापतेःक्षेत्रंत्रिषु लोकेषुविश्रुतम् । अत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतास्तेऽपुनर्भवाः
तत्र ब्रह्मादयो देवारक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः । बहून्यन्यानि तीर्थानि सर्वपापापहानितु
कथितुं नेह शक्नोमि बहुवर्षशतैरपि । संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्त्तनम् ॥
षष्टिर्धनुःसहस्राणि तानि रक्षन्ति जाह्नवीम् । यमुनां रक्षति सदासविता सप्तवाहनः
प्रयागे तु विशेषेण स्वयंवसति वासवः । मण्डलं रक्षति हरिःसर्वदेवैश्च सम्मितम्
न्यग्रोधं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः । स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्

स्वकर्म्मणा वृता लोका नैव गच्छन्ति तत्पदम् ।
स्वल्पमल्पतरं पापं यस्य चाऽस्ति नराधिप ॥ २५ ॥

प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायातिसंक्षयम् । दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्त्तनादपि
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरःपापात्प्रमुच्यते । पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र! येषांमध्येतुजाह्नवी
प्रयागंविशतः पुंसःपापंनश्यति तत्क्षणात् । योजनानां सहस्रेषु गङ्गांस्मरतियोनरः
अपि दुष्कृतकर्म्माऽसौ लभते परमां गतिम् ।
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥ ३० ॥
तथोपस्पृश्य राजेन्द्र! सुरलोकेमहीयते । व्याधितोयदि वा दीनः क्रुद्धोवापिभवेन्नरः
पितृणां तारकश्चैव सर्वपापप्रणाशनम् । यैः प्रयोगे कृतो वास उत्तीर्णो भवसागरः
गङ्गायमुनमासाद्य त्यजेत्प्राणान्प्रयत्नतः । ईप्सितांल्लभते कामान्वदन्ति मुनिपुङ्गवाः
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैर्भानुवर्त्तिभिः । सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः ॥ ३४
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणः । गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥
यावन्नस्मरते जन्मतावत्स्वर्गेमहीयते । तस्मात्स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्म्मानरोत्तमः
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले । तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात्तत्र गच्छति
देशे वा यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे ।
प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ३८ ॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुङ्गवाः । सर्वकामफलावृक्षा मही यत्र हिरण्मयी
ऋषयोमुनयःसिद्धास्तत्रलोकेसगच्छति । स्त्रीसहस्राकुलेरम्ये मन्दाकिन्यास्तटेशुभे
मोदतेमुनिभिः सार्द्धं स्वकृतेनेह कर्म्मणा । सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते देवदानवैः
ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बुद्वीपपतिर्भवेत् । ततःशुभानिकर्म्माणि चिन्तयानःपुनःपुनः
गुणवान्वृत्तसम्पन्नो भवतीत्यनुशुश्रुम । कर्म्मणा मनसा वाचा सत्ये धर्म्मे प्रतिष्ठितः
गङ्गायमुनयोर्म्मध्ये यस्तु ग्रासं प्रयच्छति । सुवर्णमथमुक्तां वा तथैवान्यत्परिग्रहम्
स्वकार्य्ये पितृकार्य्ये वा तीर्थे योऽभ्यर्च्चयेन्नरः ।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तत्फलमश्नुते ॥ ४१ ॥
अतस्तीर्थे न गृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च । निमित्तेषु च सर्व्वेषुअप्रमत्तोद्विजोभवेत्

कपिलां पाटलां धेनुं यस्तु कृष्णां प्रयच्छति ।

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुराञ्चैलकर्णीं पयस्विनीम् ॥ ४७ ॥

तस्यायावन्तिलोमानि सन्ति गात्रेषु सत्तम । तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते

इति श्रीकूर्म्मपुराणे प्रयागमाहात्म्ये गोदानमाहात्म्यवर्णनंनाम

षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्येतीर्थयात्राविधिक्रमवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिक्रमम् ।

आर्षेण तु विधानेन यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ १ ॥

प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित् ।

बलीवर्द्दसमारूढः शृणु तस्याऽपि यत्फलम् ॥ २ ॥

नरके वसते घोरे समाः कल्पशतायुतम् । ततो निवर्त्तितोघोरोगवांक्रोधःसुदारुणः सलिलञ्च न गृह्णन्ति पितरस्तस्यदेहिनः । यस्तुपुत्रांस्तथाबालानस्नहीनान्प्रमुञ्चति यथात्मानं तदा सर्व्वं दानं विप्रेषु दापयेत् । ऐश्वर्याल्लोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेनयोनरः निष्फलंतस्यातत्तीर्थंतस्माद्यानंविवर्जयेत् । गङ्गायमुनयोर्मध्येयस्तुकन्यांप्रयच्छति आर्षेण तु विधानेन यथा विभवविस्तरम् । न स पश्यति तं घोरंनरकं तेनकर्म्मणा उत्तरान्सकुरून्गत्वामोदतेकालमव्ययम । वटमूलंसमाश्रित्ययस्तुप्राणान्परित्यजेत् स्वर्गलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति । यत्र ब्रह्मादयो देवादिशश्चसदिगीश्वराः लोकपालाश्च पितरः सर्व्वेतेलोकसंस्थिताः । सनत्कुमारप्रमुखास्तथाब्रह्मर्षयोऽपरे नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च तथानित्यंसमासते । हरिश्चभगवानास्तेप्रजापतिपुरस्कृतः गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् । प्रयागं राजशार्दूलत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् तत्राभिषेकं यः कुर्य्यात्सङ्गमे शंसितव्रतः । तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः

न मातृवचनात्तात! नलोकवचनादपि। मतिरुत्क्रमणीयानेप्रयागगमनंप्रति ॥ १४ ॥
षष्टि तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः। तेषांसान्निध्यमत्रैवतीर्थानांकुरुनन्दन

या गतिर्योगयुक्तस्य सन्यस्तस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ १६ ॥
न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन्यत्र तत्र युधिष्ठिर!।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः ॥ १७ ॥

एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रया 'परमंपदम्। मुच्यतेसर्वपापेभ्यःशशाङ्कइव राहुणा ॥ १८॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे। तत्रस्नात्वाचपीत्वाचमुच्यते सर्व्वपातकैः

तत्र गत्वा नरः स्नानं महादेवस्य श्रीमतः।
समस्तांस्तारयेत् पूर्व्वान्दशातीतान्दशावरान् ॥ २० ॥

कृत्वाभिषेकन्तुनरःसोऽश्वमेधफलंलभेत्। स्वर्गलोकमवाप्नोतियावदाभूतसम्प्लवम्
पूर्व्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रैलोक्ये यातिमानवः। अवटःसर्वसामुद्रःप्रतिष्ठानश्चविश्रुतम्
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति। सर्वपापाविशुद्धात्मासोऽश्वमेधफलंलभेत्
उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यतः। हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्
अश्वमेधफलं तत्र स्मृतमात्रे तु जायते। यावच्चन्द्रश्च सूर्य्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते
उवशीपुलिने रम्ये विपुलेहंसपाण्डुरे। परित्यजतियः प्राणाञ्छृणुतस्यापियत्फलम्
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। आस्ते स पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोकेनराधिप
अथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी समाहितः। नरःशुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्
कोटितीर्थंसमासाद्ययस्तुप्राणान्परित्यजेत्। कोटिवर्षसहस्राणिस्वर्गलोकेमहीयते
यत्र गङ्गा महाभागा वहुतीर्थतपोवना। सिद्धं क्षेत्रंहितज्ज्ञेयंनात्रकार्य्याविचारणा
क्षितौतारयतेमर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः। दिवितारयतेदेवांस्तेनसात्रिपथास्मृता
यावदस्थीनि गङ्गायांतिष्ठन्ति पुरुषस्य तु। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते
तीर्थानां परमं तीर्थं नदीनां परमा नदी। मोक्षदा सर्व्वभूतानां महापातकिनामपि

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गङ्गाद्वारेप्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ॥

सर्व्वेषामेव भूतानांपापोपहतचेतसाम् । गतिमन्वेषमाणानांनास्तिगङ्गासमागतिः
पवित्राणांपवित्रंयन्मङ्गलानाञ्चमङ्गलम् । महेश्वरात्परिभ्रष्टासर्वपापहराशुभा ॥ ३६ ॥
कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करंवरम् । द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौगङ्गाविशिष्यते
गङ्गामेव निषेवन्ते प्रयागेतुविशेषतः । नान्यत्कलियुगेरौद्रेभेषजन्नृप विद्यते ॥ ३८॥
अकामो वा सकामो वागङ्गायांयोविपद्यते । स मृतोजायतेस्वर्गेनरकञ्च न पश्यति

इति श्रीकूर्म्मपुराणे प्रयागमाहात्म्ये गङ्गादानमहत्त्ववर्णनंनाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्येऋणमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमे
गवांशतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्ययत्फलम् । प्रयागेमाघमासेतुत्र्यहंस्नातस्यतत्फलम्
गङ्गायमुनयोर्मध्ये करीषाग्निञ्च साधयेत् । अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु भूमिप । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते
ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टोजम्बूद्वीपपतिर्भवेत् । भुक्त्वासविपुलान्भोगांस्तत्तीर्थंलभतेपुनः
जलप्रवेशं यः कुर्य्यात्सङ्गमेलोकविश्रुते । राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तःसर्वपातकैः
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते । षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥
स्वर्गतः शक्रलोकेऽसौमुनिगन्धर्वसेविते । ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र! समृद्धे जायते कुले
अधःशिरास्तु यो धारामूर्द्धपादः पिबेन्नरः । सप्तवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते

तस्माद् भ्रष्टस्तु राजेन्द्र! अग्निहोत्री भवेन्नरः ।
भुक्त्वाऽथ विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते;पुनः ॥ १० ॥
यः शरीरं विकर्त्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति ॥ ११ ॥

विहङ्गैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम् । शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते

ततस्तस्मात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्म्मिकः ।

गुणवान्रूपसम्पन्नो विद्वांस्तु प्रियवाक्यवान् ॥ १२ ॥

भोगान् भुक्त्वाथदत्त्वा च तत्तीर्थंभजते पुनः । उत्तरेयमुनातीरे प्रयागस्यचदक्षिणे

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थन्तु परमंस्मृतम् । एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणात्तत्रप्रमुच्यते

स्वर्गलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत् ॥ १६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे प्रयागमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामा-

ष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्येगङ्गायमुनयोमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता । समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा

येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुना गता । योजनानांसहस्रेषु कीर्त्तनात्पापनाशिनी

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायत्र निम्नगा ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्यासप्तमंकुलम् ॥ ३ ॥

प्राणांस्त्यजति यस्तत्रसयातिपरमांगतिम् । अग्नितीर्थमितिख्यातंयमुनादक्षिणेतटे

पश्चिमेधर्म्मराजस्यतीर्थंत्वनरकंस्मृतम् । तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतास्तेऽपुनर्भवाः

कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यां स्नात्वा सन्तर्प्य वै शुचिः ।

धर्म्मराजम्महापापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ६ ॥

दशतीर्थसहस्राणि दशकोटयस्तथापराः । प्रयागसंस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिणः

तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।

दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥ ८ ॥

यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम् ।
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरं समाश्रितम् ॥ ९ ॥
यत्र देवो महादेवो माधवेन महेश्वरः । आस्ते देवेश्वरो नित्यं तत्तीर्थं तत्तपोवनम्
इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च ।
सुहृदाञ्च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ॥ ११ ॥
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं शुभम् । इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम्
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम् ।
अत्राधीत्य द्विजोऽध्यायं निर्म्मलत्वमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः । जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठेचमोदते
प्राप्यन्तेतानितीर्थानिसद्भिःशिष्टानुदर्शिभिः । स्नाहितीर्थेषुकौरव्यमाच वक्रमतिर्भव
एवमुक्त्वा स भगवान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।
तीर्थानि कथयामास पृथिव्यां यानि कानिचित् ॥ १६ ॥
भूसमुद्रादिसंस्थानं गृहाणां ज्योतिषां स्थितिम् ।
पृष्टः प्रोवाच सकलमुक्त्वाऽथ प्रययौ मुनिः ॥ १७ ॥

सूत उवाच

य इदं कल्यमुत्थाय शृणोति पठतेऽथवा । मुच्यते सर्वपापैस्तु रुद्रलोकं समच्छति

इति श्रीकूर्म्मपुराणे प्रयागमाहात्म्ये गङ्गायमुनयोर्माहात्म्यवर्णनंनामै-
कोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासप्रकरणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामुनिम् । पप्रच्छुरुत्तरं सूतं पृथिव्यादिविनिर्णयम्

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सर्गः मनुः स्वायम्भुवः शुभः ।
इदानीं श्रोतमिच्छामस्त्रिलोकस्यास्य मण्डलम् ॥ २ ॥

यावन्तः सागरद्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः । वनानि सरितः सूर्यो ग्रहाणां स्थितिरेव च
यदाधारमिदं सर्वं येषां पृथ्वी पुरान्वियम् । नृपाणां तत्समासेन तत्तद्वक्तुमिहार्हसि

सूत उवाच

वक्ष्ये देवाधिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे । नमस्कृत्याप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः प्रागुक्तो यः प्रियव्रतः ।
पुत्रस्तस्याभवन्पुत्राः प्रजापतिसमा दश ॥ ६ ॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा । मेधामेधातिथिर्हव्यः सवनः पुत्र एव च
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां महाबलपराक्रमः । धार्म्मिको दाननिरतः सर्वभूतानुकम्पकः

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दधिरे मतिम् ॥ ६ ॥

प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद्वै सप्तद्वीपेषु सप्त तान् । जम्बुद्वीपेश्वरं पुत्रमाग्नीध्रमकरोन्नृपः
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चैव तेन मेधातिथिः कृतः । शाल्मलीशं वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान्

ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ।
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ॥ १२ ॥

शाकद्वीपेश्वरश्चापि हव्यश्चक्रे प्रियव्रतः । पुष्कराधिपतिश्चक्रे सवनश्च प्रजापतिः

पुष्करेश्वरतश्चापि महीवीतसुतोऽभवत् । धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ
महावीतंस्मृतं वर्षं तस्यस्यात्तुमहात्मनः । नाम्नावैधातकेश्चापिधातकीखण्डमुच्यते
शाकद्वीपेश्वरस्यापि हव्यस्याप्यभवन् सुताः । जलदश्च कुमारश्चसुकुमारोमणीचकः
कुशोत्तरोऽथ मोदाकिः सप्तमः स्यान्महाद्रुमः । जलदं जलदस्याथ वर्षंप्रथममुच्यते
कुमारस्य तु कौमारं तृतीयं सुकुमारकम् । मणीचकश्चतुर्थश्च पञ्चमश्च कुशोत्तरम्
मोदाकं षष्ठमित्युक्तं सप्तमन्तुमहाद्रुमम् । क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापिसुता द्युतिमतोऽभवन्

कुशलः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तुमनोहरः ।
उष्णस्तृतीयः सम्प्रोक्तश्चतुर्थः पीवरः स्मृतः ॥ २० ॥

अन्धकारोमुनिश्चैवदुन्दुभिश्चैवसप्त वै । तेषांस्वनामभिर्देशाःक्रौञ्चद्वीपाश्रयाःशुभाः
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैवासन्महौजसः । उद्भिदोवेणुमांश्चैवाश्वरथोलम्बनोधृतिः
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः । स्वनामचिह्नतश्चात्रतथावर्षाणिसुव्रताः
ज्ञेयानिच तथान्येषु द्वीपेष्वेवत्रयो मतः । शाल्मलिद्वीपनाथस्यसुताश्चासन्वपुष्मतः
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा । वैद्युतो मानसश्चैवसप्तमः सुप्रभो मतः

प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्तमेधातिथेः सुताः ।
ज्येष्ठः शान्तमयस्तेषां शिशिरस्तु सुखोदयः ॥ २६ ॥

आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्चध्रुवस्तथा । प्लक्षद्वीपादिके ज्ञेयाःशाकद्वीपान्तिकेषु च
वर्णानाञ्च विभागेन स्वधर्म्मोमुक्तयेमतः । जम्बुद्वीपेश्वरस्यापिपुत्राश्चासन्महाबलाः
आग्नीध्रस्यद्विजश्रेष्ठास्तन्नामानिनिबोधत । नाभिःकिम्पुरुषश्चैवतथाहरिरिलावृतः
रम्यो हिरण्वांश्च कुरुर्भद्राश्वः केतुमालकः । जम्बुद्वीपेश्वरोराजासचाग्नीध्रोमहामतिः
विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्यायं ददौ पुनः । नाभेस्तुदक्षिणंवर्षंहिमाह्वंप्रददौपिता
हेमकूटं ततो वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः । तृतीयं नैषधं वर्षं हरये दत्तवान् पिता
इलावृताय प्रददौ मेरुमध्यमिलावृतम् । नीलाद्रेराश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता
श्वेतं यदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते । यदुत्तरं शृङ्गवनावर्षंतत्कुरवे ददौ ॥ ३४॥
मेरोः पूर्वेण यद्वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत् । गन्धमादनवर्षंतु केतुमालाय दत्तवान्

वर्षेष्वेतेषु तान्पुत्रानभ्यषिञ्चन्नराधिपः। संसारासारतां ज्ञात्वा तपस्तप्तु वनंगतः
हिमाह्वयन्तु यद्वर्षे नाभेरासीन्महात्मनः। तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः
ऋषभाद्भरतोजज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः। सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा तपस्तेपेयथाविधि। तपसाकर्षितोऽत्यर्थंकृशोऽयमनिशं ततः
ज्ञानयोगरतो भूत्वा महापाशुपतोऽभवत्। सुमतिर्भरतस्तापि पुत्रः परमधार्म्मिकः
सुमतेस्तैजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नोमहाद्युतिः। परमेष्ठीसुतस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः

प्रतिहर्त्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः।
भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्ताविस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४२॥
पृथुस्ततस्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः।
नरो गयस्य तनयस्तस्य भूयो विराडभूत्॥ ४३॥
तस्य पुत्रो महावीर्य्यो धीमांस्तस्मादजायत।
धीमतोऽपि ततश्चाऽभूद्भौवणस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४४॥

त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्मादभूत्सुतः। शतजिद्रथजित्तस्यजज्ञेपुत्रशतंद्विजाः
तेषांप्रधानोवलवान्विश्वज्योतिरितिस्मृतः। आराध्यदेवंब्रह्माणंक्षेमकंनामपार्थिवम्
असूत पुत्रं धर्म्मज्ञं महावाहुमरिन्दमम्। एते पुरस्ताद्राजानो महासत्वा महौजसः

एषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं पृथिवी पुरा॥ ४८॥

इति श्रीकूर्म्मपुराणे भुवनविन्यास वर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

———

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ज्योतिःसन्निवेशवर्णनम्

सूत उवाच

अतःपरंप्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणद्विजोत्तमाः । त्रैलोक्यस्यास्यमानंवोनशक्यंविस्तरेण तु

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वलोकोऽथ महस्तथा ।

जनस्तपश्च सत्यश्च लोकास्त्वण्डोद्भवास्तथा ॥ २ ॥

सूर्य्याचन्द्रमसौयावत्किरणैरवभासतः ।

तावद् भूर्लोक आख्यातः पुराणे द्विजपुङ्गवाः ॥ ३ ॥

यावत्प्रमाणो भूर्लोको विस्तरात्परिमण्डलात् ।

भुवर्लोकोऽपि तावत्स्यान्मण्डलाद्भास्करस्य तु ॥ ४ ॥

ऊर्द्ध्वं यन्मण्डलं व्योम्नि ध्रुवो यावद्व्यवस्थितः ।

स्वर्गलोकःसमाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः ॥ ५ ॥

आवहः प्रवहश्चैव तत्रैवानुवहः पुनः । सम्वहो विवहश्चैव तदूर्द्ध्वं स्यात्परावहः ॥

तथा परिवहश्चैव वायोर्वै सप्त नेमयः । भूमेर्योजनलक्षे तु भानोर्वै मण्डलंस्थितम्

लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।

नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते ॥ ८ ॥

द्विलक्षे ह्यन्तरेविप्राबुधोनक्षत्रमण्डलात् । तावत्प्रमाणभागेतुबुधस्याप्युशनास्थितः

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।

लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ १० ॥

सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर्ग्रहाणामथमण्डलात् । सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमात्रे प्रकाशते

ऋषीणाम्मण्डलादूर्द्ध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रुवः ।

तत्र धर्मः स भगवान्विष्णुर्नारायणः स्थितः ॥ १२ ॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ॥ १३ ॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वा तानुपसर्पति ॥ १४ ॥
उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्म्मितो मण्डलाकृतिः ।
स्वर्भानोस्तु वृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम् ॥ १५ ॥

चन्द्रस्यषोडशोभागो भार्गवस्यविधीयते । भार्गवात्पादहीनस्तुविज्ञेयोवैवृहस्पतिः
वृहस्पतेःपादहीनौभौमसौरावुभौस्मृतौ । विस्तारान्मण्डलाच्चैवपादहीनस्तयोर्बुधः
तारानक्षत्ररूपाणिवपुष्मन्तीहयानि वै । बुधेनतानितुल्यानि विस्तारान्मण्डलात्तथा
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानितुपरस्परम् । शतानि पञ्चचत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने
पूर्वापरानुकृष्टानि तारकामण्डलानितु । योजनाद्यर्द्धमात्राणि तेभ्योह्रस्वं न विद्यते
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहावै दूरसर्पिणः । सौरोऽङ्गिराश्चवक्रश्च ज्ञेयो मन्दविचारणः
तेभ्योऽधस्ताच्चचत्वारःपुनरन्येमहाग्रहाः । सूर्यःसोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः
दक्षिणायनमार्गस्थोयदाचरतिरश्मिमान् । तदापूर्वग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति

विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योद्र्ध्वं चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूद्र्ध्वं प्रसर्पति ॥ २४ ॥
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोद्र्ध्वं बुधादूद्र्ध्वं तु भार्गवः ।
वक्र (शनि) स्तु भार्गवादूद्र्ध्वं वक्रादूद्र्ध्वं वृहस्पतिः ॥ २५ ॥
तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूद्र्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋर्षीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुवश्चोद्र्ध्वं व्यवस्थितः ॥ २६ ॥

योजनानांसहस्राणि भास्करस्यरथोनव । ईषादण्डस्तथातस्यद्विगुणोद्विजसत्तमाः

सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु ।
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥ २८ ॥

त्रिनाभिसप्त पञ्चारं षण्णेमिन्यक्षयात्मके । संवत्सरमयं कृत्स्नंकालचक्रंप्रतिष्ठितम्

चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षो व्यवस्थितः ।
पञ्चाशयानि (पञ्चान्यानितु) सार्द्धानि योजनानि (स्यन्दनस्य) द्विजोत्तमाः ॥ ३०
अ(ल)क्षप्रमाणमुभयोःप्रमाणं तद्युगार्द्धयोः । ह्रस्वोक्षस्तद्युगार्द्धेनध्रुवाधारोरथस्यतु
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रंसंस्थितंमानसाचले । हयाश्चसप्तच्छन्दांसितन्नामानिनिबोधत
गायत्री च वृहत्युष्णिक् जगती पङ्क्तिरेव च ।
अनुष्टुब् त्रिष्टुबप्युक्ता छन्दांसि हरयो हरेः ॥ ३३ ॥
मानसोपरिमाहेन्द्रीप्राच्यांदिशिमहापुरी । दक्षिणायां यमस्याथ वरुणस्यतु पश्चिमे
उत्तरेषु च सोमस्य तन्नामानि निबोधत । अमरावतीसंयमनीसुखा चैव विभावरी
काष्ठागतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति । ज्योतिषां चक्रमादायदेवदेवः पितामहः
दिवसस्यरविर्मध्येसर्वकालंव्यवस्थितः । सप्तद्वीपेषु विप्रेन्द्रा निशार्द्धस्यचसम्मुखः
उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु सन्मुखे । दिशास्वशेषासु तथा विप्रेन्द्राविदिशासुच
कुलालचक्रपर्यन्तं भ्रमत्येष यथेश्वरः । करोत्येष यया रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनीं द्विजाः
दिवाकरकरैरेतत्पूरितं भुवनत्रयम् । त्रैलोक्यं कथितं सद्भिर्लोकानां मुनिपुङ्गवाः
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राणां दिवौकसाम् ।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नमजयत्सार्वलौकिकम् ॥ ४२ ॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः । सूर्य एष तु लोकस्य मूलं परमदैवतम्
द्वादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः ।
निर्वहन्ति वदन्त्यस्य तदंशा विष्णुमूर्त्तयः ॥ ४४ ॥
सर्वे नमस्यन्ति सहस्रबाहुं गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराद्याः ।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्मुनीन्द्राः छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे ज्योतिषां सन्निवेशवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यव्यूहवर्णनम्

सूत उवाच

सरथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणः शक्र एव च। विवस्वानथपूषा च पर्ज्जन्यश्चांशुरेवच
भगस्त्वष्टाचविष्णुश्चद्वादशैते दिवाकराः। आप्याययतिवैभानुर्वसन्तादिषुवै क्रमात्
पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः। भरद्वाजो गौतमश्च कश्यपः क्रतुरेव च
जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः।
स्तुवन्ति देवं विविधैश्छन्दोभिस्ते यथाक्रमम् ॥ ५ ॥
रथकृच्च रथौजाश्च रथचित्रः सुबाहुकः। रथस्वनोऽथ वरुणः सुषेणः सेनजित्तथा
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्चकृतजित् सत्यजित्तथा। ग्रामण्योदेवदेवस्य कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्
अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा। सर्पा व्याघ्रस्तथापश्चवातोविद्युद्दिवाकरः
ब्रह्मोपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च। राक्षसप्रवरा ह्येते प्रयान्ति पुरतः क्रमात् ॥
वासुकिः कङ्कनीलश्च तक्षकः सर्वपुङ्गवः। एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः
धनञ्जयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजाः। कम्बलोश्वतरश्चैव वहन्त्येनं यथाक्रमम्
तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूर्विश्वावसुस्तथा। उग्रसेनोऽथ सुरुचिरर्वावसुस्तथापरः ॥
चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः। सूर्य्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वागायनावराः
गायन्ति गानैर्विविधैर्भानुं षड्जादिभिः क्रमात्।
ऋतुस्थलाप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला ॥ १४ ॥
मेनकासहजन्याचप्रम्लोचाचद्विजोत्तमाः। अनुम्लोचाचविश्वाचीघृतचीचोर्वशीतथा
अन्या च पूर्वचित्तिः स्याद्रम्भा चैव तिलोत्तमा।
ताण्डवैर्विविधैरेनं वसन्तादिषु वै क्रमात् ॥ १६ ॥

तोषयन्ति महादेवं भानुमात्मानमव्ययम् । एवंदेवा वसन्त्यर्के द्वौद्वौ मासौक्रमेणतु
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेजसां निधिम् ।
ग्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ॥ १८ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैनं नृत्यगेयैरुपासते । ग्रामणीयक्षभूतानिकुर्वतेऽभीशुसंग्रहम् ॥ १९
सर्पावहन्तिदेवेशंयातुधानाःप्रयान्तिच । वालखिल्यानयन्त्यस्तंपरिवार्य्योदयाद्रविम्
एतेतपन्तिवर्षन्तिभान्तिवान्तिसृजन्तितु । भूतानामशुभंकर्म्मव्यपोहन्तीतिकीर्त्तिताः
एतेसहैवसूर्य्येण भ्रमन्ति दिवि भानुगाः । विमानेचस्थिता नित्यंकामगेवातरंहसि
वर्षन्तश्च तपन्तश्चह्लादयन्तश्च वै क्रमात् । गोपायन्तीहभूतानि सर्वाणीह युगक्रमात्
एतेषामेव देवानां यथावीर्य्यंयथातपः । यथायोगं यथासत्वं स एष तपति प्रभुः ॥
अहोरात्रव्यवस्थानकारणं स प्रजापतिः । पितृदेवमनुष्यादीन्स सदाप्याययद्रविः
तत्र देवो महादेवो भास्वान्साक्षान्महेश्वरः । भासते वेदविदुषां नीलग्रीवःसनातनः
स एष देवो भगवान्परमेष्ठी प्रजापतिः । स्थानं तद्विदुरादित्ये वेदज्ञा वेदविग्रहाः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे आदित्यव्यूहवर्णनंनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

———

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनेग्रहरथवर्णनम्

सूत उवाच

एवमेष महादेवो देवदेवः पितामहः । करोति नियत कालं कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः
तस्य ये रश्मयो विप्राः सर्वलोकप्रदीपकाः । तेषां श्रेष्ठाःपुनः सप्तरश्मयो गृहमेधिनः
सुषुम्लो हरिकेशश्च विश्वकर्म्मा तथैव च । विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः
अर्वावसुरिति ख्यातःस्वरकः सप्त कीर्त्तिताः ।

सुषुम्लः सूर्य्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम् ॥ ४ ॥

तिर्य्यगूर्द्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्णः परिपठ्यते । हरिकेशस्तु यःप्रोक्तोरश्मिर्नक्षत्रपोषकः

विश्वकर्म्मा तथा रश्मिर्बुधं पुष्णाति सर्वदा ।

विश्वश्रवास्तु यो रश्मिः शुक्रं पुष्णाति नित्यदा ॥ ६ ॥

संयद्वसुरिति ख्यातो यः पुष्णाति स लोहितम् ।

बृहस्पतिं सुपुष्णाति रश्मिरर्वावसुः प्रभुः ॥ ७ ॥

शनैश्चरं प्रपुष्णाति सप्तमस्तु स्वरस्तथा । एवंसूर्य्यप्रभावेण सर्वा नक्षत्रतारकाः ॥

वर्द्धन्ते वर्द्धिता नित्यं नित्यमाप्याययन्ति च ।

दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव नित्यशः ॥ ६ ॥

आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसामपि । आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेणसमन्ततः

नादेयं चैव सामुद्रं कौप्यं चैव सहस्रदृक् । स्थावरंजङ्गमञ्चैव यच्च कुल्यादिकंपयः

तस्यरश्मिसहस्रन्तु शीतवर्षोष्णनिस्रवम् । तासाञ्चतुःशतानाड्योवर्षन्तेचित्रमूर्त्तयः

चन्द्रगाश्चैव गाहाश्चकाञ्चनाः शातनास्तथा । अमृता नामतःसर्वा रश्मयोवृष्टिसर्जनाः

हिमोद्वताश्च ता नाड्यो रश्मयो निःसृताः पुनः ।

रेष्यो मेष्यश्च वास्यश्च ह्लादिन्यः सर्जनास्तथा ॥ १४ ॥

चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीतास्ताः स्युर्गभस्तयः ।

शुक्लाश्च कुङ्कुमाश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥ १५ ॥

शुक्लास्तानामतः सर्वास्त्रिविधाघर्म्मसर्जनाः । समंविभर्त्तिताभिःसमनुष्यपितृदेवताः

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि । अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रींस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ

वसन्तेग्रीष्मके चैव षड्भिः स तपति प्रभुः । शरद्यपि च वर्षास्तु चतुर्भिःसंप्रवर्षति

हेमन्तेशिशिरे चैव हिममुत्सृजतित्रिभिः । वरुणोमाघमासे तु सूर्य्यः पूषातुफाल्गुने

चैत्रे मासे स देवेशोधाता वैशाखतापनः । ज्येष्ठेमासे भवेदिन्द्रः आषाढेतपते रविः

विवस्वान् श्रावणे मासि प्रौष्ठपद्याम्भगः स्मृतः ।

पर्जन्यश्चाश्विने मासि कार्त्तिके मासि [illegible] ॥ २१ ॥

मार्गशीर्षेभवेन्मित्रः पौषेविष्णुःसनातनः । पञ्चरश्मिसहस्राणिवरुणस्यार्ककर्मणि

षड्भिःसहस्रैः पूषा तु देवेशःसप्तभिस्तथा। धाताष्टभिः सहस्रैस्तुनवभिश्चशतक्रतुः

विवस्वान्दशभिः पाति पात्येकादशभिर्भगः।

सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाऽष्टभिस्तपेत् ॥ २४॥

अर्य्यमा दशभिः पाति पर्जन्यो नवभिस्तथा।

षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति विश्वधृक् ॥ २५ ॥

वसन्तेकपिलः सूर्य्यो ग्रीष्मेकाञ्चनसप्रभः। श्वेतो वर्षासु विज्ञेयःपाण्डुरःशरदिप्रभुः

हेमन्ते ताम्रवर्णः स्याच्छिशिरे लोहितो रविः।

ओषधीषु कलांधत्ते स्वधामपि पितृष्वथ ॥ २७ ॥

सूर्योऽमरेष्वमृतन्तुत्रयंत्रिषुनियच्छति। अन्येचाष्टौग्रहाज्ञेयाः सूर्येणाधिष्ठिताद्विजाः

चन्द्रमाः सोमपुत्रश्चशुक्रश्चैव बृहस्पतिः। भौमो मन्दस्तथा राहुः केतुमानपिचाष्टमः

सर्वेध्रुवेनिबद्धा वै ग्रहास्तेवातरश्मिभिः। भ्राम्यमाणायथायोगं भ्रमन्त्यनुदिवाकरम्

अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितास्तथा। यस्माद्वहति तान्वायुः प्रवहस्तेनसस्मृतः

रथस्त्रिचक्रःसोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः। वामदक्षिणतो युक्तादशतेनक्षपाकरः

वीथ्याश्रयाणिचरति नक्षत्राणिरविर्यथा। ह्रासवृद्धीतुविप्रेन्द्रा ध्रुवाधाराणिसर्वदा

ससोमः शुक्लपक्षे तु भास्करे परतःस्थिते। आपूर्य्यते परस्यान्ते सततञ्चैवताःप्रभाः

क्षीणम्पीतं सुरैः सोममाप्याययति नित्यदा।

एकेन रश्मिना विप्राः सुषुम्नाख्येन भास्करः ॥ ३५ ॥

एषा सूर्य्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनुः।

पौर्णमास्यां स दृश्येत सम्पूर्णो दिवसक्रमात् ॥ ३६ ॥

सम्पूर्णमर्द्धमासेन तं सोममसृतात्मकम्। पिबन्तिदेवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजनाः

ततःपञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके। अपराह्ने पितृगणा जघन्यं पर्य्युपासते

पिबन्ति द्विलवं (विकलं) कालं शिष्टा तस्य कला तु या।

सुधामृतमयीं पुण्यां तामिन्दोरमृतात्मिकाम् ॥ ३८ ॥

निःसृतं तदमावास्या गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्।

मासतृप्तिमवाश्यन्ति (मवाप्यास्याम्) पितरः सन्ति निर्वृताः ॥ ४० ॥
न सोमस्य विनाशः स्यात्सुधा चैव सुपीयते ।
एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः ॥ ४१ ॥
सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर्वाजिभिर्वायुवेगिभिः ।
वारिजैः स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वतः ॥ ४२ ॥
शुक्रस्य भूमिजैरश्वैः स्यदनोदशभिर्वृतः । अष्टाभिश्चापिभौमस्य रथोहैमःसुशोभनः
वृहस्पतेरथोऽष्टाश्वःस्यन्दनोहेमनिर्मितः । रथोरूप्यमयोऽष्टाश्वोमन्दस्यायसनिर्मितः
स्वर्भानोर्भास्कराररेश्च तथाष्टाभिर्हयैर्वृतः । एतेमहाग्रहाणा वै समाख्याता रथाश्चवै
सर्वे ध्रुवे महाभागानिवद्धा वायुरश्मिभिः । ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे वद्धान्यशेषतः
भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येनं सर्वाण्यनिलरश्मिभिः ॥ ४६ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणेभुवनकोशे ग्रहरथवर्णनंनाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यास ऊर्द्ध्वाधोलोकानाम्वर्णनम्

सूत उवाच

ध्रुवादूर्द्धंमहर्लोकःकोटियोजनविस्तृतः । कल्पाधिकारिणस्तत्रसंस्थिताद्विजपुङ्गवाः
जनलोकोमहर्लोकात्तथाकोटिद्वयात्मकः । शनकाद्यास्तथातत्रसंस्थिताब्रह्मणःसुताः
जनलोकात्तपोलोकःकोटित्रयसमन्वितः । वैराजास्तत्रवैदेवाःस्थिता दाहविवर्जिताः
प्राजापत्यात्सत्यलोकःकोटिषट्केनसंयुतः । अपुनर्मारकोनाम ब्रह्मलोकस्तुसस्मृतः
अत्र लोकगुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः ।
आस्ते स योगिभिर्नित्यं पीत्वा योगामृतं परम् ॥ ५ ॥
वसन्तियतयःशान्तानैष्ठिकाब्रह्मचारिणः । योगिनस्तापसाःसिद्धाजापकाःपरमेष्ठिनः

द्वारं तद्योगिनामेकं गच्छतां परमंपदम् । तत्र गत्वा न शोचन्तिसविष्णुःसचशङ्करः
सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरंतस्यदुरासदम । न मे वर्णयितुंशक्यं ज्वालामालासमाकुलम्
तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे । शेते तत्र हरिः श्रीमान्योगी मायामयः परः
सविष्णुलोकःकथितः पुनरावृत्तिवर्जितः । यान्ति तत्र महात्मानो येप्रपन्नाजनार्द्दनम्
ऊर्द्ध्वं तद्ब्रह्मसदनात्पुरं ज्योतिर्मयं शुभम् । वह्निनाच परिक्षिप्तंतत्रास्तेभगवान्हरः
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः । योगिभिः शतसाहस्रैर्भूतैरुद्रैश्चसंवृतः
तत्र तेयान्तिनिरताभक्तावैब्रह्मचारिणः । महादेवपराः शान्तास्तापसाः सत्यवादिनः

निर्ममा निरहङ्कारा कामक्रोधविवर्जिताः ।
द्रक्ष्यन्ति ब्राह्मणा युक्ता रुद्रलोकः स वै स्मृतः ॥ १४ ॥
एते सप्त महालोकाः पृथिव्याः परिकीर्त्तिताः ।
महातलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः ॥ १५ ॥

महातलञ्च पातालं सर्वरत्नोपशोभितम् । प्रासादैर्विविधैःशुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम् ॥१६
अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता । नृपेण बलिना चैव पातालं स्वर्गवासिना
शैलं रसातलं विप्राः शार्करं हि तलातलम् । पीतं सुतलमित्युक्तं वितलंविद्रुमप्रभम्

सितं च वितलं प्रोक्तं तलञ्चैव सितेतरम् ।
सुवर्णेन सुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम् ॥ १६ ॥

रसातलमितिख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम् । विरोचनहिरण्याक्षतारकाद्यैश्चसेवितम्
तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम् । वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः
पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलञ्च तथा परैः । वितलं यवनाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा ॥
जम्भकाद्यैस्तथानागैः प्रह्लादेनासुरेणच । वितलश्चैवविख्यातं कम्बलाहीन्द्रसेवितम्
महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता । शङ्कुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः ॥
तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलञ्चैवसुशोभनम् । तेषामधस्तान्नरकाःकूर्माद्याःपरिकीर्त्तिताः

पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयितुं क्षमाः ।
पातालानामधश्चास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः ॥ २६ ॥

कालाग्निरुद्रोयोगात्मानारसिंहोऽपिमाधवः। योऽनन्तःपठ्यतेदेवो नागरूपीजनार्द्दनः
तदाधारमिदं सर्वं स कालाग्नि समाश्रितः॥ २७॥
तमाविश्यमहायोगीकालस्तद्वदनोषितः। विषज्वालामयश्चेशो जगत्संहरतिस्वयम्
सहस्रमारिप्रतिमः संहर्ता शङ्करोभवः। तामसी शाम्भवीमूर्त्तिःकालोलोकप्रकालनः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे भुवनविन्यासे ऊद्ध्र्वाधोलोकानाम्वर्णनंनाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशेपर्वतादिसंख्यावर्णनम्

सूत उवाच

एतद् ब्रह्माण्डमाख्यातश्चतुर्द्दशविधम्महत्।
अतःपरम्प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्यनिर्णयम्॥ १॥
जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयंप्लक्षः शाल्मलिरेवच। कुशःक्रौञ्चश्चशाकश्च पुष्करश्चैवसत्तमः
एते सप्त महाद्वीपाःसमुद्रैः सप्तभिर्वृताः। द्वीपाद्द्वीपोमहानुक्तःसागराच्चापिसागरः
क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः। दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता।
द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समन्ततः॥ ५॥
जम्बूद्वीपःसमस्तानां मध्ये चैव व्यवस्थितः। तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतःकनकप्रभः
चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥ ७॥
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः॥ ८॥

हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः

लक्षप्रमाणौद्वौ मध्येदशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्चते
भारतम्प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यंमेरोर्द्दक्षिणतो द्विजाः
रम्यकञ्चोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् । उत्तरे कुरवश्चैव यथेते भारतास्तथा ॥
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः । इलावृतञ्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ॥
मेरोश्चतुर्द्दशंतत्र नवसाहस्रविस्तरम् । इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वताः ॥ १४

विष्कम्भा रचिता मेरोर्याजनायुतमुच्छ्रिताः ।
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥ १५ ॥

विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरःस्मृतः । कदम्बस्तेषु जम्बूश्चपिप्पलोवटएवच
जम्बूद्वीपस्यसा जम्बूर्नामहेतुर्महर्षयः । महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याःफलानि च
पतन्तिभूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानिसर्वतः । रसेन तस्याः प्रख्याता तत्र जम्बूनदीगिरौ
सरित्प्रवर्त्तते चापि पीयतेतत्रवासिभिः । न स्वेदो नच दौर्गन्ध्यन्नजरानेन्द्रियक्षयः
नतापःस्वच्छमनसान्नासौख्यंतत्रजायते । तत्तीरमृद्रसम्प्राप्य वायुनासुविशोषितम्
जाम्बूनदाख्यम्भवतिसुवर्णं सिद्धभूषणम् । भद्राश्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालश्चपश्चिमे
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम् । वनञ्चैत्ररथम्पूर्वं दक्षिणंगन्धमादनम् ॥
वैभ्राजम्पश्चिमं विद्यादुत्तरं सवितुर्वनम् । अरुणोदम्महाभद्रमसितोदञ्च मानसम्

सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानिसर्वदा ।
सितान्तश्च कुमुद्वांश्च कुररी माल्यवांस्तथा ॥ २४ ॥

वैकङ्को मणिशैलश्चवृक्षवांश्चाचलोत्तमः । महानीलोऽथरुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा
वेणुमांश्चैव मेघश्च निषधो देवपर्वतः । इत्येते देवरचिताः सिद्धावासाः प्रकीर्त्तिताः
अरुणोदस्य सरसः पूर्वतः केसराचलः । त्रिकूटः सशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा

निषधो वसुधारश्च कलिङ्गस्त्रिशिखः स्मृतः ।
समूलो वसुवेदिश्च कुरुश्चैव सानुमान् ॥ २८ ॥

ताम्रातश्च विशालश्च कुमुदो वेणुपर्वतः । एकशृङ्गो महाशैलो गजशैलश्च पिञ्जकः
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः । इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः

महाभद्रस्य सरसो दक्षिणे केसराचलः। शिखिवासाश्च वैदूर्य्यःकपिलोगन्धमादनः
जारुधिश्च सुराम्बुश्च सर्व्वगन्धाचलोत्तमः। सुपार्श्वश्च सुपक्षश्चकङ्कःकपिल एव च
विरजो भद्रजालश्च सुसकश्च महाबलः। अञ्जनो मधुमांस्तद्वच्चित्रश्रृङ्गो महालयः
कुमुदो मुकुटश्चैव पाण्डुरः कृष्ण एव च। पारिजातो महाशैलस्तथैव कपिलाचलः
सुषेणःपुण्डरीकश्च महामेघस्तथैव च। एते पर्व्वतराजाश्च सिद्धगन्धर्व्वसेविताः
असितोदस्य सरसः पश्चिमे केसराचलः। शङ्खकूटोऽथ वृषभोहंसो नागस्तथैव च
कालाञ्जनः शुक्रशैलो नीलः कमल एव च। पारिजातो महाशैलः शैलः कनकएवच
पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा। मयूरः कपिलश्चैव महाकपिल एव च
इत्येते देवगन्धर्व्वसिद्धयक्षैश्चसेविताः। सरसोमानसस्येहउत्तरेकेशवाचलः॥ ३६॥
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषुयथाक्रमम्। सन्तिचैवान्तरद्रोण्यःसरांसि च वनानिच
वसन्ति तत्र मुनयःसिद्धाश्चैब्रह्मभाविताः। प्रसन्नाःशान्तरजसःसर्व्वदुःखविवर्ज्जिताः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणेभुवनकोशेपर्व्वतादिसंख्यावर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासेलोकपालानांस्थानवर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्दशसहस्त्राणि योजनानाम्महापुरी। मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः

तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः।
उपास्यमानो योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशङ्करैः॥ २॥

तत्र देवेश्वरेशानं विश्वात्मानम्प्रजापतिम्। सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि
ससिद्धऋषिगन्धर्व्वैःपूज्यमानःसुरैरपि। समास्तेयोगयुक्तात्मापीत्वातत्परमामृतम्
तत्र देवाधिदेवस्य शम्भोरमिततेजसः। दीप्तमायतनं शुभ्रम्पुरस्ताद्ब्रह्मणः स्थितम्

दिव्यकान्तिसमायुक्तश्चतुर्द्वारं सुशोभनम्। महर्षिगणसंकीर्णं ब्रह्मविद्भिर्निषेवितम्
देव्या सह महादेवः शशाङ्कार्काग्निलोचनः। रमते तत्र विश्वेशः प्रमथैः प्रमथेश्वरः
तत्र वेदविदःशान्ता मुनयो ब्रह्मचारिणः। पूजयन्ति महादेवं तपसा सत्यवादिनः
तेषांसाक्षान्महादेवोमुनीनांभावितात्मनाम्। गृह्णातिपूजांशिरसापार्व्वत्यापरमेश्वरः
तत्रैव पर्व्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी। नाम्नाऽमरावती पूर्व्वे सर्व्वशोभासमन्विता
तत्र चाप्सरसः सर्व्वा गन्धर्वाःसिद्धचारणाः। उपासतेसहस्राक्षं देवास्तत्रसहस्रशः
ये धार्म्मिका वेदविदो यागहोमपरायणाः। तेषांतत्परमं स्थानंदेवानामपिदुर्ल्लभम्
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वह्नेरमिततेजसः। तेजोवती नामपुरीदिव्याश्चर्य्यसमन्विता
तत्रास्तेभगवान्वह्निर्भ्राजमानःस्वतेजसा। जपिनांहोमिनांस्थानंदानवानांदुरासदम्
दक्षिणे पर्व्वतवरेयमस्यापि महापुरी। नाम्नासंयमनी दिव्यासर्व्वशोभासमन्विता
तत्रवैवस्वतंदेवंदेवाद्याःपर्य्युपासते। स्थानंतत्सत्यसन्धानांलोकेपुण्यकृतांनृणाम्

तस्यास्तु पश्चिमे भागे निर्ऋतेस्तु महात्मनः।
रक्षोवती नाम पुरी राक्षसैः संवृता तु या॥ १७॥

तत्र ते नैर्ऋतं देवं राक्षसाः पर्य्युपासते। गच्छन्ति तांधर्म्मरताये तु तामसवृत्तयः
पश्चिमेपर्व्वतवरेवरुणस्यमहापुरी। नाम्नाशुद्धवतीपुण्यासर्व्वकामर्द्धिसंयुता॥ १६॥

तत्राऽप्सरोगणैः सिद्धैः सेव्यमानोऽमराधिपैः।
आस्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति येऽम्बुदाः॥ २०॥

तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरपि महापुरी। नाम्नागन्धवतीपुण्यातत्रास्तेऽसौप्रभञ्जनः

अप्सरोगणगन्धर्व्वैः सेव्यमानो महान्प्रभुः।
प्राणायामपरा विप्राः स्थानं तद्यान्ति शाश्वतम्॥ २२॥
तस्याः पूर्व्वे तु दिग्भागे सोमस्य परमापुरी।
नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तस्यां सोमो विराजते॥ २३॥

तत्र ये धर्म्मनिरताःस्वधर्म्मंपर्य्युपासते। तेषांतदुचितंस्थानंनानाभोगसमन्वितम्
तस्यास्तु पूर्व्वदिग्भागेशङ्करस्यमहापुरी। नाम्नायशोवतीपुण्यासर्व्वैषांसादुरासदा

तत्रेशानस्य भवनं रुद्रेणाधिष्ठितं शुभम् । गणेश्वरस्य विपुलं तत्रास्ते सगणावृतः
तत्र भोगादिलिप्सूनां भक्तानां परमेष्ठिनः। निवासः कल्पितः पूर्व्वं देवदेवेनशूलिना

विष्णुपादाद्विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम् ।
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्य्यां गङ्गा पतति वै ततः ॥ २८ ॥

सा तत्र पतिता दिक्षुचतुर्द्धाह्यभवद्द्विजाः । सीताचालकनन्दाचसुचक्षुर्भद्रनामिका
पूर्व्वेण शैलच्छैलन्तु सीतायात्यन्तरिक्षगा । ततश्चपूर्व्ववर्षेणभद्राश्वाद्यातिचार्णवम्
तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम् । प्रयाति सागरंभित्वासप्तभेदाद्द्विजोत्तमाः
सुचक्षुः पश्चिमगिरीनतात्यसकलांस्तथा । पश्चिमंकेतुमालाख्यं वर्षंगत्वेतिचार्णवम्
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्चतथा कुरून् । अतीत्य चोत्तराम्भोधिं समभ्येतिमहर्षयः
आनीलनिषधायामौमाल्यवद्गन्धमादनौ । तयोर्मध्यंगतोमेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः
भारताः केतुमालाश्चभद्राश्वाःकुरवस्तथा । पत्राणिलोकपद्मस्यमर्य्यादाशैलवाह्यतः
जठरो देवकूटश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ । दक्षिणोत्तरमायातावानीलनिषधायतौ
गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चायतावुभौ । अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ
निषधःपारियात्रश्चमर्य्यादापर्व्वताविमौ । मेरोःपश्चिमदिग्भागेयथापूर्व्वंव्यवस्थितौ
त्रिशृङ्गो जारुधिस्तद्वदुत्तरेवर्षपर्व्वतौ । तावदायामविस्तारावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ
मर्य्यादापर्व्वताःप्रोक्ताअष्टाविहमयाद्द्विजाः । जठराद्याःस्थितामेरोश्चतुर्दिक्षुमहर्षयः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे भुवनविन्यासे लोकपालानांस्थानवर्णनंनाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशे केतुमालादिवर्षाणाम्वर्णनम्

सूत उवाच

केतुमालेनराःकाकाःसर्व्वेपनसभोजनाः । स्त्रियश्चोत्पलपत्राभास्तेजीवन्तिवर्षायुतम्
भद्राश्वे पुरुषाःशुक्लाःस्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभाः । दशवर्षसहस्राणिजीवन्तेचान्नभोजनाः
रम्यके पुरुषा नार्य्यो रमन्ति रजतप्रभाः । दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च

जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजनाः ।

हिरण्मये हिरण्याभाः सर्व्वे श्रीफलभोजनाः ॥ ४ ॥

एकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति पुरुषानार्य्यो देवलोकस्थिता इव
त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति कुरुवर्षेतु श्यामाङ्गाःक्षीरभोजनाः
सर्व्वे मिथुनजाताश्च नित्यं सुखनिषेविताः । चन्द्रद्वीपेमहादेवंयजन्तिसततं शिवम्
तथा किम्पुरुषे विप्रा मानवा हेमसन्निभाः । दशवर्षसहस्राणि जीवन्तिप्लक्षभोजनाः
यजन्ति सततं देवं चतुःशीर्षं चतुर्भुजम् । ध्यानेमनः समाधायसादरंभक्तिसंयताः
तथा च हरिवर्षे तु महारजतसन्निभाः । दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिनः
तत्र नारायणंदेवंविश्वयोनिंसनातनम् । उपासतेसदाविष्णुंमानवाविष्णुभाविताः
तत्र चन्द्रप्रभं शुभ्रं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । विमानंवासुदेवस्यपारिजातवनाश्रितम्
चतुर्द्वारमनौपम्यं चतुस्तोरणसंयुतम् । प्राकारैर्दशभिर्युक्तं दुराधर्षं सुदुर्गमम्
स्फाटिकैर्मण्डपैर्युक्तं देवराजगृहोपमम् । सुवर्णस्तम्भसाहस्रैःसर्व्वतःसमलङ्कृतम्
हेमसोपानसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम् । दिव्यसिंहासनोपेतंसर्व्वशोभासमन्वितम्
सरोभिः स्वादुपानीयैर्नदीभिश्चोपशोभितम् । नारायणपरैः शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परैः
योगिभिश्चसमाकीर्णंध्यायद्भिःपुरुषंहरिम् । स्तुवद्भिःसततंमन्त्रैर्नमस्यद्भिश्चमाधवम्
तत्र देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः । राजानः सर्व्वकालन्तु महिमानं प्रकुर्व्वते

गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोहराः ।
स्त्रियो यौवनशालिन्यः सदा मण्डनतत्पराः ॥ १६ ॥
इलावृते पद्मवर्णा जम्बूरसफलाशिनः । त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां च स्थिरायुषः
भारतेषु स्त्रियः पुंसो नानावर्णाः प्रकीर्त्तिताः ।
नानादेवार्च्चने युक्ता नानाकर्म्माणि कुर्व्वते ॥ २१ ॥
परमायुः स्मृतं तेषां शतंवर्षाणि सुव्रताः । नवयोजनसाहस्रं वर्षमेतत्प्रकीर्त्तितम्
कर्मभूमिरियंविप्रा नराणामधिकारिणाम् । महेन्द्रोमलयःसह्यःशक्तिमानृक्षपर्वतः ॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुक्मान् ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥ २४ ॥
नागद्वीपस्तथासौम्योगन्धर्वस्त्वथवारुणः । अयन्तुनवमस्तेषांद्वीपःसागरसंस्थितः
योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ।
पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ॥ २६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्येशूद्रास्तथैव च ।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्त्तयन्त्यत्र मानवाः ॥ २७ ॥
स्रवन्ते पावनानद्यः पर्वतेभ्यो विनिःसृताः । शतद्रुश्चन्द्रभागाचसरयूर्यमुना तथा
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः। गोमती धूतपापाचबाहुदा च दृषद्वती
कौशिकी लोहिनीचेतिहिमवत्पादनिःसृताः । वेदस्मृतिर्वेदवतीव्रतघ्नीत्रिदिवातथा
वर्णाशा चन्दना चैव सचर्मण्यवती सुरा ।
विदिशा वेत्रवत्यापि पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥ ३१ ॥
नर्मदा सुरसा शोणो दशार्णाचमहानदी । मन्दाकिनीचित्रकूटातामसीचपिशाचिका
चित्रोत्पला विशाला च मञ्जुला वालुवाहिनी ।
ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वपापहरानृणाम् ॥ ३३ ॥
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा च महानदी ।

विन्ना वैतरणी चैव बलाका च कुमुद्वती ॥ ३४ ॥

तथा चैवमहागौरीदुर्गाचान्तःशिलातथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्तुसद्यःपापहरान्नृणाम्
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणाच वञ्यता। तुङ्गभद्रासुप्रयोगाकावेरीचद्विजोत्तमाः
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः। ऋतुमाला ताम्रपर्णी पुण्यवत्युत्पलावती

मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः स्मृताः।
ऋषिकुल्या त्रिसामा च गन्धमादनगामिनी ॥ ३८ ॥

क्षिप्रापलाशिनीचैवऋषीकावंशधारिणी। शुक्तिमत्पादसञ्जाताः सर्वपापहरान्नृणाम्
आसां नद्युपनद्यश्च शतशो द्विजपुङ्गवाः। सर्वपापहराः पुण्याः स्नानदानादिकर्मसु
तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयोजनाः। पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः

पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्नशः।
तथापरान्ताः सौराष्ट्रशूद्रा हीनास्तथाऽर्बुदाः ॥ ४२ ॥
मालका मलपाश्चैव पारियात्रनिवासिनः।
सौवीराः सैन्धवा हूणा माल्या बाल्यानिवासिनः ॥ ४३ ॥
माद्रा रामास्तथैवाऽऽन्ध्राः पारसीकास्तथैव च।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा ॥ ४४ ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन्। कृतंत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चान्यत्रनक्वचित्
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ महर्षयः। नतेषु शोको नायासो नोद्वेगःक्षुद्भयंनच

स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्ज्जिताः।
रमन्ते विविधैर्भावैः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः ॥ ४७ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

सूत उवाच]

हेमकूटगिरेः शृङ्गे महाकूटं सुशोभनम् । स्फाटिकं देवदेवस्य विमानं परमेष्ठिनः ॥
तत्रदेवाधिदेवस्यभूतेशस्यत्रिशूलिनः । देवाः सर्षिगणाः सिद्धाः पूजांनित्यंप्रकुर्वते
स देव्यागिरिशः सार्द्धं महादेवोमहेश्वरः । भूतैःपरिवृतो नित्यं भातितत्रपिनाकधृक्
विभक्तचारुशिखरः कैलासो यत्र पर्वतः । निवासःकोटियक्षाणां कुबेरस्यचश्रीमतः
तत्रापि देवदेवस्य भवत्यायतनंमहत् । मन्दाकिनी तत्रपुण्या रम्या सुविमलोदका
नदी नानाविधैः पद्मैरनेकैः समलङ्कृताः । देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिन्नरैः ॥६॥
उपस्पृष्टजला नित्यं सुपुण्यासुमनोरमा । अन्याश्चनद्यः शतशः स्वर्णपद्मैरलङ्कृताः
तासां कूले तु देवस्यस्थानानि परमेष्ठिनः । देवर्षिगणजुष्टानि तथानारायणस्य तु ॥
तस्यापि शिखरेशुभ्रं पारिजातवनंशुभम् । तत्र शक्रस्य विपुलं भवनं रत्नमण्डितम्

स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं हेमगोपुरशोभितम् ।
तत्राऽथ देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ॥ १० ॥

पुण्यश्चभवनं रम्यंसर्वरत्नोपशोभितम् । तत्र नारायणः श्रीमान्लक्ष्म्यासहजगत्पतिः
आस्ते सर्वेश्वरः श्रेष्ठःपूज्यमानःसनातनः । तथाच वसुधारे तु वसूनां रत्नमण्डितम्
स्थानानामुत्तमं पुण्यं दुराधर्षं सुरद्विषाम् । रत्नधारे गिरिवरेसप्तर्षीणांमहात्मनाम्
सप्ताश्रमाणिपुण्यानिसिद्धावासैर्युतानिच । तत्रहैमंचतुर्द्वारं वज्रनीलादिमण्डितम्
सुपुण्यं सदवस्थानं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । तत्र देवर्षयोविप्राः सिद्धाब्रह्मर्षयोऽपरे
उपासते देवदेवं पितामहमजं परम् । सर्वैः सम्पूजितो नित्यं देव्या सह चतुर्मुखः
आस्ते हितायलोकानांशान्तानांपरमागतिः । तस्यैकशृङ्गशिखरे महापद्मैरलङ्कृते
स्वच्छामृतजलं पुण्यं सुगन्धंसुमहत्सरः । जैगीषव्याश्रमपुण्ययोगीन्द्ररुपसेवितम्

तत्रास्ते भगवान्नित्यं सर्वशिष्यैः समावृतः । प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्ब्रह्मविद्भिर्महात्मभिः
शङ्खो मनोहरश्चैव कौशिकः कृष्ण एव च । सुमनावेदवादश्च शिष्यास्तस्यप्रसादतः

सर्वयोगरताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।
उपासते महाचार्या ब्रह्मविद्यापरायणाः ॥ २१ ॥

तेषामनुग्रहार्थाय यतीनांशान्तचेतसाम् । सान्निध्यं कुरुते भूयो देव्या सहमहेश्वरः

अनेकान्याश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे ।
मुनीनां युक्तमनसां सरांसि सरितस्तथा ॥ २३ ॥

तेषु योगरता विप्रा जापकाः संयतेन्द्रियाः । ब्रह्मण्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्पराः

आत्मन्यात्मानमाधाय शिखान्ते पर्यवस्थितम् ।
ध्यायन्ति देवमीशानं येनसर्वमिदं ततम् ॥ २५ ॥

सुमेधंवासवस्थानंसहस्रादित्यसन्निभम् । तत्राऽऽस्तेभगवानिन्द्रःशच्यासहसुरेश्वरः
गजशैले तु दुर्गायाः भवनंमणितोरणम् । आस्तेभगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी

उपास्यमाना विविधैः शक्तिभेदैरितस्ततः ।
पीत्वा योगामृतं लब्ध्वा साक्षादमृतमैश्वरम् ॥ १८ ॥
सुनीलस्य गिरेः शृङ्गे नानाधातुसमुज्वले ।
राक्षसानां पुराणि स्युः सरांसि शतशो द्विजाः ॥ २६ ॥

तथा पुरशतं विप्राःशतशृङ्गेमहाचले । स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं यक्षाणाममितौजसाम्
श्वेतोदरगिरेः शृङ्गे सुपर्णस्यमहात्मनः । प्राकारगोपुरोपेतं मणितोरणमण्डितम् ॥

स तत्र गरुडः श्रीमान् साक्षाद्विष्णुरिवापरः ।
ध्यात्वा तत्परमंज्योतिरात्मन्येवमथाऽव्ययम् ॥ ३२ ॥

अन्यच्च भवनं पुण्यंश्रीशृङ्गे मुनिपुङ्गवाः । श्रीदेव्याःसर्वरत्नाढ्यं हैमंसमणितोरणम्
तत्र सा परमाशक्तिर्विष्णोरतिमनोरमा । अनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्संमोहनोत्सुका

अध्यास्ते देवगन्धर्वसिद्धचारणवन्दिता ।
विचिन्त्या जगतो योनिः स्वशक्तिकिरणोज्ज्वला ॥ ३५ ॥

तत्रैव देवदेवस्य विष्णोरायतनं महत् । सरांसि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाशयाः
तथा सहस्रशिखरे विद्याधरपुराष्टकम् । रत्नसोपानसंयुक्तं सरोभिश्चोपशोभितम्
नद्योविमलपानीयाश्चित्रनीलोत्पलाकराः । कर्णिकारवनंदिव्यं तत्रास्तेशङ्करःस्वयम्
पारिजाते महालक्ष्म्याः पर्वते तु पुरं शुभम् । रम्यप्रासादसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम्
नृत्यद्भिरप्सरः संघैरितश्चेतश्च शोभितम् । मृदंगपणवोद्घुष्टं वेणुवीणानिनादितम्
गन्धर्वकिन्नराकीर्णं संवृतं सिद्धपुङ्गवैः । भास्वद्भिर्भृशमायुक्तं महाप्रासादसङ्कुलम्
महागणेश्वरैर्जुष्टं धार्म्मिकाणां सुदर्शनम् । तत्र सा वसते देवी नित्यं योगपरायणा
महालक्ष्मीर्महादेवी त्रिशूलवरधारिणी । त्रिनेत्रा सर्वशक्त्यौघसंवृता सा च तन्मयी
पश्यन्ति तत्रमुनयःसिद्धायेब्रह्मवादिनः । सुपार्श्वस्योत्तरे भागेसरस्वत्याःपुरोत्तमम्
सरांसिसिद्धजुष्टानिदेवभोग्यानिसत्तमाः । पाण्डुरस्यगिरेःशृङ्गेविचित्रद्रुमसङ्कुलम्
गन्धर्वाणांपुरशतं दिव्यस्त्रीभिः समावृतम् । तत्रनित्यं मदोत्सिक्तानरानार्यस्तथैवच
क्रीडन्ति मुदिता नित्यं विलासैर्भोगतत्पराः ।
अञ्जनस्य गिरेः शृङ्गे नारीपुरमनुत्तमम् ॥ ४७ ॥
वसन्तितत्राप्सरसोरम्भाद्यारतिलालसाः । चित्रसेनादयोयत्रसमायान्त्यर्थिनःसदा
सापुरी सर्वरत्नाढ्या नैकप्रस्रवणैर्युता । अनेकानिपुराणि स्युः कौमुदेचापिसत्तमाः
रुद्राणां शान्तरजसामीश्वरासक्तचेतसाम् । तेषु रुद्रा महायोगा महेशान्तरचारिणः
समासते पुरं ज्योतिरारूढाःस्थानमैश्वरम् । पिञ्जरस्य गिरेःशृङ्गे गणेशानांपुरत्रयम्
नदीश्वरस्यकपिला तत्रास्ते स महामतिः । तथा च जारुधेःशृङ्गे देवदेवस्यधीमताः
दीप्तमायतनं पुण्यंभास्करस्यामितौजसः । तस्यैवोत्तरदिग्भागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम्
वसते तत्र रम्यात्मा भगवान् शान्तदीधितिः । अन्यत्र भवनं दिव्यं हंसशैलेमहर्षयः
सहस्रयोजनायामं सुवर्णमणितोरणम् । तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसङ्घैरभिष्टुतः
सावित्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युतः ।
तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धानां पुरमुत्तमम् ॥ ५६ ॥
सनन्दनाद्यो यत्र वसन्ति मुनिपुङ्गवाः । पञ्चशैलस्य शिखरे दानवानां पुरत्रयम् ॥

नातिदूरेणतस्माच्च दैत्याचार्य्यस्यधीमतः । सुगन्धशैलशिखरेसरिद्भिरुपशोभितम्
कर्द्दमस्याश्रमं पुण्यं तत्रास्तेभगवानृषिः । तस्यैवपूर्वदिग्भागे किञ्चिद्वैदक्षिणाश्रिते
सनत्कुमारो भगवांस्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तमः । सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः
सरांसि विमला नद्यो देवानामालयानि च ।
सिद्धलिङ्गानि पुण्यानि मुनिभिः स्थापितानि च ॥ ६१ ॥
तानिचायतनान्याशु संख्यातुंनैवशक्यते । एषसङ्क्षेपतः प्रोक्तोजम्बूद्वीपस्यविस्तरः
न शक्यो विस्तराद्वक्तुं मया वर्षशतैरपि ॥ ६२ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे जम्बूद्वीपवर्णनं नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनविन्यासवर्णनेप्लक्षादिद्वीपानाम्वर्णनम्

सूत उवाच

जम्बूद्वीपस्यविस्ताराद्द्विगुणेनसमन्ततः । संवेष्टयित्वाक्षीरोदंप्लक्षद्वीपोव्यवस्थितः
प्लक्षद्वीपेचविप्रेन्द्राःसप्ताऽऽसन्कुलपर्वताः । सिद्धायुताःसुपर्वाणःसिद्धसङ्घनिषेविताः
गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्रउच्यते । नारदो दुन्दुभिश्चैव मणिमान्मेघनिस्वनः
वैभ्राजः सप्तमस्तेषां ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभः । तत्र देवर्षिगन्धर्वैः सिद्धैश्च भगवानजः
उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वदृक् ।
तेषु पुण्या जनपदा आधयो व्याधयो न च ॥ ५ ॥
न तत्र पापकर्त्तारः पुरुषा वै कथञ्चन । तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणां तु समुद्रगाः ॥
तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते । अनुतप्ताशिखे चैव विपापा त्रिदिवा कृता
अमृता सुकृताचैवनामतः परिकीर्त्तिताः । क्षुद्रनद्यस्तु विख्याताः सरांसिचबहून्यपि
न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः । आर्य्यकाः कुरराश्चैव विदेहाभावितस्तथा

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन्द्वीपे प्रकीर्त्तिताः ।
इज्यते भगवानीशो वर्णैस्तत्र निवासिभिः ॥ १० ॥
तेषाञ्च सोमसाम्राज्यं सारूप्यं मुनिपुङ्गवाः । सर्वे धर्म्मरतानित्यंसर्वे मुदितमानसाः
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः । प्लक्षद्वीपप्रमाणं तु द्विगुणेन समन्ततः
संवेष्ट्यक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः ।
सप्त वर्षाणि तत्राऽपि सप्तैव कुलपर्व्वताः ॥ १३ ॥
ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुव्रताः । कुमुदश्चान्नदश्चैव तृतीयश्च वलाहकः
द्रोणः कंसस्तु महिषः ककुद्मान् सप्तमस्तथा ।
योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी ॥ १५ ॥
निवृत्तिश्चेतितानद्यःस्मृताःपापहरानृणाम् । नतेषुविद्यतेलोभःक्रोधोवाद्विजसत्तमाः
नचैवास्तियुगावस्थाजना जीवन्त्यनामयाः । यजन्तिसततंतत्र वर्णावायुं सनातनम्
तेषांतत्साधनंयुक्तंसारूप्यञ्च सलोकता । कपिलाब्राह्मणाःप्रोक्ताराजानश्चारुणास्तथा
पीता वैश्याः स्मृताः कृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजाः ।
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ॥ १६ ॥
संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धिं कुशद्वीपो व्यवस्थितः ।
विद्रुमश्चैव होमश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा ॥ २० ॥
कुशेशयो हरिश्चैव मन्दरः सप्तपर्वताः । धुतपापा शिवाचैव पवित्रा सम्मिता तथा
तथा विद्युत्प्रभा रामामहानद्यश्चसप्तवै । अन्याश्चशतशो विप्रा नद्योमणिजलाःशुभाः
तास्तु ब्राह्मणमीशानं देवाद्याः पर्युपासते ।
ब्राह्मणा द्रविणो विप्राः क्षत्रियाः शुष्मिणस्तथा ॥ २३ ॥
वैश्यास्तोभास्तुमन्देहाःशूद्रास्तत्रप्रकीर्तिताः । नरोपिज्ञानसम्पन्नामैत्रादिगुणसंयुताः
यथोक्तकारिणःसर्वे सर्वे भूतहिते रताः । यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥
तेषाञ्चब्रह्मसायुज्यं सारूप्यञ्चसलोकता । कुशद्वीपस्यविस्ताराद्द्विगुणेनसमन्ततः
क्रौञ्चद्वीपः स्थितो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम् ।

कौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चाधिकारिकः ॥ २७ ॥

देवाव्दश्च विवेदश्चपुण्डरीकस्तथैव च। नाम्ना च सप्तमःप्रोक्तः पर्वतो दुन्दुभिस्वनः

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्यारात्रिर्मनोजवा।

कोभिश्च पुण्डरीकाक्षा नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः ॥ २६ ॥

पुष्कलाः पुष्करा धन्यास्तिष्या वर्णाः क्रमेण वै।

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैव द्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥

अर्च्चयन्ति महादेवं यज्ञदानशमादिभिः। व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैश्च पितृतर्पणैः ॥३१

तेषां वै रुद्रसायुज्यंसारूप्यंचातिदुर्लभम्। सलोकताच्चसामीप्यं जायतेतत्प्रसादतः

कौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।

शाकद्वीपः स्थितो विप्रा आवेष्ट्य दधिसागरम् ॥ ३३ ॥

उदयो रैवतश्चैव श्यामकाष्ठगिरिस्तथा। आम्बिकेयस्तथारम्यःकेसरीचेति पर्वताः

सुकुमारी कुमारी च नलिनीवेणुकातथा। इक्षुकाधेनुका चैव गभस्तिश्चेतिनिम्नगाः

आसांपिबन्तःसलिलंजीवन्तितत्रमानवाः। अनामयाश्चाशोकाश्चरागद्वेषविवर्ज्जिताः

मृगाश्चमगधाश्चैव मानसामन्दगास्तथा। ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चात्रक्रमेणतु

यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम्। व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम्

तेषां वैसूर्य्यसायुज्यंसामीप्यञ्चसरूपता। सलोकता च विप्रेन्द्राजायतेतत्प्रसादतः

शाकद्वीपंसमावृत्य क्षीरोदःसागरःस्थितः। श्वेतद्वीपश्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः

तत्र पुण्याजनपदानानाश्चर्यसमन्विताः। श्वेतास्तत्रनरानित्यंजायन्ते विष्णुतत्पराः

नाधयोव्याधयस्तत्रजरामृत्युभयं न च। क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्ज्जिताः

नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः।

नारायणसमाः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ ४३ ॥

केचिद्ध्यानपरा नित्यंयोगिनःसंयतेन्द्रियाः।

केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद्विज्ञानिनोऽपरे ॥ ४४ ॥

अन्ये निर्बीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविताः। ध्यायन्ति तत्परं ब्रह्म वासुदेवं सनातनम्

पकान्तिनोनिरालम्बामहाभागवताःपरे । पश्यन्तितत्परंब्रह्म विष्ण्वाख्यंतमसःपरम्
सर्वे चतुर्भुजाकारा शङ्खचक्रगदाधराः । सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः
अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः । सुयोगाद्भूतिकरणा महागरुडवाहनाः ॥
सर्वे शक्तिसमायुक्तानित्यानन्दाश्चनिर्मलाः । वसन्तितत्रपुरुषा विष्णोरन्तरचारिणः
तत्र नारायणस्यान्यद्दुर्गमं दुरतिक्रमम् । नारायणं नाम पुरं प्रासादैरुपशोभितम्
हेमप्राकारसंयुक्तं स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम् । प्रभासहस्रकलिलं दुराधर्षं सुशोभनम् ॥

हर्म्यप्रासादसंयुक्तं महाट्टालसमाकुलम् ।
हेमगोपुरसाहस्रैर्नाना रत्नोपशोभितैः ॥ ५२ ॥
शुभ्रास्तरणसंयुक्तैर्विचित्रैः समलङ्कृतम् ।
नन्दनैर्विविधाकारैः स्रवन्तीभिश्च शोभितम् ॥ ५३ ॥
सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणावेणुनिनादितम् ।
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम् ॥ ५४ ॥

वाथीभिः सर्वतो युक्तं सोपानैरत्नभूषितैः । नदीशतसहस्राढ्यं दिव्यगाननिनादितम्
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् । चतुर्द्वारमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम्
तत्र तत्राप्सरः सङ्घैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम् । नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभैः
नानाविलाससम्पन्नैः कामुकैरतिकोमलैः । प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसंयुतैः ॥ ५८ ॥
ईषत्स्मितैः सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणैः । अशेषविभवोपेतैस्तनुमध्यविभूषितैः ॥
सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरस्वनैः । संलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितैः ॥ ६० ॥
स्तनभारविनम्रैश्च मधुघूर्णितलोचनैः । नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः ॥ ६१
उत्फुल्लकुसुमोद्यानैतद्भूतशतशोभितम् । असंख्येयगुणं शुद्धमसंख्यैस्त्रिदशैरपि ॥ ६२
श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः । तस्यमध्येऽतितेजस्कमुच्चप्राकारतोरणम्

स्थानं तद्वैष्णवं दिव्यं योगिनां सिद्धिदायकम् ।
तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः ॥ ६४ ॥

शेतेऽशेषजगत्सूतिः शेषाहिशयने हरिः । विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः

स्वात्मानन्दाऽमृतंपीत्वापुरस्तात्तमसःपरः। पीतवासाविशालाक्षोमहामायोमहाभुजः
क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः। सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया
समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम्।
न तत्राऽधार्म्मिका यान्ति न च देवान्तरालयाः॥ ६८॥
वैकुण्ठंनाम तत्स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम्। न मेप्रभवतिप्रज्ञा कृत्स्नशास्त्रनिरूपणे
एतावच्छक्यते वक्तुं नारायणपुरं हितत्। स एवपरमंब्रह्मवासुदेवःसनातनः॥ ७०॥
शेते नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्॥ ७१॥
नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेवव्यवस्थितम्। तमाश्रयतिकालान्तेसएवपरमागतिः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे भुवनविन्यासेप्लक्षादिद्वीपानांवर्णनंनामै-
कोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४६॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुष्करद्वीपवर्णनम्

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थितः।
क्षीरार्णवं समाश्रित्य द्वीपं पुष्करसंज्ञितम्॥ १॥
एक एवात्र विप्रेन्द्राः पर्वतोमानसोत्तरः। योजनानांसहस्राणिचोर्द्ध्वंपञ्चाशदुच्छ्रितः
तावदेव च विस्तीर्णःसर्व्वतःपारिमण्डलः। सएवद्वीपश्चार्द्धेन मानसोत्तरसंस्थितः
एकएव महाभागःसन्निवेशोद्विधाकृतः। तस्मिन्द्वीपेस्मृतौद्वौतुपुण्यौजनपदौशुभौ
अपरौ मानसस्याथ पर्व्वतस्यानुमण्डलौ। महावीतं स्मृतंवर्षं धातकीखण्डमेव च
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः। तस्मिन्द्वीपेमहावृक्षोन्यग्रोधोऽमरपूजितः
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः। तत्रैवमुनिशार्दूलशिवनारायणालयः

वसत्यत्र महादेवो हरोर्द्धं हरिरव्ययः । सम्पूज्यमानोब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभिः
गन्धर्व्वैः किन्नरैर्यक्षैरीश्वरः कृष्णपिङ्गलः ।
स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्व्वा ब्राह्मणाः शतशस्त्विषः ॥ ६ ॥
निरामया विशोकाश्चरागद्वेषविवर्जिताः । सत्यानृतेनतत्रास्तांनोत्तमाधममध्यमाः
नवर्णाश्रमधर्म्माश्च न नद्यो न चपर्व्वताः । परेणपुष्करेणाथसमावृत्य स्थितोमहान्
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद्द्विजसत्तमाः ।
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥ १२ ॥
काञ्चनी द्विगुणा भूमिःसर्वत्रैकशिलोपमा । तस्याःपरेणशैलस्तुमर्यादाभानुमण्डलः
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते ।
योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः ॥ १४ ॥
तावानेव च विस्तारो लोकालोकमहागिरेः । समावृत्यतुतंशैलंसर्वतोवैसमस्थितम्
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम् । एतेसप्तमहालोकाःपातालाःसम्प्रकीर्त्तिताः
ब्रह्माण्डाशेषविस्तारः संक्षेपेण मयोदितः ।
अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः ॥ १७ ॥
सर्वगत्वात्प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः । अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्द्दश
तत्रतत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रानारायणादयः । दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम् ॥
समन्तात्संस्थितं विप्रास्तत्र यान्ति मनीषिणः ।
अनन्तमेवमव्यक्तमनादिनिधनं महत् ॥ २० ॥
अतीत्य वर्त्तते सर्वं जगत्प्रकृतिरक्षरम् । अनन्तत्वमनन्तस्य यतः सङ्ख्यान विद्यते
तदव्यक्तमिदंज्ञेयं तद्ब्रह्म परमं ध्रुवम् । अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते ॥ २२
तस्यपूर्वं मयाप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमुत्तमम् । गतः स एष सर्वत्रसर्वस्थानेषु पूज्यते
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले । अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः ॥
तथातमसि तत्त्वे वाप्येष एव महाद्युतिः । अनेकधा विभक्ताङ्गः क्रीडतेपुरुषोत्तमः ॥
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ।

अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत् ॥ २६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणेभुवनकोशवर्णनेपुष्करद्वीपवर्णनंनाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मन्वन्तरकीर्तनेविष्णुमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

अतीतानागतानीह यानिमन्वन्तराणि वै । तानित्वंकथयास्मभ्यंव्यासश्चद्वापरेयुगे
वेदशाखाप्रणयिनो देवदेवस्य धीमतः । धर्मार्थानांप्रवक्तारो हीशानस्य कलौ युगे
कियन्तो देवदेवस्य शिष्याःकलियुगेऽपि वै । एतत्सर्वंसमासेनसूतवक्तुमिहार्हसि

सूत उवाच

मनुः स्वायम्भुवः पूर्वं ततःस्वारोचिषो मतः । उत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षुषस्तथा
षडेते मनवोतीताः साम्प्रतन्तु रवेः सुतः । वैवस्वतोऽयं सप्तैतत्सप्तमंवर्त्तते परम् ॥

स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया ।
अत ऊर्द्ध्वं निबोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु ॥ ६ ॥

पारावताश्चतुषिता देवाःस्वारोचिषेऽन्तरे । विपश्चिन्नामदेवेन्द्रोबभूवासुरमर्द्दनः ॥

ऊर्ज्जस्तम्भस्तथाप्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा ।
तिमिरश्चार्वरीवांश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ८ ॥
चैत्रकिम्पुरुषाद्यास्तु सुताः स्वारोचिषस्य तु ।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम् ॥ ९ ॥

तृतीयेऽप्यन्तरे चैव उत्तमोनाम वै मनुः । सुशान्तिस्तत्रदेवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः
सुधामानस्तथा सत्यः शिवश्चाथप्रतर्द्दनः । वशवर्त्तिनःपञ्चैते गणाद्वादशकाःस्मृताः
रजोगात्रोर्द्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा । सुतपाः शुक्रइत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥

तामसस्यान्तरे देवाःसुरायासहरास्तथा । सत्याश्च सुधियश्चैवसप्तविंशतिकागणाः
शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः । बभूव शङ्करे भक्तो महादेवार्च्चने रतः ॥
ज्योतिर्द्धाम पृथकल्पश्चैत्रोऽग्निवसनस्तथा । पीवरस्त्वृषयोह्यतेसप्त तत्रापिचान्तरे
पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः । मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्द्दनः ॥
अमिता भूतयस्तत्र वैकुण्ठाश्च सुरोत्तमाः । एते देवगणास्तत्र चतुर्द्दश चतुर्द्दश ॥

हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्द्ध्वबाहुस्तथैव च ।
वेदबाहुः सुबाहुश्च स पर्ज्जन्यो महामुनिः ॥ १८ ॥

एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन्रैवतेऽन्तरे । स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा
प्रियव्रतान्विताह्येतेचत्वारोमनवःस्मृताः । षष्ठे मन्वन्तरे चापिचाक्षुषस्तुमनुर्द्विजाः
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवांश्चैवनिबोधतः । आद्याःप्रभूतभाव्याश्च प्रथनाश्च दिवौकसः

महानुभावा लेख्याश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ।
विरजाश्च हविष्मांश्च सोमो मनुसमः स्मृतः ॥ २२ ॥
अविनामा सविष्णुश्च सप्तासन्नृषयः शुभाः ।
विवस्वतः सुतो विप्राः श्राद्धदेवो महाद्युतिः ॥ २३ ॥

मनुः सम्वर्त्तना विप्राःसाम्प्रतंसप्तमेऽन्तरे । आदित्यावसवो रुद्रा देवास्तत्रमरुद्गणाः
पुरन्दरस्तथैवेन्द्रो बभूवपरवीरहा । वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतमः ॥

विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।
विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ ॥ २६ ॥
तदंशभूता राजानः सर्वे च त्रिदिवौकसः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं प्रकृत्यां मानसः सुतः ॥ २७ ॥

रुचेः प्रजापतेर्जज्ञे तदंशेनाभवद्द्विजाः । ततः पुनरसौ देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे
तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैःसहदैवतैः । उत्तमेत्वन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमः
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यरूपो जनार्द्दनः । तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि
हर्य्यायां हरिभिर्द्देवैर्हरिरेवाभवद्धरिः । रैवतेऽप्यन्तरे देव सङ्कल्पान्मानसो हरिः

सम्भूतो मानसैः सार्द्धं देवैःसह महाद्युतिः । चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैववैकुण्ठः पुरुषोत्तमः
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैःसह । मन्वन्तरेच सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे
वामनःकश्यपाद्विष्णुरदित्यांसम्बभूवह । त्रिभिःक्रमैरिमांल्लोकाञ्जित्वायेनमहात्मना
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् । इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै ॥

सप्त चैवाभवन्विप्राः याभिः सङ्कर्षिताः प्रजाः ।
यस्माद्विश्वमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना ॥ ३६ ॥

तस्मात्सर्वैःस्मृतोनूनं देवैःसर्वेषु दैत्यहा । एष सर्वं सृजत्यादौ पातिहन्तिचकेशवः
भूतान्तरात्माभगवान्नारायणइति श्रुतिः । एकांशेनजगत्सर्वं व्याप्यनारायणःस्थितः

चतुर्द्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च ।
एका भगवतो मूर्त्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला ॥ ३६ ॥
वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला ।
द्वितीया कालसञ्ज्ञाऽन्या तामसी शिवसञ्ज्ञिता ॥ ४० ॥

निहन्त्रीसकलस्यान्तेवैष्णवीपरमातनुः । सत्त्वोद्रिक्तातृतीयान्याप्रद्युम्नेतिचसंज्ञिता
जगत्संस्थापयेद्विश्वंसाविष्णोःप्रकृतिर्ध्रुवा । चतुर्थीवासुदेवस्यमूर्त्तिर्ब्रह्मेतिसञ्ज्ञिता
राजसी साऽनिरुद्धस्यपुरुषसृष्टिकारिता । यः स्वपित्यखिलंहत्वाप्रद्युम्नेन सहप्रभुः
नारायणाख्योब्रह्मासौप्रजासर्गंकरोतिसः। यासौनारायणतनुःप्रद्युम्नाख्याशुभास्मृता
तया सम्मोहयेद्विश्वं सदेवासुरमानुषम् । ततःसैव जगन्मूर्त्तिः प्रकृतिःपरिकीर्त्तिता
वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणोहरिः । प्रधानं पुरुषंकालः सत्त्वत्रयमनुत्तमम्
वासुदेवात्मकं नित्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते । एकश्चेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरच्युतः ॥

विभेदवासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो भगवान् हरिः ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥ ४८ ॥

अवतरत्स सम्पूर्णंस्वेच्छयाभगवान् हरिः । अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा ऋषयोविदुः

एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः ।
इत्येतद्विष्णुमाहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः ॥

एतत्सत्यं पुनः सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति ॥ ५० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे मन्वन्तरकीर्त्तने विष्णुमाहात्म्यं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वेदशाखाप्रणयनम्

सूत उवाच

अस्मिन्मन्वन्तरेपूर्वं वर्त्तमानेमहान् प्रभुः । द्वापरेप्रथमेव्यासो मनुःस्वायम्भुवो मतः

विभेद बहुधा वेदं नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः । द्वितीयेद्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः

तृतीयेचोशनाव्यासश्चतुर्थेस्याद्बृहस्पतिः । सवितापञ्चमेव्यासःषष्ठेमृत्युःप्रकीर्त्तितः

सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः । सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः ॥

एकादशे तु ऋषभः सुतेजा द्वादशे स्मृतः ।

त्रयोदशे तथा धर्म्मः सुचक्षुस्तु चतुर्द्दशे ॥ ५ ॥

त्र्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः । कृतञ्जयः सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जयः ॥

ततोव्यासोभरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वन्तुगौतमः । वाचश्रवाश्चैकविंशेतस्मान्नारायणःपरः

तृणविन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्ततपरः स्मृतः ।

पञ्चविंशे तथा प्राप्ते यस्मिन्वै द्वापरे द्विजाः ॥ ८ ॥

(सप्तविंशेतथाव्यासोजातूकर्णोमहामुनिः)। पराशरसुतोव्यासःकृष्णद्वैपायनोऽभवत्

स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः ॥ १० ॥

पाराशर्य्योमहायोगीकृष्णद्वैपायनोहरिः । आराध्यदेवमीशानंदृष्ट्वास्तुत्वात्रिलोचनम्

तत्प्रसादादसौ व्यासं वेदानामकरोत्प्रभुः ॥ ११ ॥

अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान् । जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेवच

पैलं तथा चतुर्थञ्च पञ्चमं मां महामुनिः । ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ॥

यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च । जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत ॥ १४
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् । इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत् ॥
एकआसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा प्रकल्पयत् । चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्

आध्वर्यवं यजुर्भिः स्यादृग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः ।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाऽप्यथर्वभिः ॥ १७ ॥

ततः सत्रे च उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः । यजूंषि तु यजुर्वेदं सामवेदन्तु सामभिः
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा । शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत् ॥
सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रबिभेद सः । अथर्वाणमथो वेदं बिभेद कुशकेतनः ॥
भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः । सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनः

ओङ्कारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः ।
वेदविद्योऽथ भगवान्वासुदेवः सनातनः ॥ २२ ॥

स गीयते परो वेदैर्यो वेदैनं स वेदवित् । एतत्परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम् ॥
वेदवाक्योदितन्तत्त्वं वासुदेवः परम्पदम् । वेदविद्यमिमं वेत्ति वेदं वेदपरो मुनिः
अवेदं परमं वेत्ति वेदनिःश्वासकृत्परः । स वेदवेद्यो भगवान्वेदमूर्त्तिर्महेश्वरः ॥ २५॥
स एव वेद्यो वेदश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते । इत्येतदक्षरं वेदमोङ्कारं वेदमव्ययम् ॥

अवेदञ्च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः ॥ २६ ॥

इति श्रीकूर्म्मपुराणे वेदशाखाप्रणयनं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

———

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वैवस्वतेऽन्तरेशिवावतारवर्णनम्

सूत उवाच

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु । महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रताः
आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः । नाम्ना हिताय विप्राणामभूद्वैवस्वतेऽन्तरे

हिमवच्छिखरे रम्ये सकले पर्वतोत्तमे ।
तस्य शिष्याः प्रशिष्याश्च बभूवुरमितप्रभाः ॥ ३ ॥
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः ।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ४ ॥

सुतारोमदनश्चैवसुहोत्रःकङ्कणस्तथा । लोकाक्षिस्त्वथयोगीन्द्रोजैगीषव्योऽथसप्तमे
अष्टमे दधिवाहः स्यान्नवमे ऋषभःप्रभुः । भृगुस्तुदशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः पुरःस्मृतः
द्वादशेतिसमाख्यातो वाली वाथ त्रयोदशे । चतुर्दशे गौतमस्तु वेददर्शी ततः परः

गोकर्णश्चाभवत्तस्माद्गुहावासः शिखण्डधृक् ।
यजमाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा ॥ ८ ॥
महायामो मुनिः शूली डिण्डमुण्डीश्वरः स्वयम् ।
सहिष्णुः सोमशर्म्मा च नकुलीश्वर एव च ॥ ६ ॥
(वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिनः ।
अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः ॥
तीर्थकार्यावतारे स्याद्देवेशो नकुलीश्वरः ॥)

तत्रदेवाधिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः । शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येकंमुनिपुङ्गवाः

प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमास्थिताः ।
क्रमेण तान्प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान् ॥ ११ ॥

(श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः ॥)
दुन्दुभिः शतरूपश्चऋचीकःकेतुमांस्तथा । विशोकश्च विकेशश्चविशाखःशापनाशनः
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्द्दमो दुरतिक्रमः । सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः ॥
दालभ्यश्च महायोगी धर्म्मात्मानो महौजसः ।
सुधामा विरजाश्चैवशङ्खवाण्यज एव च ॥ १४ ॥
सारस्वतस्तथा मोघोधनवाहःसुवाहनः । कपिलश्चासुरिश्चैववोढुः पञ्चशिखोमुनिः
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा । चलवन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनाः
लम्बोदरश्च लम्बश्च विकोशो लम्बकः शुकः ।
सर्वज्ञःसमबुद्धिश्च साध्यासाध्यस्तथैव च ॥ १७ ॥
सुधामा काश्यपश्चाथ वसिष्ठोवरिजास्तथा । अत्रिरुग्रस्तथा चैवश्रवणोऽथसुवैद्यकः
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशशीरः कुनेत्रकः । कश्यपो ह्युशनाचैवच्यवनोऽथबृहस्पतिः
उच्चास्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलिः ।
वाजश्रवाः सुकेशश्च श्यावाश्वः सुपरथीश्वरः ॥ २० ॥
हिरण्यनाभः कौशल्योऽकाक्षुः कुथुमिथस्तथा ।
सुमन्तवर्च्चसो विद्वान्कवन्धः कुशिकन्धरः ॥ २१ ॥
प्लक्षो दर्वायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा । भल्लावी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोधनः
उषिधा बृहद्रक्षश्च देवलः कविरेव च । शालहोत्राग्निवेश्यस्तु युवनाश्वः शरद्वसुः ॥
छगलः कुण्डकर्णश्च कुन्तश्चैव प्रवाहकः । उलूको विद्युतश्चैव शाद्रको ह्याश्वलायनः
अक्षवादः कुमारश्च ह्युलूको वसुवाहनः । कुणिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुरुरेव च ॥
शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्त्तेषु योगिनाम् ।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः ॥ २६ ॥
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय च । योगेश्वराणामादेशाद्वेदसंस्थापनायवै
ये ब्राह्मणाः संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा ।
तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयुः ॥ २८ ॥

इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु । भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च
दशमो ब्रह्मसावर्णोधर्म्म एकादशःस्मृतः । द्वादशो रुद्रसावर्णो रौच्यनामा त्रयोदशः
भौत्यश्चतुर्द्दशः प्रोक्तोभविष्यामनवःक्रमात् । अयंवःकथितोह्यंशःपूर्वो नारायणेरितः
भूतैर्भव्यैर्वर्त्तमानैराख्यानैरुपबृंहितः । यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वाद्विजोत्तमान् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । पठेद्देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि ॥
नारायणं नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम् । नमो देवाधिदेवाय देवानां परमात्मने ॥
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे प्रभाविष्णवे ॥ ३४ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे पूर्वार्द्धे वैवस्वतेऽन्तरेशिवावतारवर्णनंनाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

समाप्तमिदंकूर्म्ममहापुराणान्तर्गत ब्राह्मीसंहितायाः पूर्वार्द्धम् ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

कूर्मपुराणम्

—:०:—

उत्तरार्द्धम्

तत्रादावीश्वरगीताप्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः

ऋषिव्याससम्वादवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवःप्रभो !।
ब्रह्माण्डस्याऽऽदिविस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः ॥ १ ॥

तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्म्मतत्परैः । ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया
तत्त्वश्चाशेषसंसारदुःखनाशमनुत्तमम् । ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं तेन पश्येम तत्परम् ॥ ३॥

त्वं हि नारायणः साक्षात्कृष्णद्वैपायनात्प्रभो !।
अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः ॥ ४ ॥

श्रुत्वामुनीनांतद्वाक्यं कृष्णद्वैपायनात्प्रभुः । सूतःपौराणिकःश्रुत्वाभाषितुं ह्युपचक्रमे
तथास्मिन्नन्तरेव्यासःकृष्णद्वैपायनःस्वयम् । आजगाममुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रंसमासते
तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसंकालमेघसमद्युतिम् । व्यासंकमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुङ्गवाः ॥ ७॥

पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वाऽसौलोमहर्षणः । प्रणम्य शिरसाभूमौप्राञ्जलिर्वशगोऽभवत्

पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम् ।
समासृत्याऽऽसनं (समाश्वास्यासनं) तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥ ६ ॥

अथैतानब्रवीद्वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः । कच्चिन्नहानिस्तपसःस्वाध्यायस्यश्रुतस्यच
ततश्च सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम् । ज्ञानं तद्ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि
इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्म्मतत्पराः । शुश्रूषाजायतेचैषांवक्तुमर्हसि तत्त्वतः

ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात्त्वयोदितम् ।
मुनीनां व्याहृतं पूर्व्वं विष्णुना कूर्म्मरूपिणा ॥ १३ ॥

श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीसुतः । प्रणम्यशिरसारुद्रं वचःप्राहसुखावहम्

व्यास उवाच

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैःपुरा । सनत्कुमारप्रमुखैः संस्वयं समभाषत
सनत्कुमारःसनकस्तथैवचसनन्दनः । अङ्गिरारुद्रसहितोभृगुः परमधर्म्मवित् ॥ १६
कणादः कपिलो गर्गोवामदेवोमहामुनिः । शुक्रोवशिष्टोभगवान्सर्व्वेसंयतमानसाः
परस्परं विचार्य्यैते संयमाविष्टचेतसः । ततवन्तस्तपो घोरंपुण्येवदरिकाश्रमे
अपश्यंस्ते महायोगमृषिधर्म्मसुतं मुनिम् । नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा॥
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैःसर्ववेदसमुद्भवैः । प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्तायोगिनोयोगवित्तमम्
विज्ञाय वाञ्छितं तेषांभगवानपिसर्व्ववित् । प्राहगम्भीरयावाचाकिमर्थंतप्यतेतपः
अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानंसनातनम् । साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम्
वयंसंयममापन्नाः सर्वेवै ब्रह्मवादिनः । भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नाःपुरुषोत्तमम् ॥ २३ ॥
त्वंवेत्सि परमं गुह्यंसर्वन्तुभगवानृषिः । नारायणःस्वयंसाक्षात्पुराणोऽव्यक्तपूरुषः
नह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वरम् । सत्वमस्माकमचलं संशयं छेत्तुमर्हसि

किं कारणमिदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा ।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किन्निमित्तकः ॥ २६ ॥

कः संसार इतीशानः को वा सर्वंप्रपश्यति । किं तत्परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि
एवमुक्तवातुमुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम् । विहायतापसंरूपं संस्थितंस्वेन तेजसा

विभ्राजमानं विमलं प्रभामण्डलमंण्डितम् ।श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम्
शङ्खचक्रगदापाणिं शार्ङ्गहस्तं श्रिया वृतम् । न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैवतेजसा
तदन्तरेमहादेवःशशाङ्काङ्कितशेखरः । प्रसादाभिमुखोरुद्रःप्रादुरासीन्महेश्वरः ॥ ३१ ॥
निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम् । तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम्
जयेश्वर! महादेव! जय भूतपते! शिव !। जयाशेषमुनीशान! तपसाऽभिप्रपूजित !॥३३
सहस्रमूर्त्ते विश्वात्मन्जगद्यन्त्रप्रवर्त्तक ! । जयानन्त! जगज्जन्मत्राणसंहारकारक !॥
सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित !। जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर

संस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः ।
समालिङ्ग्य हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा ॥ ३६ ॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः । इमं समागता देशंकिन्नुकार्य्यंमयाच्युत
आकर्ण्य तस्य तद्वाक्यं देवदेवोजनार्दनः । प्राहदेवोमहादेवंप्रसादाभिमुखंस्थितम्
इमे हि मुनयोदेवतापसाःक्षीणकल्मषाः । अभ्यागतानांशरणंसम्यग्दर्शनकांक्षिणाम्

यदि प्रसन्नो भगवान्मुनीनां भावितात्मनाम् ।
सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि ॥ ४० ॥
त्वं हि वेत्सि स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव !।
वद त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाचमुनिपुङ्गवान् । प्रदर्शयन्योगसिद्धिंनिरीक्ष्य वृषभध्वजम्
सन्दर्शनान्महेशस्य शङ्करस्याथ शूलिनः । कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वतः
द्रष्टुमर्हथ देवेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् । ममैव सन्निधाने स यथावद्वक्तुमीश्वरः ॥
निशम्य विष्णोर्वचनंप्रणम्यवृषभध्वजम् । सनत्कुमारप्रमुखाःपृच्छन्तिस्ममहेश्वरम्
अथास्मिन्नन्तरेदिव्यमासनंविमलंशिवम् । किमप्यचिन्त्यंगगनादीश्वरार्थेसमुद्बभौ
तत्राऽऽससादयोगात्माविष्णुनासहविश्वकृत् ।तेजसापूरयन्विश्वंभातिदेवोमहेश्वरः
ततो देवाधिदेवेशं शङ्करं ब्रह्मवादिनः । विभ्राजमानं विमले तस्मिन्ददृशुरासने ॥
तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरे किल । यदन्तरा सर्वमेतद्यतोऽभिन्नमिदं जगत् ॥

स वासुदेवमीशानमीशं दद्दृशिरे परम् । प्रोवाच पृष्टो भगवान्मुनीनां परमेश्वरः ॥

निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम् ।
तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयाऽनघाः ॥
प्रशान्तमनसः सर्व्वे विशुद्धं ज्ञानमैश्वरम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

ईश्वरेणशुद्धपरमात्मात्मस्वरूपवर्णनपूर्वकयोगवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद्विज्ञानं ममगुह्यं सनातनम् । यन्न देवाविजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः
इदं ज्ञानं समाश्रित्यब्राह्मीभूता द्विजोत्तमाः । न संसारं प्रपद्यन्तेपूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः
गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद्गोपनीयं प्रयत्नतः । वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम्

आत्मायं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः ।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ॥ ४ ॥

सोऽन्तर्य्यामीसपुरुषः स प्राणःसमहेश्वरः । स कालोऽत्रतदव्यक्तंसचवेदइतिश्रुतिः
अस्माद्विजायतेविश्वमत्रैवप्रविलीयते । स मायीमाययाबद्धः करोतिविविधास्तनूः
न चाप्ययं संसरति न संसारमयःप्रभुः । नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दःस्पर्शएवच । न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्त्ता न वागपि
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः । नचकर्त्तानभोक्तावानचप्रकृतिपूरुषौ
न माया नैव च प्राणा न चैव परमार्थतः । यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते
तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः । छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ

तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौपरमार्थतः । तथात्मामलिनःसृष्टो विकारीस्यात्स्वरूपतः

न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ।

पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः ॥ १३ ॥

विकारहीनं निर्द्वन्द्वमानन्दात्मानमव्ययम् ।

अहं कर्त्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः ॥ १४ ॥

सा चाहङ्कारकर्तृत्वादात्मन्यारोपिताजनैः । वदन्तिवेदविद्वांसःसाक्षिणंप्रकृतेःपरम्

भोक्तारमक्षरं बुद्धं सर्वत्र समवस्थितम् । तस्मादज्ञानमूलोहि संसारः सर्वदेहिनाम्

अज्ञानादन्यथाज्ञानात्तत्त्वं प्रकृतिसङ्गतम् । नित्योदितंस्वयंज्योतिः सर्वगःपुरुषःपरः

अहङ्काराविवेकेन कर्त्ताहमिति मन्यते । पश्यन्तिऋषयोऽव्यक्तंनित्यं सदसदात्मकम्

प्रधानं पुरुषं बुद्ध्वाकारणंब्रह्मवादिनः । तेनायंसङ्गतःस्वात्मा कूटस्थोऽपिनिरञ्जनः

स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वतः ।

अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद्दुःखं तथेतरत् ॥ २० ॥

रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः ।

कर्म्माण्यस्य महान्दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थितिः ॥ २१ ॥

तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः । नित्यं सर्वत्र गुह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्ज्जितः ॥

एकः सन्तिष्ठते शक्त्या मायया न स्वभावतः । तस्माद्द्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः

भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया ।

यथा च धूमसम्पर्कान्नाऽऽकाशो मलिनो भवेत् ॥ २४ ॥

अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्नलिप्यते । यथा स्वप्रभयाभाति केवलः स्फटिकोपलः

उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते । ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः ॥

अर्थस्वरूपमेवाऽन्ये पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ।

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः ॥ २७ ॥

दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्ज्ञानदृष्टिभिः । यथा स लक्ष्यते रक्तः केवलं स्फटिको जनैः

रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत्परमपूरुषः । तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः

उपासितव्यो मन्तव्यःश्रोतव्यश्चमुमुक्षुभिः । यदा मनसि चैतन्यं भातिसर्वत्रसर्वदा

योगिनः श्रद्दधानस्य तदा सम्पद्यते स्वयम् ।

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ॥ ३१ ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा । यदासर्वाणिभूतानि समाधिस्थोनपश्यति

एकीभूतःपरेणासौतदाभवतिकेवलम् । यदासर्वेप्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिस्थिताः

तदासावमृतीभूतः क्षेमंगच्छतिपण्डितः । यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥

तत एवच विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते सदा । यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः

मायामात्रं तदा सर्वं जगद्भवति निर्वृतः ॥ ३८ ॥

यदा जन्मजरादुःख व्याधीनामेकभेषजम् । केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदाशिवः

यथा नदीनदालोके सागरेणेकतांययुः । तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत्

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः ।

अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥ ३९ ॥

विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मंनिर्विकल्पंतदव्ययम् । अज्ञानमितरत्सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम्

एतद्वः कथितं साङ्ख्यं भाषितंज्ञानमुत्तमम् । सर्ववेदान्तसारं हियोगस्तत्रैकचित्तता

योगात्सञ्जायते ज्ञानंज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते । योगज्ञानाभियुक्तस्यनावाप्यंविद्यतेक्वचित्

यदेव योगिनो यान्ति साङ्ख्यैस्तदति गम्यते ।

एकं सांख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति स तत्त्ववित् ॥ ४३ ॥

अन्ये हि योगिनोविप्राह्यैश्वर्य्यासक्तचेतसः । मज्जन्तितत्रतत्रैव येचान्ये कुण्ठबुद्धयः

यत्तत्सर्वमतं दिव्यमैश्वर्यममलं महत् । ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात् ॥

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः । कीर्त्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः

सर्वरूपः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः । सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः

अपाणिपादो जवगो (जवनो) ग्रहीता हृदि संस्थितः ।

अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम् ॥ ४८ ॥

वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन । प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ॥४९

पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मनः सूक्ष्मदर्शिनः। निर्गुणामलरूपस्य यदैश्वर्य्यमनुत्तमम्
यन्न देवा विजानन्ति मोहितामममायया। वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वंब्रह्मवादिनः
नाहं प्रशस्तः सर्वस्य मायातीतःस्वभावतः। प्रेरयामितथापीदं कारणं सूरयोविदुः
यतो गुह्यतमं देहं सर्वगंतत्त्वदर्शिनः। प्रविष्टा मम सायुज्यंलभन्ते योगिनोऽव्ययम्
ये हि मायामतिक्रान्ता मम याविश्वरूपिणी। लभन्तेपरमंशुद्धं निर्वाणन्ते मयासह
न तेषां परमा वृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद्वेदानुशासनम्
तत्पुत्रशिष्ययोगिभ्योदातव्यंब्रह्मवादिभिः। मदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्यं योगसमाश्रयम्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे ईश्वरेणशुद्धपरमात्मस्वरूपवर्णनपूर्वकयोगवर्णनंनाम ।द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ईश्वरेणप्रकृतिपुरुषयोर्वर्णनम्

ईश्वर उवाच

अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः। तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद्ब्रह्ममयञ्जगत्
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २ ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम्
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम्। निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम्
अभिन्नं भिन्नसंस्थानंशाश्वतंध्रुवमव्ययम्। निर्गुणं परमं ज्योतितज्ज्ञानंसूरयोविदुः
स आत्मासर्वभूतानांसबाह्याभ्यन्तरःपरः। सोऽहं सर्वत्रगः शान्तोज्ञानात्मापरमेश्वरः
मयाततमिदंविश्वंजगत्स्थावरजङ्गमम्। मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तंवेदविदोविदुः
प्रधानं पुरुषञ्चैव तद्वस्तु समुदाहृतम्।

तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोगजः परः ॥ ८ ॥

त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम् । तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ॥

महदाद्यंविशेषान्तंसम्प्रसूतेऽखिलञ्जगत् । या सा प्रकृतिरुद्दिष्टामोहिनीसर्वदेहिनाम्

पुरुषः प्रकृतिस्थो वै भुङ्क्ते यः प्राकृतान् गुणान् ।

अहङ्कारविमुक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः ॥ ११ ॥

आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानितिचकथ्यते । विज्ञातृशक्तिविज्ञानात्ह्यहङ्कारस्तदुस्थितः

एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।

स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः ॥ १३ ॥

तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्चजन्मसु । स विज्ञानात्मकस्तस्य मनःस्यादुपकारकम्

तेनाऽपि तन्मयस्तस्मात् संसारः पुरुषस्य तु ।

स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात्कालेन सोऽभवत् ॥ १५ ॥

कालःसृजति भूतानि कालः संहरतेप्रजाः । सर्वेकालस्यवशगानकालःकस्यचिद्वशे

सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः । प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञःपुरुषोत्तमः

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः । मनसश्चाप्यहङ्कारमहङ्कारान्महान्परः ॥१८

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदञ्जगत् ॥

प्राणात्परतरं व्योम व्योमतीतोऽग्निरीश्वरः ।

सोऽहं ब्रह्माऽव्ययः शान्तो मायातीतमिदञ्जगत् ॥ २० ॥

नास्तिमत्तः परंभूतंमाञ्चविज्ञायमुच्यते । नित्यं नास्तीतिजगतिभूतंस्थावरजङ्गमम्

ऋते मामेवमव्यक्तं व्योरूपं महेश्वरम् । सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदाजगत्

मायी मायामयोदेवः कालेन सह सङ्गतः । मत्सन्निधावेषकालः करोति सकलञ्जगत्

नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ॥ २३ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्यासस्म्वादे प्रकृतिपुरुषयोर्वर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

शिवमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः । माहात्म्यं देवदेवस्य येन सर्वं प्रवर्त्तते
नाहं तपोभिर्विविधैर्नदानेन चेज्यया । शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥
अहंहिसर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वतः । मांसर्वसाक्षिणंलोकोनजानातिमुनीश्वराः

यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तकः परः ।
सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥

न मांपश्यन्ति मुनयः सर्वे पितृदिवौकसः । ब्रह्माचमनवःशक्रो येचान्येप्रथितौजसः
गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् । यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ॥

सर्वे लोका न पश्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ॥ ७ ॥

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः । सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मासर्वसंप्लुतः
मांपश्यन्तीहविद्वांसोधार्मिकावेदवादिनः । तेषांसन्निहितोनित्यंयेमांनित्यमुपासते
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याधार्मिकामामुपासते । तेषां ददामितत्स्थानमानन्दंपरमम्पदम्

अन्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः ।
भक्तिमन्तःप्रमुच्यन्ते कालेनापि हि सङ्गताः ॥ ११ ॥

मद्भक्ता न विनश्यन्तिमद्भक्ता वीतकल्मषाः । आदावेव प्रतिज्ञातं न मे भक्तःप्रणश्यति
योवैनिन्दतितंमूढोदेवदेवं स निन्दति । यो हि पूजयते भक्त्या स पूजयतिमांसदा
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् । यो मे ददातिनियतं स मे भक्तःप्रियोमम
अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । विदधौ दत्तवान्वेदानशेषानात्मनिःसृतान्
अहमेवहिसर्वेषांयोगिनां गुरुरव्ययः । धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम्

अहं हि सर्व संसारान्मोचको योगिनामिह । संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्ज्जितः ॥
अहमेव हि संहर्त्ता संस्रष्टा परिपालकः । माया वैमामिकाशक्तिर्मायालोकविमोहनी
ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते ।
नाशयामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥ १६ ॥
अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः । आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च
एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधञ्जगत् ।
(नाऽहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रिताः ॥)
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता ॥ २१ ॥
अन्याचशक्तिर्विपुलासंस्थापयतिमेजगत् । भूत्वानारायणोऽनन्तोजगन्नाथोजगन्मयः
तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलञ्जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी ॥ २३ ॥
ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे । अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ॥
सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम । यो हि ज्ञानेन मान्नित्यमाराधयति नान्यथा
अन्ये च हरये भक्ता मदाराधनकारिणः । तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येवनावर्त्तन्ते च वैपुनः
मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मय्येव संस्थितं चित्तं मया सम्प्रेर्यते जगत् ॥ २७ ॥
नाहं प्रेरयिताविप्राः परमं योगमास्थितः । प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्योवेद सोऽमृतः
पश्याम्यशेषमेवेदं वर्त्तमानं स्वभावतः । करोति कालो भगवान्महायोगेश्वरःस्वयम्
योऽहं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः ।
योगीश्वरोऽसौ भगवान्महायोगेश्वरः स्वयम् ॥ ३० ॥
महत्त्वं सर्वसत्त्वानां वरत्वात् परमेष्ठिनः । प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मामहाब्रह्ममयोऽमलः
यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।सोऽविकल्पेन योगेन युज्यतेनात्र संशयः
सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रितः ।
नृत्यामि योगी सततं यस्तद्वेद स योगवित् ॥ ३२ ॥

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम् । प्रसन्नचेतसेदेयं धार्मिकायाऽऽहिताग्नये ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
ऋषिव्याससम्वादे शिवमाहात्म्यवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

शिवनृत्यवर्णनपूर्वकशिवस्तुतिवर्णनम्

व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्योगिनां परमेश्वरः । ननर्त्त परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन् ॥१॥
तं ते ददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम् । नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले ॥
यं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः । तमीशं सर्वभूतानामाकाशे ददृशुः किल
यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत् । नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशःखलुदृश्यते
यत्पादपङ्कजं स्मृत्वा पुरुषो ज्ञानजम्भयम् । जहाति नृत्यमानन्तं भूतेशं ददृशुः किल

केचिन्निद्राजितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः ।
ज्योतिर्म्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल ॥ ६ ॥

योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः । तमेवं मोचनं रुद्रमाकाशे ददृशुःपरम्
सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम् । सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥८॥
वसानं चर्मवैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम् । दण्डपाणिं त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम्

ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य धिष्ठितम् ।
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १० ॥

सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलञ्जगत् । नृत्यन्तन्ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥
महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम् । पशूनां पतिमीशानं आनन्दं ज्योतिरव्ययम्
पिनाकिनं विशालाक्षंभेषजंभवरोगिणाम् । कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम्

उमापतिं विशालाक्षं योगानन्दमयं परम् । ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम् ॥
शाश्वतैश्वर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम् । महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम् ॥
योगिनांहृदि तिष्ठन्तंयोगमायासमावृतम् । क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम्
ईश्वरेणैक्यमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः । दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम् ॥
कृतार्थम्मेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः ॥ १७ ॥

सनत्कुमारः सनको भृगुश्च सनातनश्चैव सनन्दनश्च ।
रैभ्योऽङ्गिरा वामदेवोऽथ शुक्रो महर्षिरत्रिः कपिलो मरीचिः ॥ १८ ॥
दृष्ट्वाऽथ रुद्रं जगदीशितारं तं पद्मनाभाश्रितवामभागम् ।
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना कृताञ्जलिं स्वेषु शिरः सुभूयः ॥ १९ ॥
ओङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देवमन्तःशरीरं निहितं गुहायाम् ।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभिरानन्दपूर्णाहितमानसा वै ॥ २० ॥

मुनय ऊचुः

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम् ।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥ २१ ॥
पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम् ।
ध्यात्वाऽऽत्मस्थमचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परञ्च ॥ २२ ॥
त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः सर्वानुभूस्त्वं परमाणुभूतः ।
अणोरणीयान्महतो महीयांस्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥ २३ ॥
हिरण्यगर्भोजगदन्तरात्मा त्वत्तोऽस्ति जातः पुरुषः पुराणः ।
सञ्जायमानो भवता निसृष्टो यथाविधानं सकलं स सद्यः ॥ २४ ॥
त्वत्तो वेदाः सकलाः सम्प्रसूतास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते ।
पश्यामस्त्वाञ्जगतो हेतुभूतं नृत्यन्तं स्वेहृदये सन्निविष्टम् ॥ २५ ॥
त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं मायावी त्वं जगतामेकनाथः ।

नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्ना योगात्मानं नृत्यन्तं दिव्यनृत्यम् ॥ २६ ॥

पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामः ।
सर्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय ॥ २७ ॥
ओङ्कारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम् ।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रभावम् ॥ २८ ॥
स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः ।
शान्तात्मानः सत्यसन्धं वरिष्ठं विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ॥ २९ ॥
(भुवोनाशोऽनादिमान्विश्वरूपो ब्रह्मा विष्णुः परमेष्ठी वरिष्ठः ।
स्वात्मानन्दमनुभूय विशन्ते स्वयं ज्योतिरचला नित्यमुक्ताः) ॥ ३० ॥
एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपम् ।
त्वामेवान्ते निलयं विन्दतीदं नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्नाः ॥ ३१ ॥
एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।
वन्द्यं त्वां ये शरणं सम्प्रपन्ना मायामेतां ते तरन्तीह विप्राः ॥ ३२ ॥
त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं ब्रह्मं गृणन्तं हरिमग्निमीशम् ।
रुद्रं नित्यमनिलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ॥ ३३ ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्यपरं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ॥ ३४ ॥
त्वमेवविष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः ।
त्वं विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ ३५ ॥
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
चिन्मात्रमव्यक्तमनन्तरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिगुणाश्च ॥ ३६ ॥
यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तवरूपमेतत्तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ॥ ३७ ॥
योगेश्वरं भद्रमनन्तशक्तिं परायणं ब्रह्मतनुं पुराणम् ।
नमामसर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते! महेश! ॥ ३८ ॥

त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषसंसारबीजं निलयं प्रयाति ।
मनोनियम्य प्रणिधायकायं प्रसादयामो वयमेकमीशम् ॥ ३९ ॥
नमो भवायाथ भवोद्भवाय कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ॥ ४० ॥

ततः स भगवान्प्रीतः कपर्द्दीवृषवाहनः । संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद्भवः॥४१
ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत्समवस्थितम् । दृष्ट्वानारायणं देवं विस्मितं वाक्यमब्रुवन्
भगवन् !भूतभव्येश! गोवृषाङ्कितशासन !। दृष्ट्वा ते परमं रूपं निवृत्ताः स्मः सनातन
भवत्प्रसादादमले परस्मिन्परमेश्वरे । अस्माकंजायतेभक्तिस्त्वय्येवाऽव्यभिचारिणी

इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शङ्कर !।
भूयोऽपि चैवं यन्नित्यं यांथात्म्यं परमेष्ठिनः ॥ ४५ ॥
स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः ।
प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम् ॥ ४६ ॥

इतिश्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे शिवनृत्यवर्णनपूर्वकशिवस्तुतिवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

शिवमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत्परमेष्ठिनः । वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यंयत्तद्वेदविदो विदुः
सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता । सर्वलोकैकसंहर्त्ता सर्वात्माऽहं सनातनम्
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी महेश्वरः । मध्येचान्तः स्थितं सर्वंनाहंसर्वत्रसंस्थितः
भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपञ्च मामकम् । ममैषा ह्युपमा विप्रा माया वै दर्शिता मया

सर्वेषामेव भावानामन्तरं समवस्थितः । प्रेरयामि जगत्कृस्नं क्रियाशक्तिरियं मम
मयेदं चेष्टते विश्वं तद्धै भावानुवर्त्तिमे । सोऽहंकालोजगत्कृस्नंप्रेरयामिकलात्मकम्
एकांशेन जगत्कृस्नं करोमि मुनिपुङ्गवाः । संहराम्येकरूपेणस्थितावस्था ममैव तु
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्त्तकः । क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ

ताभ्यां सञ्जायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ।
महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते ॥ ६ ॥

यो हि सर्वजगत्साक्षीकालचक्रप्रवर्त्तकः । हिरण्यगर्भोमार्त्तण्डःसोऽपिमद्देहसम्भवः

तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ।
दत्तवानात्मवान्वेदान् कल्पादौचतुरो द्विजाः ॥ ११ ॥

समन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः । दिव्यंतन्मामकैश्वर्वं सर्वदावगतःस्वयम्
ससर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेनसर्ववित् । भूत्वा चतुर्मुखःसर्गं सृजत्येवात्मसम्भवः

योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
ममैव च परा मूर्त्तिः करोति परिपालनम् ॥ १४ ॥

योऽन्तकः सर्वभूतानांरुद्रःकालात्मकःप्रभुः । मदाज्ञयाऽसौसततंसंहरिष्यतिमेतनुः
हव्यंवहतिदेवानांकव्यंकव्याशिनामपि । पाकञ्चकुरुतेवह्निःसोऽपि मच्छक्तिनोदितः
भुक्तमाहारजातञ्च पचते तदहर्निशम् । वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ॥

योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गवः ।
सोऽपि सञ्जीवयेत्कृतस्नमीश्वरस्य नियोगतः ॥ १८ ॥

योऽन्तस्तिष्ठतिभूतानांवहिर्देवःप्रभञ्जनः । मदाज्ञयाऽसौ भूतानांशरीराणिबिभर्त्तिहि
योऽपि सञ्जीवनोनॄणां देवानाममृताकरः । सोमः समन्नियोगेन नोदितःकिलवर्त्तत्त

यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रभासयति सर्वशः ।
सूर्य्यो वृष्टिं वितनुते स्वोस्त्रेणैव स्वयम्भुवः ॥ २१ ॥

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः । यज्वनां फलदो देवो वर्त्ततेसमदाज्ञया
यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्त्तते नियमादिह । यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः

योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः । सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्त्ततेसदा
यःसर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः । मन्नियोगादसौ देवोवर्त्तते निर्ऋतिःसदा
वेतालगणभूतानांस्वामी भोगफलप्रदः । ईशानः किलभक्तानांसोऽपितिष्ठेन्मदाज्ञया

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः ।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्त्ततेऽसौ मदाज्ञया ॥ २७ ॥

यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्त्तते विघ्ननायकः । विनायको धर्मरतः सोपि मद्वचनात्किल

योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ।
स्कन्दोऽसौ वर्त्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिनोदितः ॥ २६ ॥

ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्यामहर्षयः । सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैवनियोगतः
याचश्रीःसर्वभूतानां ददातिविपुलां श्रियम् । पत्नीनारायणस्यासौवर्त्ततेमदनुग्रहात्
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती । सापीश्वरनियोगेन नोदितासंप्रवर्त्तते
याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात्तारयिष्यति । सावित्रीसंस्मृताचापिमदाज्ञानुविधायिनी
पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी । यापि ध्याता विशेषेण सापिमद्वचनानुगा
योऽनन्तमहिमानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः । दधाति शिरसालोकंसोऽपिदेवनियोगतः
योग्निःसम्वर्त्तकोनित्यंवडवारूपसंस्थितः। पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्यनियोगतः

ये चतुर्द्दश लोकेऽस्मिन्मनवः प्रथितौजसः ।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः ॥ ३७ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाऽश्विनौ ।
अन्याश्च देवताः सर्वाः शास्त्रेणैवविनिर्म्मिताः ॥ ३८ ॥
गन्धर्वा गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ३६ ॥

कलाकाष्ठानिमेषाश्चमुहूर्त्तादिवसाःक्षपाः । ऋतवःपक्षमासाश्चस्थिताःशास्त्रेप्रजापतेः
युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने । पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ॥
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । नियोगादेव वर्त्तन्ते देवस्यपरमात्मनः

पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।
ब्रह्माण्डानि च वर्त्तन्ते सर्वाण्येव स्वयम्भुवः ॥ ४३ ॥

अतीतान्यप्यसंख्यानिब्रह्माण्डानिममाज्ञया । प्रवृत्तानि पदार्थौघैःसहितानिसमन्ततः
ब्रह्माण्डनिभविष्यन्तिसहचात्मभिरात्मगैः । करिष्यन्तिसदैवाज्ञांपरस्यपरमात्मनः
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च । भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्त्तते
याशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम् । मायाविवर्त्तते नित्यंसापीश्वरनियोगतः
यो वै देहभृतांदेवः पुरुषः पठ्यतेपरः । आत्मासौ वर्त्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः
विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत्पदम् । सापि बुद्धिर्महेशस्य नियोगवशवर्त्तिनी

बहुनाऽत्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।
मयैव प्रेर्य्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत् ॥ ५० ॥

अहंहि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः । परमात्मापरं ब्रह्ममत्तो ह्यन्योनविद्यते
इत्येतत्परमं ज्ञानं युष्माकं कथितंमया । ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
ऋषिव्याससम्वादे शिवमहिमावर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

शिवविभूतियोगवर्णनम्

ईश्वर उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः । यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत्पुनः
परात्परतरं ब्रह्म शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् । नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम ॥
अहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः । मायाविनामहंदेवः पुराणो हरिरव्ययः

योगिनामस्म्यहं शम्भुः स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा ।
आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावकः ॥ ४ ॥

रुद्राणां शङ्करश्चाऽहं गरुडः पततामहम् । ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम्

ऋषीणाञ्च वशिष्ठोऽहं देवानाञ्च शतक्रतुः ।
शिल्पिनां विश्वकर्म्माऽहं प्रह्लादः सुरविद्विषाम् ॥ ६ ॥
मुनीनामप्यहं व्यासो गणानाञ्च विनायकः ।
वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ ७ ॥

पर्व्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः । वज्रम्प्रहरणानाञ्च व्रतानां सत्यमस्म्यहम्

अनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनाञ्च पावकिः ।
आश्रमाणां गृहस्थोऽहमीश्वराणां महेश्वरः ॥ ६ ॥

महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम् । कुवेरःसर्वयक्षाणांतृणानाञ्चैववीरुधः

प्रजापतीनान्दक्षोऽहं निर्ऋतिः सर्वरक्षसाम् ।
वायुर्वलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम् ॥ ११ ॥

मृगेन्द्राणाञ्चसिंहोऽहं यन्त्राणांधनुरेव च । वेदानां सामवेदोऽहं यजुषांशतरुद्रियम्
सावित्रीसर्वजप्यानांगुह्यानांप्रणवोऽस्म्यहम् । सूक्तानांपौरुषंसूक्तंज्येष्ठसामचसामसु

सर्ववेदार्थविदुषां मनुः स्वायम्भुवोऽस्म्यहम् ।
ब्रह्मावर्त्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम् ॥ १४ ॥

विद्यानामात्मविद्याऽहंज्ञानानामैश्वरं परम् । भूतानामस्म्यहंव्योमतत्त्वानांमृत्युरेवच
पाशानामस्म्यहं मायाकालः कलयतामहम् । गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वरः

यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोवलाधिकम् ।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम् ॥ १७ ॥

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्त्तिनः । तेषांपतिरहं देवः स्मृतःपशुपतिर्बुधैः
मायापाशेनवध्नामिपशूनेतान् स्वलीलया । मामेव मोचकं प्राहुः पशूनांवेदवादिनः

मायापाशेन वद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते ।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम् ॥ २० ॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्म्मगुणाइति । एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्चपशुबन्धनाः

मनो बुद्धिरहङ्कारः खाऽनिलाग्निजलानि भूः ।
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे ॥ २२ ॥
श्रोत्रन्त्वक् चक्षुषीजिह्वाघ्राणञ्चैवतुपञ्चमम् । पायूपस्थंकरौपादौवाक्‌चैवदशमीमता
शब्दः स्पर्शश्चरूपञ्च रसोगन्धस्तथैव च । त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानिप्राकृतानि च
चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानंगुणलक्षणम । अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतःपरम् ॥२५॥
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तां प्रकृतिं विदुः ॥ २६ ॥
सत्त्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं राजसंसमुदाहृतम् । गुणानां बुद्धिवैषम्याद्वैषम्यं कवयोविदुः
धर्माधर्मावितिप्रोक्तौ पाशौद्वौकर्मसंज्ञितौ । मय्यर्पितानिकर्माणिनवन्धायविमुक्तये
अविद्यामस्मितां रागं द्वेषञ्चाभिनिवेशनम् ।
क्लेशाख्यांस्तान् स्वयं प्राह पाशानात्मनिवन्धनात् ॥ २९ ॥
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते । मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति
सएव मूलप्रकृतिःप्रधानंपुरुषोऽपि च । विकारामहदादीनिदेवदेवःसनातनः ॥ ३१ ॥
सएव वन्धः स च वन्धकर्त्ता स एव पाशः पशुभृत्स एव ।
स वेद सर्वन्न च तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
ऋषिव्याससंवादे शिवविभूतियोगवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

ईश्वरेणसंसारतरणोपायकथनम्

ईश्वर उवाच

अन्यद्गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः । येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम्
अयं ब्रह्मा तमः शान्तः शाश्वतोनिर्मलोऽव्ययः ।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः ॥ २ ॥
मम योनिर्महद्ब्रह्म तत्र गर्भंदधाम्यहम् । मूलमायाभिधानन्तं ततो जातमिदंजगत्
प्रधानं पुरुषोह्यात्मामहद्भूतादिरेव च । तन्मात्राणिमनोभूतानीन्द्रियाणिचजज्ञिरे
ततोऽण्डमभवद्धैममर्ककोटिसमप्रभम् । तस्मिञ्जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्याचोपबृंहितः
ये चान्ये बहवोजीवास्तन्मयाः सर्वएवते । न मांपश्यन्तिपितरंमाययाममोहिताः
यासु योनिषु ताः सर्वाः सम्भवन्तीहमूर्त्तयः । तांमातरंपरांयोनिंमामेवपितरंविदुः
योमामेवंविजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम् । सवीरः सर्वलोकेषु नमोहमधिगच्छति
ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः । ओङ्कारमूर्त्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः
समं सर्वेषु भूतेषुतिष्ठन्तंपरमेश्वरम् । विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परांगतिम् ॥ ११ ॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् । प्रधानविनियोगज्ञःपरंब्रह्माधिगच्छति
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वच्छन्दता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥ १३ ॥
तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि ।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं बन्धः प्रोक्तो विनयेनापि तेन ॥ १४ ॥
या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः ।

तस्या एकः परमेष्ठी पुरस्तान्माहेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः ॥ १५ ॥
ब्रह्मायोगी परमात्मा महीयान् व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः ।
एको रुद्रो मृत्युमव्यक्तमेकं बीजं विश्वं देव एकः स एव ॥ १६ ॥
तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं त्वामेवाऽऽत्मा केचिदन्यं तमाहुः ।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महादेवः प्रोच्यते विश्वरूपः ॥ १७ ॥
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।
हिरण्मयं बुद्धिमतां पराङ्गतिं स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥ १८ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणेउत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्यासस्म्वादे संसारतरणोपायकथनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

निष्कलस्वरूपवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

निष्कलोनिर्मलोनित्योनिष्क्रियः परमेश्वरः । ततोवदमहादेवविश्वरुपः कथं भवान्

ईश्वर उवाच

नाहं विश्वो न विश्वश्च मामृते विद्यते द्विजाः !।
माया निमित्तमात्राऽस्ति सा चाऽऽत्मनि मयाश्रिता ॥ २ ॥

अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्तिसमाश्रया । तन्निमित्तःप्रपञ्चोऽयमव्यक्ताज्जायतेखलु
अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दंज्योतिरक्षरम् । अहमेव परं ब्रह्म मत्तोह्यन्यन्न विद्यते ॥
तस्मान्मे विश्वरूपत्वंनिश्चितंब्रह्मवादिभिः । एकत्वे च पृथक्त्वेच प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्
अहंतत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः । अकारणं द्विजाः प्रोक्ता न दोषो ह्यात्मनस्तथा

अनन्ताः शक्तयोऽव्यक्ता मायया संस्थिता ध्रुवाः।
तस्मिन्दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ॥ ७ ॥

अभिन्नं वक्ष्यते भिन्नं ब्रह्माव्यक्तं सनातनम्। एकया मायया युक्तमनादिनिधनं ध्रुवम्
पुंसोऽन्याभूद्यथा भूतिरन्ययानतिरोहितम्। अनादिमध्यन्तिष्ठन्तंचेष्टतेविद्ययाकिल
तदेतत्परमव्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्। तदक्षरं परं ज्योतिस्तद्विष्णोः परमं पदम्
तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्। तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते
यतो वाचो निवर्त्तन्तेअप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्विभेतिनकुतश्चन

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं पुरुषं पुरस्तात्।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥ १३ ॥
अस्मात्परं नाऽपरमस्ति किञ्चिद्यज्ज्योतिषां ज्योतिरेकं दिविस्थम्।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वानात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥ १४ ॥
तदप्यहं कलिलं गूढदेहं ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधामा।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा यत्र गत्वा न निवर्तेत भूयः ॥ १५ ॥
हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे यद्दै दिवि प्रतिभातीव तेजः।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा विभ्राजमानं विमलं व्योमधाम ॥ १६ ॥
ततः परम्परिपश्यन्ति धीरा आत्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात्।
स्वयं प्रभुः परमेष्ठी महीयान् ब्रह्मानन्दी भगवातीश एषः ॥ १७ ॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १८ ॥

सर्वायनशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मादन्यन्न विद्यते ॥
इत्येतदीश्वरज्ञानमुक्तं वो मुनिपुङ्गवाः। गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम् ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे निष्कलस्वरूपवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

शिवस्यपरब्रह्मस्वरूपवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अलिङ्गमेकमव्यक्तलिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम्।

स्वयञ्ज्योतिः परन्तत्त्वंपूर्वं व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥ १ ॥

अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम्। निर्गुणं सिद्धिविज्ञानं तद्वै पश्यन्ति सूरयः
तन्नष्टस्वान्तसङ्कल्पा नित्यंतद्भावभाविताः। पश्यन्तितत्परंब्रह्मयत्तल्लिङ्गमिति श्रुतिः
अन्यथान हि मां द्रष्टुं शक्यंवैमुनिपुङ्गवाः। न हि तद्विद्यतेज्ञानं येन तज्ज्ञायतेपरम्
एतत्तत्परमं स्थानं केवलं कवयो विदुः। अज्ञानतिमिरं ज्ञानं यस्मान्मायामयं जगत्
यज्ज्ञानं निर्म्मलं शुद्धं निर्विकल्पन्निरञ्जनम्। ममात्मासौ तदेवैनमितिप्राहुर्विपश्चितः
येऽप्यनेकंप्रपश्यन्तितत्परंपरमं पदम्। आश्रिताःपरमान्निष्ठांबुद्ध्वैक्यंतत्त्वमव्ययम्
ये पुनःपरमन्तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम्। भक्तामांसम्प्रपश्यन्तिविज्ञेयास्ते तदात्मकाः

साक्षाद्देवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम्।

नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः ॥ ६ ॥

भजन्ते परमानन्दंसर्वगंजगदात्मकम्। स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताःपरेव्यक्तापरस्यतु

एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम्।

निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः ॥ ११ ॥

तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमंशिवम्। स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञायप्रमुच्यते

न तत्र सूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रो नक्षत्राणां गणो नोत विद्युत्।

तद्भासितं ह्यखिलम्भाति विश्वमतीव भासममलं तद्विभाति ॥ १२ ॥

विश्वोदितंनिष्कलं निर्विकल्पं शुद्धं बृहत्परमं यद्विभाति।

अत्रान्तरे ब्रह्मविदोऽथ नित्यं पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत्स ईशः ॥ १४ ॥

नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदाः ।
प्राणानिति प्रणनेवेशितारं ध्यायन्ति वेदैरिति निश्चितार्थाः ॥ १५ ॥
न भूमिरापो न मनो न वह्निः प्रणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः ।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाशमध्ये विभाति देवः शिव एव केवलः ॥ १६ ॥
इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं ज्ञानञ्चेदं सर्ववेदेषु गीतम् ।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे युञ्जीत योगंप्रयतो ह्यजस्रम् ॥ १७ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे परब्रह्मस्वरूपवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

पशुपाशविमोक्षणयोगवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम् । येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम्
योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् । प्रसन्नं जायतेज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्
योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते । योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः
एककालं द्विकालंवा त्रिकालं नित्यमेव च । ये युञ्जन्ति महायोगंते विज्ञेयामहेश्वराः
योगस्तु द्विविधोज्ञेयो ह्यभावःप्रथमोमतः । अपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः
शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपंयत्र चिन्त्यते । अभावयोगःसप्रोक्तो येनात्मानंप्रपश्यति

यत्र पश्यति चाऽऽत्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
मयैक्यं स मया योगो भाषितः परमः स्वयम् ॥ ७ ॥
ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे ।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८ ॥

यत्रसाक्षात्प्रपश्यन्ति विमुक्ताविश्वमीश्वरम् । सर्वेषामेव योगानांस योगःपरमोमतः
सहस्रशोऽथ बहुशो ये चेश्वरबहिष्कृताः । नते पश्यन्ति मामेकंयोगिनो यतमानसाः
प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा । समाधिश्चमुनिश्रेष्ठायमश्चनियमासने
मय्येकचित्ततायोगःप्रत्यन्तरनियोगतः । तत्साधनानिचान्यानियुष्माकंकथितानितु
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ । यमाःसङ्क्षेपतःप्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदानृणाम्
कर्म्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा । अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः

अहिंसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसापरं सुखम् ।
विधिना या भवेद्धिंसा त्वहिंसैव प्रकीर्त्तिता ॥ १५ ॥

सत्येनसर्वमाप्नोतिसत्येसर्वंप्रतिष्ठितम् । यथार्थकथनाचारः सत्यम्प्रोक्तं द्विजातिभिः
परद्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेन वा । स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम् ॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा । सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यम्प्रचक्षते ॥
द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छया । अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत्

तपः स्वाध्यायसन्तोषौ शौचमीश्वरपूजनम् ।
समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनः ॥ २० ॥

उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । शरीरशोषणम्प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपम्बुधाः । सत्त्वसिद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते
स्वाध्यायस्यत्रयोभेदावाचिकोपांशुमानसाः । उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः

यः शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम् ।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम् ॥ २४ ॥
ओष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याऽशब्दबोधकम् ।
उपांशुरेष निर्द्दिष्टः साध्वसौ वाचिकाज्जपात् ॥ २५ ॥

यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्ज्जितम् । चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तज्जपं विदुः
यदृच्छालाभतोवित्तं अलंपुंसोभवेदिति । प्राशस्त्यमृषयःप्राहुःसन्तोषंसुखलक्षणम्

बाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम् ॥ २८ ॥

स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनःकायकर्मभिः । सुनिश्चलाशिवेभक्तिरेतदीशस्यपूजनम्
यमाश्चनियमाःप्रोक्ताःप्राणायामन्निबोधत । प्राणः स्वदेहजोवायुरायामस्तन्निरोधनम्
उत्तमाधममध्यत्वात्त्रिधायं प्रतिपादितः । य एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भएव च

मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः ।

मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽन्तकः ॥ ३२ ॥

यः स्वेदकम्पनोच्छ्वासजनकत्वं यथाक्रमम् ।

संयोगश्च मनुष्याणामानन्दाच्चोत्तमोत्तमः ॥ ३३ ॥

सुनफाख्यं हितंयोगंसगर्भंविजयम्बुधाः । एतद्वैयोगिनांप्राहुः प्राणायामस्यलक्षणम्
सव्याहृतिं सप्रणवांगायत्रींशिरसा सह । त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामोऽथ नामतः
रेचकः पूरकश्चैवप्राणायामोऽथ कुम्भकः । प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः
रेचकोबाह्यनिश्वासः पूरकस्तन्निरोधनः । साम्येनसंस्थितिर्यासाकुम्भकः परिगीयते
इन्द्रियाणां विचरतांविषयेषु स्वभावतः । निग्रहःप्रोच्यतेसद्भिः प्रत्याहारस्तुसत्तमाः
हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्निपर्वसु मस्तके । एवमादिषु देशेषुधारणाचित्तवन्धनम्
देशावस्थितिमालम्ब्यऊर्द्ध्वंयावृत्तिसन्ततिः । प्रत्यन्तरैरसृष्टायातद्ध्यानसूरयोविदुः
एकाकारः समाधिः स्याद्देशालम्बनवर्ज्जितः । प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगशासनमुत्तमम्

धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणाः ।

ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ॥ ४२ ॥

आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा । साधनानाञ्च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम्
ऊर्व्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे । समासीनात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम्
उभे कृत्वापादतले जानूर्वोरन्तरेण हि । समासीनात्मनः प्रोक्तमासनंस्वस्तिकं परम्
एकंपादमथैकस्मिन्विष्टभ्योरसि सत्तमाः । आसीनार्द्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम्

अदेशकाले योगस्य दर्शनं न हि विद्यते ।

अग्न्यभ्यासे जले वाऽपि शुष्कपर्णचये तथा ॥ ४७ ॥

जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे । सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते । नाचरेद्देहबाधे वा दौर्मनस्यादिसम्भवे ॥
सुगुप्ते सुशुभे देशे गुहायां पर्वतस्य च । नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा ॥ ५०॥
गृहे वा सुशुभे देशे निर्ज्जने जन्तुवर्जिते । युञ्जीत योगं सततमात्मानं तत्परायणः

नमस्कृत्याऽथ योगीन्द्राञ्छिष्यांश्चैव विनायकम् ।
गुरुञ्चैव च मां योगी युञ्जीत सुसमाहितः ॥ ५२ ॥

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्द्धमथापि वा । नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः

कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितं देवं चिन्तयेत्परमेश्वरम् ॥ ५४ ॥

शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम् । धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्
ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम् । चिन्तयेत्परमं कोशं कर्णिकायां हिरण्मयम्

सर्वशक्तिमयं साक्षाद्यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम् ।
ओङ्कारवाच्यमव्यक्तं रश्मिज्वालासमाकुलम् ॥ ५७ ॥
चिन्तयेत्तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम् ।
तस्मिञ्ज्योतिषि विन्यस्य स्वानन्दं मम भेदतः ॥ ५८ ॥
ध्यायीत कोशमध्यस्थमीशं परमकारणम् ।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ५६ ॥

एतद्गुह्यतमं ज्ञानं ध्यानान्तरमथोच्यते । चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम्
आत्मानमथ कान्तारं तत्रानलसमत्विषम् । मध्ये वह्निशिखाकारं पुरुषं पञ्चविंशकम्
चिन्तयेत्परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम् । ओंकारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमुच्यते
अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम् । तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारं निरञ्जनम्
ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम् । विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः
संस्थाप्यमपि चात्मानं निर्मले परमे पदे । पावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा

[illegible] गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रिकम् ।

तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्निरादित्यमन्त्रतः ॥ ६६ ॥

चिन्तयेत्स्वात्मनीशानं परं ज्योतिःस्वरूपिणम् ।

एष पाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये ॥ ६७ ॥

सर्ववेदान्तमार्गोऽयमत्याश्रममितिश्रुतिः । एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम्
द्विजातीनान्तु कथितं भक्तानांब्रह्मचारिणाम् । ब्रह्मचर्यमहिंसाचक्षमाशौचं तपोदमः
सन्तोषः सत्यमास्तिक्यंव्रताङ्गानि विशेषतः । एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्यनलुप्यते
तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति । वीतरागभयक्रोधामन्मया मामुपाश्रिताः
वहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावयोगतः । येयथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्
ज्ञानयोगेन मां तस्माद्यजेत परमेश्वरम् । अथवाभक्तियोगेनवैराग्येणपरेण तु ७३ ॥
चेतसा वोधयुक्तेन पूजयेन्मांसदाशुचिः । सर्वकर्माणिसंन्यस्यभिक्षाशीनिष्परिग्रहः
प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् । अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रीकरण एव च
निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तः समेप्रियः । सन्तुष्टः सततं योगी यतात्माद्दृढनिश्चयः
मर्यर्पितमनोवुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः । यस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयः स हिमेप्रियः । अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः

सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो ये न:केनचित् । ७६ ॥

अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तोमामुपैष्यति । सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणोमत्परायणः
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतं परमंपदम् । चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्यमत्परः
निराशीर्निर्ममो भूत्वामामेकंशरणंव्रजेत् । त्यक्त्वाकर्मफलासङ्गंनित्यतृप्तो निराश्रयः
कर्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि कर्मणा तेन वुध्यते । निराशीयतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः
शारीरं केवलंकर्मकुर्वन्नाप्नोति तत्पदम् । यद्दृच्छालाभतृप्तस्य द्वन्द्वातीतस्यचैव हि
कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम् । मन्मनामन्नमस्कारो मद्याजीमत्परायणः

मामुपास्यति योगीशो ज्ञात्वा मां परमेश्वरम् ।

मामेवाहुः परं ज्योतिर्योगमनन्तः परस्परम् ॥ ८६ ॥

कथयन्तश्च मां नित्यंममसायुज्यमाप्नुयुः । एवंनित्याभियुक्तनांमायेयंकर्मसात्त्वगम्
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भास्वता । मद्बुद्धयो मां सततंपूजयन्तीहयेजनाः
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमंवहाम्यहम् । येचान्येभोगकर्मार्थायजन्तेह्यन्यदेवताः
तेषां तदन्तंविज्ञेयं देवतानुगतं फलम् । ये चान्ये देवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः

मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवाः ।
तस्माद्विनश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः ॥ ९१ ॥

मामेव संश्रयेदीशं सयाति परमं पदत् । त्यक्त्वापुत्रादिषुस्नेहंनिःशोकोनिष्परिग्रहः
यजेच्चामरणाल्लिङ्गं विरक्तःपरमेश्वरम् । येऽर्च्चयन्तिसदालिङ्गं त्यक्त्वाभोगानशेषतः
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमम्पदम् । परात्मनः सदा लिङ्गं केवलं रजतप्रभम्
ज्ञानात्मकंसर्वगतंयोगिनांहृदिसंस्थितम् । येचान्येनियताभक्ताभावयित्वा विधानतः
यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्च्चयन्तिमहेश्वरम् । जलेवावह्निमध्येवाव्योम्निसूर्येऽप्यथान्यतः
रत्नादौ भावयित्वेशमर्च्चयेल्लिङ्गमैश्वरम् । सर्वलिङ्गमयंह्येतत्सर्वंलिङ्गे प्रतिष्ठितम्

तस्माल्लिङ्गेऽर्च्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम् ।
अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम् ॥ ९८ ॥
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम् ।
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः ॥ ९९ ॥

यावज्जीवं जपेद्युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः । अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः ॥

एकाकी यतचित्ताऽऽत्मा स याति परमम्पदम् ।
वसेच्चामरणाद्विप्रा वाराणस्यां समाहितः ॥ १०१ ॥

सोऽपीश्वरप्रसादेन यातितत्परमम्पदम् । तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम्
ददाति परमं ज्ञानं येनमुच्येत बन्धनात्। वर्णाश्रमविधिंकृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः
तेनैव जन्मना ज्ञानंलब्ध्वा यातिशिवम्पदम् । येऽपितत्रवसन्तीहनीचावैपापयोनयः
सर्वेतरन्तिसंसारमीश्वरानुग्रहाद्द्विजाः । किन्तुविघ्नाभविष्यन्तिपापोपहतचेतसाम्
धर्मात्समाश्रयेत्तस्मान्मुक्तये सततं द्विजाः । एतद्रहस्यंवेदानांन देयंयस्यकस्यचित्

धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे !।

व्यास उवाच

इत्येतदुक्त्वा भगवान् शाश्वतो योगमुत्तमम् ॥ १०७ ॥

व्याजहारसमासीनं नारायणमनामयम् । मयैतद्भाषितंज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनम् ॥

दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम् ।

उक्त्वैवमर्थं योगीन्द्रानब्रवीद्भगवानजः ॥ १०६ ॥

हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः ।

भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ ११० ॥

उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम । अयंनारायणोयोऽसावीश्वरो नात्रसंशयः

नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदम्परम् । ममैषा परमामूर्त्तिर्नारायणसमाह्वया ॥

सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंस्थिता ।

येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः ॥ ११३ ॥

न ते मुक्तिं प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः । येत्वेनंविष्णुमव्यक्तंमाञ्चदेवंमहेश्वरम्

एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः । तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्

मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च । येऽन्यथासम्प्रपश्यन्ति मत्त्वैवं देवतान्तरम्

ते यान्ति नरकान् घोरान्नाहंतेषु व्यवस्थितः ।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् ॥ ११७ ॥

मोचयामि श्वपाकं वा नारायणमनिन्दकम् । तस्मादेष महायोगीमद्भक्तैः पुरुषोत्तमः

अर्च्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय वै ।

एवमुक्त्वा वासुदेवमालिङ्ग्य स पिनाकधृक् ॥ ११६ ॥

अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम् । नारायणोऽपिभगवांस्तापसंवेषमुत्तमम्

जग्राह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः ।

ज्ञानं भवद्भिरमलं प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ १२१ ॥

साक्षाद्देवमहेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम् । गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः

प्रवर्त्तयध्वंशिष्येभ्योधार्मिकेभ्योमुनीश्वराः। इदंभक्तायशान्तायधार्मिकायाहिताग्नये
विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणायविशेषतः। एवमुक्त्वासविश्वात्मायोगिनांयोगवित्तमः
नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम्। ऋषयस्तेऽपिदेवेशं नमस्कृत्यमहेश्वरम्
नारायणञ्चभूतादिं स्वानिस्थानानिलेभिरे। सनत्कुमारोभगवन्संवर्त्तायमहामुनिः
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपिसत्यव्रतमाययौ। सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः। अङ्गिरावेदविदुषे भारद्वाजाय दत्तवान्
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च। पराशरोऽपिसनकात्पितामेसर्वतत्त्वदृक
लेभेतत्परमं ज्ञानं तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान्। ममोवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः
वामदेवो महायोगी रुद्रःकालपिनाकधृक्। नारायणोऽपिभगवान्देवकीतनयो हरिः
अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम्। यदाहं लब्धवान्रुद्राद्वामदेवादनुत्तमम्॥
विशेषाद्गिरीशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत्। शरण्यंगिरीशंरुद्रंप्रपन्नोऽहंविशेषतः

भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम्।
भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम्॥ १३४॥

प्रपद्यन्तां सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम्। वर्त्तध्वन्तत्प्रसादेनकर्मयोगेन शङ्करम्
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं व्यालभूषणम्। एवमुक्ते पुनस्ते तु शौनकाद्या महेश्वरम्

प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम्।
अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥ १३७॥

साक्षाद्देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम्। भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे
इदानीं जायते भक्तिर्यादेवैरपि दुर्लभा। कथयस्व मुनिश्रेष्ठ! कर्मयोगमनुत्तमम्॥
येनासौ भगवानीशः समाराध्योमुमुक्षुभिः। त्वत्सन्निधावेवसूतःश्रृणोतिभगवद्वचः
तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्म्मसंग्रहम्। यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्म्मरूपिणा
पृष्टेन मुनिभिः सर्वं शक्रेणामृतमन्थने। श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं समातनम्

मुनीनां भाषितं कृत्स्नं प्रोवाच सुसमाहितः।
य इमं पठते नित्यं संवादं कृत्तिवाससः॥ १४३॥

सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते । श्रावयेद्वाद्विजान्शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान्
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमाङ्गतिम् । यश्चैतच्छृणुयान्नित्यंभक्तियुक्तोदृढव्रतः
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः ॥
श्रोतव्यश्चानुमन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा ॥ १४७ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणेउत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे पशुपाशविमोक्षणयोगवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

समाप्तेश्वरगीता ।

व्यासगीताप्रारम्भः

द्वादशोऽध्यायः

कर्मयोगवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम् । कर्मयोगंब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम्
आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणानांप्रदर्शितम् । ऋषीणां शृण्वतांपूर्वमनुराह प्रजापतिः
सर्वपापहरं पुण्यं ऋषिसङ्घैर्निषेवितम् । समाहितधियो यूयं शृणुध्वंगदतो मम
कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमाः । गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः
दण्डीचमेखलीसूत्रीकृष्णाजिनधरोमुनिः । भिक्षाचारीब्रह्मचारीस्वाश्रमेनिवसन्सुखम्
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणापुरा । ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा
सदोपवीती चैव स्यात्सदाबद्धशिखोद्विजः । अन्यथायत्कृतंकर्म तद्भवत्ययथाकृतम्
वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् । तदेव परिधानार्थं शुक्लमच्छिद्रमुत्तमम्
उत्तरं तु समाख्यातंवासःकृष्णाजिनंशुभम् । अभावे दिव्यमजिनंरौरवंवा विधीयते
उद्धृत्य दक्षिणंबाहुं सव्येबाहौ समर्पितम् । उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतंकण्ठसज्जने
सव्यं बाहुंसमुद्धृत्यदक्षिणेतुधृतंद्विजाः । प्राचीनावीतमित्युक्तंपैत्रेकर्मणि योजयेत्

अग्न्यागारे गवांगोष्ठेहोमेजप्येतथैवच । स्वाध्याये भोजनेनित्यंब्राह्मणानाञ्चसन्निधौ
उपासने गुरूणाञ्च सन्ध्ययोः साधुसङ्गमे । उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
कुशेन निर्मिता विप्रा ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥ १४ ॥

धारयेद्बैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तकौ द्विजः । यज्ञार्हवृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेवच

सायं प्रातर्द्विजः सन्ध्यामुपासीत समहितः ।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैनां पतितो भवेत् ॥ १६ ॥
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायम्प्रातर्यथाविधि ।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ॥ १७ ॥

देवताभ्यर्च्चनं कुर्यात्पुष्पैःपत्रेणचाम्बुना । अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषुधर्मतः

असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम् ।
आयुरारोग्यसान्निध्यं द्रव्यादिपरिवर्ज्जितम् ॥ १८ ॥
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्योविप्रोऽभिवादने ।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरप्लुतः ॥ २० ॥

न कुर्याद्योऽभिवादस्यद्विजःप्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यःस विदुषायथाशूद्रस्तथैसः
विन्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणंगुरोः । सव्येन सव्यःस्प्रष्टव्यो दक्षिणेनतुदक्षिणः
लौकिकंवैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव वा । आददीत यतोज्ञानंतं पूर्वमभिवादयेत्
नोदकंधारयेद्भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधं तथा । एवंविधानि चान्यान्नि देवाद्येषु कर्मषु
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रमारोग्यमेव च

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ ॥ २६ ॥

वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्चसर्वे ते गुरवः स्मृताः । मातामातामहीगुर्वी पितुर्मातुश्चसोदराः
श्वश्रूःपितामहीज्येष्ठाभ्रातृजाया गुरुस्त्रियः । इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयंमातृतःपितृतस्तथा
अनुवर्त्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः । गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ २८

नैतैरुपविशेत्साद्ध विवदेतार्थकारणात् । जीवितार्थमपि द्वेषाद्गुरुभिर्नैवभाषणम्
उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः । गुरूणामपि सर्वेषां पूज्या पञ्च विशेषतः
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषांमातासुपूजिता । यो भावयतियासूतेयेन विद्योपदिश्यते
ज्येष्ठोभ्राता च भर्त्ता पञ्चैते गुरवः स्मृता । आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेनवापुनः

पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता ।
यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्व्विकारिणौ ॥ ३४ ॥

तावत्सर्वं परित्यज्यपुत्रःस्यात्तत्परायणः । मातापिताचसुप्रीतौस्यातांपुत्रगुणैर्यदि
स पुत्रःसकलं धर्ममाप्नुयात्तेनकर्मणा । नास्ति मातृसमो देवोनास्तितातसमोगुरुः
तयोः प्रत्युपकारो हि न कथञ्चनविद्यते । तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणामनसा गिरा
नताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यंसमाचरेत् । वर्ज्जयित्वा मुक्तिफलंनित्यंनैमित्तिकंतथा
धर्मः सारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः । सम्यगाराध्यवक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया ॥

शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य वा पूज्यते दिवि ।
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते ॥ ४० ॥
तेन दोषेण स प्रेत्य निरयङ्घोरमृच्छति ।
पुंसां वर्त्मनि तिष्ठेत पूज्यो भर्त्ता च सर्वदा ॥ ४१ ॥
अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम् । -
ये नरा भर्तृपिण्डार्थं स्वान्प्राणान् सन्त्यजन्ति हि ॥ ४२ ॥
तेषामथाऽक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान्मनुः ।
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥ ४३ ॥

असावहमितिब्रयुःप्रत्युत्थाययवीयसः । अवाच्योदीक्षितोनाम्नायवीयानपियोभवेत्
भो भवत्पूर्वकत्वेन अभिभाषेतधर्मवित् । अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसावन्द्य एव च
ब्राह्मणःक्षत्रियाद्यैश्चश्रीकामैःसादरंसदा । नाभिवाद्यास्तुविप्रेणक्षत्रियाद्याःकथञ्चन
ज्ञानकर्मगुणोपेता येयजन्तिबहुश्रुताः । ब्राह्मणःसर्ववर्णानांस्वस्तिकुर्यादितिश्रुतिः
सवर्णेषु सवर्णानां काम्यमेवाभिवादनम् । गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानांब्राह्मणोगुरुः

पतिरेव गुरुःस्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः। विद्या कर्मतपोबन्धुर्वित्तं भवतिपञ्चमम्
मान्यस्थानानिपञ्चाहुः पूर्वंपूर्वंगुरूत्तरात्। एतानि त्रिपु वर्णेषुभूयांसि बलवन्तिच

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः।
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे ॥ ५१ ॥

वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणेदुर्बलाय च। भिक्षामाहृत्यशिष्टानांगृहेभ्यःप्रयतोऽन्वहम्
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया । भवत्पूर्वञ्चरेद्भैक्ष्यमुपनीतोद्विजोत्तमः ॥

भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥ ५४ ॥

भिक्षेतभिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्। स्वजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा
भैक्ष्यस्यचरणं युक्तं पतितादिषु वर्जितम्। वेदयज्ञैरहीनानां प्रपन्नानां स्वकर्मसु
ब्रह्मचारी हरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्। गुरोः कुले न भिक्षेतनज्ञातिकुलबन्धुषु
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्ज्जयेत्। सर्वं वाविचरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन्। समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं पचेदन्नममायया
भुञ्जीत प्रयतोनित्यंवाग्यतोऽनन्यमानसः। भैक्ष्येणवर्त्तयेन्नित्यमेकान्नादीभवेद्व्रती
भैक्ष्येण वृत्तिनो वृत्तिरुपवाससमास्मृता। पूजयेदनसं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्

दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ६२ ॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत् ॥ ६३ ॥
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः।
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ॥ ६४ ॥
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥ ६५ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धेव्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे ब्रह्मचारिधर्मवर्णननामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥ १ ॥

रेतोमूत्रपूरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे । ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा

चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः ।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥ ३ ॥

चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यञ्चापि तथाविधम् ॥ ४ ॥

आचामेदश्रुपातेवा लोहितस्यतथैवच । भोजनेसन्ध्ययोः स्नात्वात्यागेमूत्रपुरीषयोः

आचान्तोऽप्याचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथाव्ययः ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च ॥ ६ ॥

स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीवींवापरिधायच । उपस्पृशेज्जलञ्चान्तस्तृणंवाभूमिमेवच

केशानाञ्चात्मनः स्पर्शे वाससोऽक्षालितस्य च ।
अनुष्णाभिरफेनाभिर्विशुद्धाद्भिश्च वाग्यतः ॥ ८ ॥

शौचेप्सुः सर्वदाऽऽचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः ।
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा ॥ ९ ॥

अकृत्वा पादयोःशौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाऽऽचमेद्बुधः ॥ १० ॥

न चैव वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुधः । नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः

नपादुकासनस्थोवाबहिर्जानुकरोऽपिवा । विट्शूद्रादिकरोन्मुक्तैर्नचोच्छिष्टैस्तथैवच

नचैवाङ्गुलिभिःशस्तंप्रकुर्वन्नन्यमानसः । नवर्णरसदुष्टाभिर्नचैवाप्रचुरोदकैः ॥ १३ ॥
नपाणिक्षुभिताभिर्वानबहिष्कक्षएववा । हृद्गाभिःपूयतेविप्रःकण्ठ्याभिःक्षत्रियःशुचिः

प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽम्भसः ।

अङ्गुष्ठमूलरेखायां तीर्थं ब्राह्म्यमिहोच्यते ॥ १५ ॥

प्रदेशिन्याश्च यन्मूलं पितृतीर्थमनुत्तमम् । कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं तद्देवार्थं प्रकीर्त्तितम् । मूलेवादैवमादिष्टमाग्नेयंमध्यतःस्मृतम्
तदेव सौमिकं तीर्थमेवंज्ञात्वा नमुह्यति । ब्राह्मेणैव तुतीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्
कायेन वाथ दैवेन चाथाचान्ते शुचिर्भवेत् । त्रिराचामेदपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः
संवृताङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृमेन्नासापुटद्वयम् । कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत्
सर्वाङ्गुलीभिर्बाहू च हृदयन्तु तलेन वा । नाभिः शिरश्च सर्वाभिरङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम्
त्रिः प्राश्नीयात्तदम्भस्तुसुप्रीतास्तेनदेवताः । ब्रह्मा विष्णुमहेशश्चभवन्तीत्यनुशुश्रुम
गङ्गाच यमुनाचैव प्रीयेतेपरिमार्ज्जनात् । संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टेनासापुटद्वये । श्रोत्रयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेतेचानिलानलौ

संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।

मूर्ध्नि संस्पर्शनादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥ २६ ॥

नोच्छिष्टंकुर्वतेनित्यंविप्रुषोऽङ्गंनयन्तियाः । दन्तान्तर्दन्तलग्नेषुजिह्वोष्ठैरशुचिर्भवेत्

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।

भूमिकास्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥ २८ ॥

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे । फले मूलेक्षुदण्डेच न दोषम्प्राहवै मनुः
प्रचुरान्नोदपानेषुयद्युच्छिष्टोभवेद्द्विजः। भूमौनिक्षिप्यतद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षिपेत्ततः

तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः ।

भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याहियते तु तत् ॥ ३१ ॥

यद्यमन्त्रंसमादायभवेदुच्छेषणान्वितः । अनिधायैवतद्द्रव्यमाचान्तःशुचितामियात्

वस्त्रादिषुविकल्पः स्यान्नस्पृष्ट्वाचैवमेव हि । अरण्येऽनुदकेरात्रौ चौरव्याघ्राकुलेपथि
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तोन दुष्यति । निधायदक्षिणेकर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः
अह्निकुर्य्याच्छकृन्मूत्रंरात्रौचेद्दक्षिणामुखः । अन्तर्द्धायमहींकाष्ठैःपत्रैर्लोष्टैस्तृणेन वा

प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्ज्जनम् ।
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्यान्तःपथि भस्मसु ॥ ३६ ॥

अग्नौ वेश्मश्मशानेचविण्मूत्रे न समाचरेत् । न गोपथे न कृष्टे वा महावृक्षेनशाड्वले
न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके । न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन
न ससत्त्वेषु गर्त्तेषु नागच्छन्वा समाचरेत् । तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च
न क्षेत्रे विमले चापि न तीर्थे न चतुष्पथे । नोद्याने न समीपे वानोषरे न पराशुचौ

न सोपानत्पादुको वा गन्ता यानान्तरिक्षगः ।
न चैवाभिमुखं स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्न च ॥ ४१ ॥

न देवदेवालययोर्नद्यामपिकदाचन । नदीं ज्योतींषिवीक्षित्वा न वार्यभिमुखोऽथवा
प्रत्यादित्यंप्रत्यनलंप्रतिसोमंतथैव च । आहृत्यप्रमृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणात्

कुर्य्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः ॥ ४३ ॥

नाहरेन्मृत्तिकांविप्रःपांशुलान्नचकर्द्दमात् । नमार्गान्नोषराद्देशाच्छौचोच्छिष्टात्तथैवच
न देवायतनात्कूपाद्ग्रामादन्तर्ज्जलात्तथा । उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
ऋषिव्याससम्वादे सदाचारधर्मवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचचारसमन्वितः ।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ १ ॥
नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्सन्ध्याचार समन्वितः ।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नाऽऽसीताभिमुखं गुरोः ॥ २ ॥

प्रतिश्रवणसम्भाषेशयानोनसमाचरेत् । आसीनो न च तिष्ठन्वाउत्तिष्ठन्वापराङ्मुखः
न च शय्यासनश्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनोभवेत्
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्
गुरोर्यत्र प्रतीवादो निन्दाचापिप्रवर्त्तते । कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोऽन्यतः

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रिया ।
न चैवाऽस्योत्तरं ब्रूयात् स्थिते नासीतसन्निधौ ॥ ७ ॥
उदकुम्भं कुशान्पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा ।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वा समाचरेत् ॥ ८ ॥

नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि । आक्रमेदासनंछायामासन्दी वा कदाचन

साधयेद्दन्तकाष्ठादीन् कृत्यश्चास्मै निवेदयेत् ।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः ॥ १० ॥

न पादौ सारयेदस्य सन्निधाने कदाचन । जृम्भाहास्यादिकश्चैव कण्ठप्रावरणं तथा
वर्ज्जयेत्सन्निधौ नित्यमथास्फोटतमंवचः । यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः
आसीताथ गुरोरुक्ते फलके वा समाहितः । आसने शयने याने नैकस्तिष्ठेत्कदाचन
धावन्तमनुधावेत्तं गच्छन्तश्चानुगच्छति । गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च

नाऽऽसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च।
जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ॥ १५ ॥
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम्।
गन्धमाल्यं रसम्भव्यं शुक्लम्प्राणिविहिंसनम् ॥ १६ ॥
अभ्यङ्गञ्चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च। कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्त्तनम्
द्यूतंजनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा। परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥१८॥
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकांकुशान्। आहरेद्यावदर्थानि भैक्ष्यञ्चाहरहश्चरेत्
कृतञ्च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्य्युषितञ्च यत्। अनृत्त्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिस्पृहः
नाऽऽदित्यं वै समीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम्।
एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम् ॥ २१ ॥
गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुञ्जीत न कामतः। मलापकर्षणं स्नानमाचरेद्धि कथञ्चन ॥
न कुर्य्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन।
मोहाद्वा यदि वा लोभात्त्यक्त्वैनं पतितो भवेत ॥ २३ ॥
लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव च। आददीतयतो ज्ञानं न तंद्रुह्येत्कदाचन
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत्
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्भक्तिमाचरेत्। नचातिसृष्टो गुरुणास्वान्गुरूनभिवादयेत्
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिःस्वयोनिषु। प्रतिषेधत्सुचाधर्माद्धितंचोपदिशत्स्वपि
श्रेयस्तु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्। गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥
बालःसन्मानयन्मान्यान् शिष्योवायज्ञकर्मणि। अध्यापयन् गुरुसुतोगुरुवन्मानमर्हति
उत्सादनंवै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने। न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोःशौचमेवच
गुरुवत्परिपूज्याश्चसवर्णागुरुयोषितः। असवर्णास्तुसम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः
अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च। गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्चप्रसाधनम्
गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः। कुर्वीत वन्दनं भूमावसावहमिति ब्रुवन्
विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहञ्चाभिवादनम्। गुरुदारेषु सर्वेषु सतां धर्ममनुस्मरन् ॥

मातृष्वसा मातुलानीश्वश्रूश्चाथपितृष्वसा । सम्पूज्यागुरुपत्नीवत्समास्तागुरुभार्यया

भ्रातुर्भार्या (भार्यापि) च संग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रस्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥ ३६ ॥
पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ ३७ ॥

एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम् । वेदमध्यापयेद्धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः ॥
सम्वत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन् । हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्यवसतोगुरुः
आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदोधार्मिकःशुचिः । सूक्तार्थदोऽरसःसाधुःस्वाध्यायादशधर्मतः
कृतज्ञश्च तथाद्रोहीमेधावीतूपकृन्नरः । आप्तःप्रियोऽथविधिवत् षडध्याप्याद्विजातयः

एतेषु ब्रा (ब्र) ह्मणो दानमन्यत्र च यथोदितान् ।
आचम्य संयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ्मुखः ॥ ४२ ॥
उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामस्त्विति नारभेत् ॥ ४३ ॥

अनुकूलं समासीनः पवित्रैश्चैव पावितः । प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति
ब्राह्मणः प्रणवंकुर्यादन्तेचविधिवद्द्विजः । कुर्यादध्ययनं नित्यंब्रह्माञ्जलिकरस्थितः
सर्वेषामेव भूतानांवेदश्चक्षुःसनातनम् । अधीयीताप्ययंनित्यंब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा
योऽधीयीतऋचोनित्यंक्षीराहुत्यासदेवताः । प्रीणातितर्पयन्त्येनंकामैस्तृप्ताःसदैवहि

यजूंष्यधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः ।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम् ॥ ४८ ॥

अथर्वाङ्गिरसो नित्यंमध्वाप्रीणातिदेवताः । वेदाङ्गानिपुराणानिमांसैश्चतर्पयेत्सुरान्
अपांसमीपेनियतो नैत्यिकंविधिमाश्रितः । गायत्रीमप्यधीयीतगत्वारण्यंसमाहितः
सहस्रपरमांदेवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्त्तितः
गायत्रीञ्चैव वेदांस्तु तुलयातौलयत्प्रभुः । एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीञ्च तथैकतः

ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्ततदनन्तरम् ।

ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ॥ ५३ ॥

पुराकल्पे समुत्पन्नाभूर्भुवःस्वःसनातनाः । महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाःशुभनिबर्हणाः
प्रधानंपुरुषःकालोविष्णुर्ब्रह्मा महेश्वरः । सत्त्वंरजस्तमस्तिस्रःक्रमाद्व्याहृतयःस्मृताः
ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्मसावित्री स्यात्तदक्षरम् । एषमन्त्रोमहायोगः सारात्सारउदाहृतः
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां सावित्रींवेदमातरम् । विज्ञायार्थंब्रह्मचारीसयातिपरमांगतिम्
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी । न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः ।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ॥ ५९ ॥

उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोर्द्धपञ्चमान् । अधीयीत शुचौदेशे ब्रह्मचारीसमाहितः
पुष्ये तु छन्दसांकुर्याद्बहिरुत्सर्जनन्द्विजाः । माघशुक्लस्यवा प्राप्तेपूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि
छन्दसां प्रीणनंकुर्यात्स्वेषुऋक्षेषुवैद्विजाः । वेदाङ्गानि पुराणानिकृष्णपक्षेच मानवः

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्ज्जयेत् ।
अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यनध्यायान्विवर्ज्जयेत् ॥ ६३ ॥

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांशुसमूहने । विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानाञ्च सम्प्लवे
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः । निर्घातेभूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्ज्जने

एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ।
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने ॥ ६६ ॥

सज्योतिःस्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने । नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषुच
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धेन नित्यशः । अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्यच सन्निधौ
अनध्यायो भुज्यमाने समवायेजनस्य च । उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रेचविवर्ज्जयेत्

उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् ।
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ॥ ७० ॥

त्र्यहं न कीर्त्तयेद्ब्रह्मराज्ञो राहोश्चसूतके । यावदेकोऽनुद्दिष्टस्य स्नेहो लेपश्चतिष्ठति

विप्रस्य विपुले (विप्रुषः) देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत् ।

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा वै चावसिक्थकाम् ॥ ७२ ॥

नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकाद्यन्नमेव च । नीहारेबाणपाते च सन्ध्ययोरुभयोरपि

अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषुच ।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥ ७४ ॥

अष्टकासु त्र्यहोरात्रमृत्वन्तासुचरात्रिषु । मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च ॥

तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः ।

श्लेष्मान्तकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ॥ ७६ ॥

कदाचिदपिनाध्येयं कोविदारकपित्थयोः । समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि

आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।

छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७८ ॥

हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विस (व) र्जयेत् ।

नैत्यिके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च ॥ ७९ ॥

उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि । एकामृचमथैकं वा यजुःसामाथ वा पुनः

अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति । अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः

न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वाण्येतानिवर्जयेत् । एष धर्म समासेनकीर्त्तितोब्रह्मचारिणाम्

ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजाः ॥ ८३ ॥

ससम्मूढोनसम्भाष्योवेदवाह्योद्विजातिभिः । नवेदपाठमात्रेणसन्तुष्टोवैद्विजोत्तमः

एवमाचारहीनस्तु पङ्के गौरिवसीदति । योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थंनविचारयेत्

स चान्धशूद्रकल्पस्तुपदार्थं न प्रपद्यते । यदिचात्यन्तिकं वासं कर्त्तुमिच्छतिवैगुरौ

युक्तः परिचरेदेनमाशरीराभिघातनात् । गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्

अभ्यसेत्स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः ।

सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदाङ्गानि विशेषतः ॥

अभ्यसेत्सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः ॥ ८८ ॥

एतद्विधानं परमं पुराणं वेदागमे (वेदाङ्गतः) सम्यगिहेरितञ्च ।
पुरा महर्षिप्रवरानुपृष्टः स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः ॥ ८६ ॥
एवमीश्वरसमर्पितान्तरो योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवि(व)त् ।
मोहजालमपहाय सोऽमृतं याति तत्पदमनामयं शिवम् ॥ ६० ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणंनामचतुर्द्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिणांगार्हस्थ्यधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान्विन्द्याद्वा चतुरो द्विजाः !।
अधीत्य चाभिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥
गुरवे तु धनंदत्त्वास्नायीततदनुज्ञया । चीर्णव्रतोऽथयुक्तात्मा स शक्तःस्नातुमर्हति
वैष्णवींधारयेद्यष्टिमन्तर्वासं तथोत्तरम् । यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकञ्च कमण्डलुम्
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च कुण्डलेवेदंव्युप्तकेशनखःशुचिः
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रः न रक्तां विभृयात्स्रजम् ॥ ५ ॥
शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः । न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै वैभवे सति ॥
नारक्तमुल्वणञ्चान्यधृतंवासो न कुण्डिकाम् । नोपानहौस्रजंवाथपादुकेन प्रयोजयेत्
उपवीतकरान् दर्भान्तथा कृष्णाजिनानि च ।
नापसव्यं परीदध्याद्वासो न विकृतञ्च यत् ॥ ८ ॥

आहरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मनःशुभान् । रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान्

अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम् ।
आहरेद् ब्राह्मणो भार्य्यां शीलशौचसमन्विताम् ॥ १० ॥

ऋतुकालाभिगामीस्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते । वर्ज्जयेत्प्रतिषिद्धानिदिनानितुप्रयत्नतः
षष्ठ्यष्टमींपञ्चदशींद्वादशीं च चतुर्द्दशाम् । ब्रह्मचारीभवेन्नित्यं ब्राह्मणःसंयतेन्द्रियः
आदधीतावसथ्याग्निंजुहुयाज्ञातवेदसम् । व्रतानिस्नातकोनित्यं पावनानिचपालयेत्

वेदोदितं स्वकं कर्म्म नित्यं कुर्य्यादतन्द्रितः ।
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकान्याति भीषणान् ॥ १४ ॥

अभ्यसेत्प्रयतोवेदं महायज्ञांश्चभावयेत् । कुर्याद्गृह्याणि कर्माणिसन्ध्योपासनमेवच
सख्यंसमाधिकैःकुर्य्यादर्च्चयेदीश्वरंसदा । दैवतान्यधिगच्छेतकुर्य्याद्भार्याविभूषणम्
न धर्म्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि । कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पनम्
वयसः कर्मणोऽर्थस्यश्रुतस्याभिजनस्य च । वेदवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरेद्विहरेत्सदा

श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः ।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ॥ १६ ॥

येनास्यपितरोयाता येनयाताःपितामहाः । तेनयायात्सतांमार्गंतेन गच्छन्तरिष्यति

नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २१ ॥

सन्ध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः । अनसूयी मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्द्धते
वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः । सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही
मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः । दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते
त्रिवर्गसेवी सततं देवतानाञ्च पूजनम् । कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान् ॥
विभागशीलः सततंक्षमायुक्तोदयालुकः । गृहस्थस्तु समाख्यातोन गृहेणगृहीभवेत्
क्षमा दया च विज्ञानं, सत्यञ्चैव दमः शमः । अध्यात्मनिरतज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम्
एतस्मान्न प्रमाद्येतविशेषेण द्विजोत्तमः । यथाशक्तिचरेत्कर्मनिन्दितानि विवर्ज्जयेत्

विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् ।

गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २६ ॥

विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम् । अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणंक्षमा
स्वदुःखेष्विवकारुण्यंपरदुःखेषु सौहृदात् । दयेति मुनयःप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यसाधनम्
चतुर्द्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः । विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्द्धते
अधीत्य विधिवद्वेदानर्थञ्चैवोपलभ्य तु । धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद्विज्ञानमिष्यते ॥
सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम् । यथाभूतप्रवादन्तु सत्यमाहुर्मनीषिणः
दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः । अध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति
ययासदेवो भगवान्विद्ययावेद्यते परः । साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः । महायज्ञपरो विद्वान्न भवेत्तदनुत्तमम्
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं प्रतिपालयेत् । न च देहं विना रुद्रो विद्यते पुरुषैः परः

नित्यधर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः ।
न धर्म्मवर्ज्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥ ३६ ॥

सीदन्नपि हि धर्मेणन त्वधर्मं समाचरेत् । धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषुजन्तुषु
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः । न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न सम्वदेत्
यस्त्विमंनियतं विप्रो धर्माध्यायंपठेच्छुचिः । अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोकेमहीयते

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
ऋषिव्याससम्वादेब्रह्मचारिणांगार्हस्थ्यधर्मनिरूपणंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

ब्राह्मणानांनित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणम्

व्यास उवाच

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानृतंवावदेत्कचित् । नाहितंनाप्रियंब्रूयान्नस्तेनःस्यात्कथञ्चन
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव च । परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
नराज्ञःप्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि । नान्यस्माद्याचकत्वञ्चनिन्दिताद्वर्ज्जयेद्बुधः

नित्यं याचनको न स्यात्पुनस्तत्रैव याचयेत् ।
प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्म्मतिः ॥ ४ ॥

न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमाः । ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन ॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः
पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले तृणे फले । अदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः

गृहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजैः ।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ॥ ८ ॥

तृणं काष्ठं फलंपुष्पं प्रकाशं वै हरेद्बुधः । धर्मार्थं केवलं ग्राह्यं ह्यन्यथा पतितोभवेत्

तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः ।
क्षुधार्त्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः ॥ १० ॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वाव्रतं चरेत् । व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रलम्बनम्
प्रेत्येह चेदृशोविप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः । छद्मना चरितंयच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति
अलिङ्गी लिङ्गिवेशेनयो वृत्तिमुपजीवति । स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौचजायते
बैडालव्रतिनः पापालोके धर्मविनाशकाः । सद्यः पतन्तिपापेषुकर्मणस्तस्य तत्फलम्

पाखण्डिनो विकर्म्मस्थान्वामाचारांस्तथैव च ।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्च्चयेत् ॥ १६ ॥

वेदनिन्दारतान् मर्त्यान्देवनिन्दारतांस्तथा । द्विजनिन्दारतांश्चैवमनसापिनचिन्तयेत्
याजनं योनिसम्बन्धंसहवासञ्चभाषणम् । कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद्यत्नेनवर्जयेत्

देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम् ॥ १८ ॥

गोभिश्च दैवतैर्विप्रैःकृष्याराजोपसेवया । कुलान्यकुलतां यान्तियानिहीनानि धर्मतः
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च । कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च

अनृतात्पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ।
अश्रौतधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥ २१ ॥

अश्रोत्रियेषु वै दानाद्वृषलेषु तथैव च । विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्
नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् । न शूद्रराज्येनिवसेन्न पाखण्डजनैर्वृते
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयोःशुभम् । मुक्त्वासमुद्रयोर्देशंनान्यत्रनिवसेद्द्विजः

कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः ।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः ॥ २५ ॥

अर्द्धकोशान्नदीकूलंवर्जयित्वाद्विजोत्तमः । नान्यत्रनिवसेत्पुण्यांनान्त्यजग्रामसन्निधौ
नसम्वसेच्चपतितैर्नचण्डालैर्नपुक्कसैः । नमूर्खैर्नावलिप्तैश्चनान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः
एकशय्यासनम्पङ्क्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम् । याजनाध्यापनं योनिस्तथैवसहभोजनम्
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च । एकादशैते निर्दिष्टादोषाः साङ्कर्यसञ्ज्ञिताः

समीपे वाप्यवस्थानात्पापं संक्रमते नृणाम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सङ्करं वर्ज्जयेद् बुधः ॥ ३० ॥

एकपङ्क्त्युपविष्टा ये नस्पृशन्ति परस्परम् । भस्मनाकृतमर्यादा नतेषांसङ्करोभवेत्
अग्निनाभस्मनाचैवसलिलेनविशेषतः । द्वारेणस्तम्भमार्गेणषड्भिःपङ्क्तिर्विभिद्यते
न कुर्याद्दुःखवैराणिविवादंचैवपैशुनम् । परक्षेत्रे गां चरन्तींनचाचक्षीतकस्यचित्

न सम्वसेत्सूतकिना न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत् ।
न सूर्यपरिवेशं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम् ॥ ३४ ॥

परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनंवा कदाचन । न कुर्याद्बहुभिः सार्द्धंविरोधं वा कदाचन
आत्मनःप्रतिकूलानिपरेषांनसमाचरेत् । तिथिं पक्षस्यनब्रूयान्नक्षत्राणि विनिर्दिशेत्
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वाद्विजोत्तमः । नदेवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत्
न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दाञ्चवर्ज्जयेत् । वेदनिन्दांदेवनिन्दां प्रयत्नेनविवर्ज्जयेत्

यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान्वा निन्दति द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः ॥ ३९ ॥

निन्दयेद्वै गुरून्देवान्वेदं वा सोपबृंहणम् । कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यतेनरः

तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात्किञ्चिदुत्तरम् ।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत् ॥ ४१ ॥

वर्ज्जयेद्वै रहस्यञ्च परेषां गूहयेद्बुधः । विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद्वै कदाचन
नपापंपापिनंब्रूयादपापंवाद्विजोत्तमाः । सतेनतुल्यदोषःस्यान्मिथ्यादिदोषवान्भवेत्

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम् ॥ ४४ ॥

ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे । दृष्टं विशोधनं सद्भिर्नास्ति मिथ्याभिशंसने
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनञ्चानिमित्ततः । नास्तंयातं न वारिस्थंनोपसृष्टंनमध्यगम्
तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम् । न नग्नांस्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन
नच मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम् । नाशुचिःसूर्यसोमादीन्ग्रहानालोकयेद्बुधः
पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान्नावलोकयेत् । नाभिभाषेत चपरमुच्छिष्टोवावगर्वितः
न स्पृशेत्प्रेतसंस्पर्शं नक्रुद्धस्यगुरोर्मुखम् । न तैलोदकयोश्छायांनपत्नींभोजनेसति

नियुक्तबन्धनांगां वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा ॥ ५० ॥

नाऽश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत मेहनीम् ।
क्षुवन्तींजृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम् ॥ ५१ ॥

नोदके चात्मनो रूपंन कूलं श्वभ्रमेव वा । न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन
न शूद्राय मतिंदद्यात्कृशरंपायसंदधि । नोच्छिष्टं वा घृतमधु नचकृष्णाजिनंहविः

न चैवास्मै व्रतंदद्यान्न च धर्मं वदेद्बुधः । न च क्रोधवशंगच्छेद्द्वेषंरागञ्चवर्ज्जयेत्
लोभंदम्भंतथावर्ज्यंयात्राविज्ञानकुत्सनम् । मानं मोहं तथाक्रोधं द्वेषञ्चपरिवर्ज्जयेत्

न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् ।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् कचित् ॥ ५६ ॥

नात्मानञ्चावमन्येतदैन्यंयत्नेनवर्ज्जयेत् । न चाशिष्यंनसत्कुर्यान्नात्मानंशंसयेद्बुधः
न नखैर्विलिखेद्भूमिं गां चसम्वेशयेन्न हि । न नदीषु नदींब्रूयात्पर्वते न च पर्वतान्
आवसेत्तेन नैवापि न त्यजेत्सहयायिनम् । नावगाहेदपो नग्नो वह्निञ्चापि व्रजेत्पदा
शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेनतैलेनाङ्गंनलेपयेत् । नशस्त्रसर्पैःक्रीडेतनस्वानिखानिचस्पृशेत्
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेनसहव्रजेत् । न पाणिपादावग्नौचचापलानिसमाश्रयेत्
न शिश्नोदरयोर्नित्यं न चश्रवणयोःक्वचित् । नचाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिनापिबेत्

नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन ।
न शातयेदिष्टकाभिः फलानि सफलानि (न फलेन) च ॥ ६२ ॥

न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्नाकर्षेच्चपदासनम् । न भेदनमधिस्फोटं छेदनं वा विलेखनम्

कुर्याद्विमर्दनं धीमान्नाकस्मादेव निष्फलम् ।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् वृथाचेष्टाञ्च नाऽऽचरेत् ॥ ६५ ॥

ननृत्येदथवागायेन्नवादित्राणिवादयेत् । नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकण्डूयेदात्मनःशिरः
न लौकिकैस्स्तवैर्देवांस्तोषयेद्भेषजैरपि । नाक्षैःक्रीडेन्नधावेतनाप्सुविण्मूत्रमाचरेत्

नोच्छिष्टः सम्विशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न गच्छन्नपठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत् ॥ ६८ ॥

न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ।
न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्ज्जयेत् ॥ ६९ ॥

नैकः सुप्याच्छून्यगृहेस्वयंनोपानहौहरेत् । नाकारणाद्वानिष्ठीवेन्नबाहुभ्यांनदींतरेत्

न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन ।
नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः ॥ ७१ ॥

नातिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान् गामथापिवा । वाय्वग्निगुरुविप्रान्वासूर्यंवाशशिनम्प्रति
अशुद्धःशयनं यानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम् । बहिर्निष्क्रमणञ्चैव न कुर्वीत कथञ्चन
स्वप्नमध्ययनंयानमुच्चारंभोजनंगतिम् । उभयोःसन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्नेतुविवर्जयेत्

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणाऽनलान् ।
न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत् ॥ ७५ ॥

नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान्कीर्त्तयेदृषीन् । नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नाग्निमेकतः ॥
न वामहस्तेनोद्धृत्यपिवेद्वक्त्रेणवा जलम् । नोत्तरेदनुपस्पृश्यनाप्सुरेतःसमुत्सृजेत्
अमेध्यलिप्तमन्यद्वालोहितंवाविषाणि वा । व्यतिक्रमेन्नस्रवन्तींनाप्सुमैथुनमाचरेत्

चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत् ।
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान् ॥
ओषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन ॥ ७६ ॥

न चाग्निंलङ्घयेद्धीमान्नोपदध्यादधःक्वचित् । न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्बुधः
न कूपमवरोहेत नाऽऽचक्षीताशुचिःक्वचित् । अग्नौ न प्रक्षिपेदग्निं :नाद्भिःप्रशयेत्तथा
सुहृन्मरणमार्त्ति वा न स्वयंश्रावयेत्परान् । अपण्यमथपण्यम्वा विक्रयेनप्रयोजयेत्
न वह्निं मुखनिश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः । पुण्यस्नानोदकस्नानेसीमान्तंवाकृपेन्नतु
न भिन्द्यात्पूर्वसमयंसत्योपेतंकदाचन । परस्परंपशून् व्यालान् पक्षिणोनावबोधयेत्
परबाधां न कुर्वीतजलपानायनादिभिः । कारयित्वासुकर्माणिकारून्पश्चान्नवर्जयेत्

सायं प्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नाऽवघाटयेत् ॥ ८५ ॥

बहिर्माल्यं बहिर्गन्धं भार्य्यया सह भोजनम् । विगृह्य वादं कुद्वारप्रवेशञ्चविवर्जयेत्
न खादन्ब्राह्मणस्तिष्ठेन्नजल्पन्नहसन् बुधः । स्वमग्निंनैवहस्तेनस्पृशेन्नाप्सुचिरंवसेत्
न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना । मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत ॥ ८८ ॥
परस्त्रियं न भाषेतनायाज्यं याजयेद्द्विजः । नैकश्चरेत्सभांविप्र समवायञ्चवर्ज्जयेत्

देवतायतनं गच्छेत्कदाचिन्नाप्रदक्षिणम् ॥ ८६ ॥

न वीजयेद्वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत् । नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्म्मिकजनैःसह

न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैःपतितैर्न वा। नोपानद्वर्जितोऽध्वानंजलादिरहितस्तथा
न रात्रावरिणासार्द्धंनविनाचकमण्डलुम्। नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेणव्रजेत्कचित्

निवर्त्स्यन्तीं न वनितामतिक्रामेद् द्विजोत्तमाः।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान् गुणिनो वा यतींस्तथा ॥ ६३ ॥

देवतायतने प्राज्ञो न देवानाञ्च सन्निधौ। नाक्रामेत्कामतश्छायांब्राह्मणानांगवामपि

स्वां तु नाऽऽक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन ॥ ६५ ॥

वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम्। न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयञ्चपिवेद्द्विजाः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ऋषिव्याससम्वादे व्यासगीतासु
गार्हस्थ्यधर्मनिरूपणं नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयवर्णनम्

व्यास उवाच

नाऽद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वाऽन्यतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि ॥ १ ॥
षण्मासान्यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेवभवेच्छूद्रो मृत (मृतःश्वा) एवाभिजायते ॥ २ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्रस्यचमुनीश्वराः। यस्यान्नेनोदरस्थेनमृतस्तद्योनिमाप्नुयात्
नटान्नं नर्त्तकान्नञ्च तक्ष्णोऽन्नं कर्मकारिणः। गणान्नंगणिकान्नञ्चषडन्नानिच वर्जयेत्
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा। गन्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नञ्च वर्जयेत् ॥

कुलालचित्रकर्म्मान्नं वार्द्धुषेः पतितस्यच। सुवर्णकारशैलूषव्याधवद्धातुरस्य च

चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च।
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च ॥ ७ ॥

सोमविक्रयिणश्चान्नंश्वपाकस्यविशेषतः। भार्याजितस्यचैवान्नं यस्यचोपपतिर्गृहे

उच्छिष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः।
अपङ्क्त्यन्नञ्च सङ्घान्नं शस्त्रजीवस्य चैव हि ॥ ६ ॥

क्लीवसन्न्यासिनश्चान्नंमत्तोन्मत्तस्य चैव हि। भीतस्यरुदितस्यान्नमवक्रुष्टंपरिग्रहम् ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च। वृथापाकस्य चैवान्नं शठान्नं चतुरस्यच अप्रजानान्तुनारीणांभृतकस्यतथैव च। कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा शौण्डान्नं वातिकान्नञ्च भिषजामन्नमेव च। विद्धप्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च ॥ पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः। अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम् गुरोरपिनभोक्तव्यमन्नंसंस्कारवर्जितम्। दुष्कृतं हिमनुष्यस्यसर्वमन्नेव्यवस्थितम्

यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्।
आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः ॥ १६ ॥

कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एवच। एते शूद्रेषुभोज्यान्नं दत्त्वा स्वल्पंपणंबुधैः

पायसं स्नेहपक्वं यत् गोरसश्चैव सक्तवः ॥ १७ ॥

पिण्याकश्चैवतैलश्चशूद्राद्ग्राह्यंतथैवच। वृन्ताकञ्जालिकाशाकंकुसुम्भाश्मन्तकं तथा पलाण्डुं लशुनं सूक्तं निर्यासञ्चैव वर्जयेत्। छत्राकं विड्वराहञ्च शेलं पीयूषमेवच विलयं सुमुखञ्चैव कवकानिच वर्जयेत्। गृञ्जनं किंशुकञ्चैव कुक्कुटं च तथैव च ॥ उदुम्बरमलाबुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः। वृथाकृशरसंयावं पायसापूपमेव च ॥ अनुपाकृतमांसं च देवान्नानिहवींषि च। यवागूंमातुलिङ्गञ्च मत्स्यानप्यनुपाकृतान् नीपंकपित्थंप्लक्षं च प्रयत्नेनविवर्जयेत्। पिण्याकं चोद्धृतस्नेहंदिवाधानास्तथैवच रात्रौचतिलसम्बद्धंप्रयत्नेनदधित्यजेत्। नाश्नीयात्पयसातक्रं न बीजान्युपजीवयेत् क्रियादुष्टं भावदुष्टमसत्सङ्गं विवर्जयेत्। केशकीटावपन्नं च स्वभूर्लेखंच नित्यशः

आघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा।

उदक्यया च पतितैर्गवा चाऽऽघ्रातमेव च ॥ २६ ॥
अनर्च्चितं पर्य्युषितंपर्य्याभ्रान्तंचनित्यशः । काककुक्कुटसंस्पृष्टंक्रमिभिश्चैवसंयुतम्
मनुष्यैरथवा घ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च । न रजस्वलयादत्तं न पुंश्चल्या सरोषकम्
मलवद्वाससा चापि परस्याचोपयोजयेत् । विवत्सायाश्चगोःक्षीरमौष्ट्रंवानिर्द्दशस्यच
आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत् । बलाकं हंसदात्यूहं कलविंकं शुकं तथा ॥
तथा कुररवल्लूरं जालपादञ्च कोकिलम् । चाषांश्च खञ्जरीटांश्च श्येनंगृध्रं तथैव च
उलूकं चक्रवाकञ्च भासंपारावतं तथा । कपोतं टिट्टिभञ्चैव ग्रामकुक्कुटमेव च ॥३२
सिंहं व्याघ्रञ्च मार्जारं श्वानं कुक्कुरमेव च । शृगालं मर्कटञ्चैव गर्द्दभञ्च न भक्षयेत्

न भक्षयेत्सर्वमृगान्नान्यान्वनचरान्द्विजान् ॥ ३३ ॥
जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा ।
गोधा कूर्मः शशः श्वावित् सल्लकी चेति सत्तमाः ॥ ३४ ॥
भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः ।
मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान्मांसं रौरवमेव च ॥ ३५ ॥

निवेद्यदेवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा । मयूरं तित्तिरञ्चैव कपिञ्जलकमेव च

वार्ध्रीणसं द्वीपिनञ्च भक्ष्यानाह प्रजापतिः ।
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च तथा पाठीनरोहितौ ॥ ३७ ॥

मत्स्येष्वेते समुद्दिष्टाभक्षणीयामुनीश्वराः । प्रोक्षितंभक्षयेदेषांमांसञ्चद्विजकाम्यया
यथाविधि नियुक्तश्च प्राणानामपिचात्यये । भक्षयेदेवमांसानिशेषभोजीन लिप्यते
औषधार्थमशक्तौवानियोगाद्यंनकारयेत् । आमन्त्रितस्तुयःश्राद्धेदैवेवामांसमुत्सृजेत्

यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत् ॥ ४० ॥

अपेयंवाप्यपेयञ्च तथैवास्पृश्यमेवच । द्विजातीनामनालोच्यंनित्यंमद्यमितिस्थितिः

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यञ्च वर्ज्जयेत् ।
पीत्वा पतितः कर्मभ्यो न सम्भाष्यो भवेद् द्विजैः ॥ ४२ ॥

भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वा पेयान्यपि द्विजः ।

नाधिकारी भवेत्तावद्यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥ ४३ ॥
तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणिप्रयत्नतः। आरोप्ययातिचैवैकोस्तथावैयातिरौरवम्

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ऋषिव्याससम्वादे व्यासगीतासु
भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

ब्राह्मणानांनित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

अहन्यहनिकर्त्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने !। तदाचक्ष्वाखिलंकर्म येन मुच्येत बन्धनात्

व्यास उवाच

वक्ष्येसमाहिता यूयं शृणुध्वंगदतो मम। अहन्यहनि कर्त्तव्यंब्राह्मणानांक्रमाद्विधिम्
ब्राह्मेमुहूर्त्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत्। कायक्लेशञ्च यन्मूलं ध्यायेतमनसेश्वरम्
उषःकाले चसम्प्राप्तेकृत्वाचावश्यकं बुधः। स्नायान्नदीषुशुद्धासुशौचंकृत्वायथाविधि
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपिपापकृतोजनाः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्रातःस्नानंसमाचरेत्
प्रातःस्नानंप्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरंहि तत्। ऋषीणांमृषितानित्यंप्रातःस्नानान्नसंशयः

मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि।
ततो नैवाचरेत्कर्म अकृत्वा स्नानमादितः ॥ ७ ॥
अलक्ष्मको जलं किञ्चित् दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्।
प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः ॥ ८ ॥
अतः स्नानंविनापुंसां पावनं (पापित्वं) कर्म सुस्मृतम्।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥ ६ ॥

अशक्तावशिरस्कंवास्नानमस्यविधीयते । आर्द्रेणवाससावाथमाज्र्जनं पावनंस्मृतम्
आयत्ये वैसमुत्पन्नेस्नानमेवसमाचरेत् । ब्राह्मादीनामथाशक्तौस्नानान्याहुर्मनीषिणः
ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणंयौगिकंयच्चषोढास्नानं समासतः
ब्राह्मंतुमाज्र्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकविन्दुभिः । आग्नेयंभस्मनापादमस्तकाद्देहधूलनम्
गवां हि रजसाप्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् । यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते

वारुणञ्चावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम् ।
योगिनां स्नानमाख्यातं योगे विश्वादिचिन्तनम् ॥ १५ ॥

आत्मतीर्थमितिख्यातंसेवितंब्रह्मवादिभिः । मनःशुद्धिकरंपुंसांनित्यंतत्स्नानमाचरेत्
शक्तश्चेद्वारुणं विद्वान् प्रायश्चित्तेतथैव च । प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठंवै भक्षयित्वाविधानतः

आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत् ।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ॥ १८ ॥

सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण तु धावयेत् । क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्

अपामार्गश्च बिल्वश्च करवीरं विशेषतः ॥ १६ ॥

वर्ज्जयित्वा निन्दितानिगृहीत्वैकंयथोदितम् । परिहृत्यदिनंपापंभक्षयेद्वैविधानवित्
नोत्पादयेद्दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्यग्रेणधारयेत् । प्रक्षाल्य भंक्त्वातज्जह्याच्छुचौ देशेसमाहितः

स्नात्वा सन्तर्प्ययेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।
आचम्य मन्त्रविन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ॥ २२ ॥
सम्माज्र्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकविन्दुभिः ।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ॥ २३ ॥

ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रींवेदमातरम् । जप्त्वा जलाञ्जलिंदद्याद्भास्करंप्रतितन्मनाः

प्राक्कूलेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति स्मृतिः ॥ २५ ॥
सा च सन्ध्या जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला ।

ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥ २६ ॥

ध्यात्वाऽर्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपेद् बुधः ।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥ २७ ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुतेकिञ्चिन्नतस्यफलमाप्नुयात्
अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वेऽपरां गतिम् ॥ २८ ॥
योऽन्यत्र कुरुतेयत्नंधर्मकार्ये द्विजोत्तमः । विहाय सन्ध्याप्रणतिंसयातिनरकायुतम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् । उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुःपरः
सहस्रपरमांनित्यंशतमध्यांदशावराम् । सावित्रींवैजपेद्विद्वान्प्राङ्मुखःप्रयतःस्थितः
अथोपतिष्ठेदादित्यमुद्यन्तंवैसमाहितः । मन्त्रैस्तुविविधैःसौरैःऋग्यजुःसामसम्भवैः
उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम् । कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः
ओंखखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे । निवेदयामिचात्मानं नमस्ते विश्वरूपिणे
नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे । त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम्
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः ॥ ३६ ॥
पुरुषःसन्महोऽन्तस्थंप्रणमामि कपर्द्दिनम् । त्वमेव विश्वम्बहुधाजातंयज्जायतेच यत्
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः ॥ ३७ ॥
प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय च । नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणंगतः ॥
हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥ ३८ ॥
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाःपतये नमः । नमोऽस्तुनीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने
विलोहिताय भर्गायसहस्राक्षायते नमः । तमोपहाय ते नित्यमादित्यायनमोऽस्तुते
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः । प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम्
हिरण्मयेगृहेगुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम् । नमस्यामिपरं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परामृतम्
विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम् । नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने
उग्राय सर्वतक्षाय त्वां प्रपद्ये सदैव हि । एतद्वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम्
प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ।

इदं पुत्राय शिष्याय धार्म्मिकाय द्विजातये ॥ ४५

प्रदेयं सूर्य्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम् । सर्व्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम् ॥

ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ ४६ ॥

अथागम्यगृहंविप्रःसमाचम्य यथाविधि । प्रज्ज्वाल्यवह्निंविधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्

ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः ।

प्राप्याऽनुज्ञां विशेषेण ह्यध्वर्यु र्वा यथाविधि ॥ ४८ ॥

पवित्रपाणिःपूतात्माशुक्लाम्बरधरः शुचिः । अनन्यमनसा नित्यंजुहुयात्संयतेन्द्रियः

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः । राक्षसं तद्भवेत्सर्वन्नामुत्रेह फलप्रदम् ॥

दैवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत् । दद्यात्पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत्

गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत् ।

वेदाभ्यासं ततः कुर्य्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजाः ॥ ५२ ॥

जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ।

अवेक्ष्य तच्च शास्त्राणि (अवेक्ष्येताऽथ शास्त्रेण) धर्म्मादीनि द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥

वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः । उपेयादीश्वरं चाथ योगक्षेमप्रसिद्धये

साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थेततोद्विजः । ततो मध्याह्नसमयेस्नानार्थं मृदमाहरेत्

पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोशकृच्छुद्धमेव वा । नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसुच

स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्तप्रस्रवणेषु च ॥ ५६ ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन । पञ्चपिण्डान्समुद्धृत्य स्नायाद्वासम्भवे पुनः

मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ।

अधस्तु तिसृभिः कायः पादौ षड्भिस्तथैव च ॥ ५८ ॥

मृत्तिका च समुद्दिष्टासार्द्रामलकमात्रिका । गोमयस्य प्रमाणन्तुतेनाङ्गंलेपयेत्पुनः

लेपयित्वा तीरसंस्थं तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः ।

प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ॥ ६० ॥

अभिमन्त्र्य जलंमन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः । भावपूतस्तदव्यक्तंधारयेद्विष्णुमव्ययम्

आपो नारायणोद्भूतास्ता एवाऽस्याऽयनं पुनः ।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद् बुधः ॥ ६२ ॥
प्रेक्ष्य सोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाश्रये ॥ ६३ ॥
आचान्तः पुनराचामेत् मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ६४ ॥
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥ ६५ ॥
द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद्व्याहृतिम्प्रणवान्विताम् ।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाऽघमर्षणम् ॥ ६६ ॥
ततः सम्मार्ज्जनं कुर्यात् (कार्यं) आपो हिष्ठामयो भुवः ।
इदमापः प्रवहतो व्याहृतिभिस्तथैव च ॥ ६७ ॥

तथाभिमन्त्र्यतत्तोयमापोहिष्ठादिभिस्त्रिकैः । अन्तर्जलगतोमग्नोजपेत्त्रिरघमर्षणम्

द्रुपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमम्पदम् ।
आवर्त्तयेच्च प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम् ॥ ६८ ॥

द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः । अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते
अपः पाणौसमादायजप्त्वावैमार्जनेकृते । विन्यस्यमूर्ध्नितत्तोयंमुच्यतेसर्वपातकैः
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः । तथाघमर्षणम्प्रोक्तं सर्वपापापनोदनम्

अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्द्ध्वं पुष्पाक्षतान्वितम् ।
प्रक्षिप्याऽऽलोकयेद् देवमूर्द्ध्वं यस्तमसः परः ॥ ७३ ॥

उदुत्यं चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रतः । हंसः शुचिषदन्तेन सावित्र्यासविशेषतः
अन्यैश्चवैदिकैर्मन्त्रैःसौरैःपापप्रणाशनैः । सावित्रींवै जपेत्पश्चाज्जपयज्ञः स वैस्मृतः

विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च ।
शतरुद्रीयं शिरसं सौरान्मन्त्रांश्च सर्वतः ॥ ७६ ॥
प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः ।
तिष्ठंश्च वीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात्समाहितः ॥ ७७ ॥

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः । कर्त्तव्यात्वक्षमालास्यादुत्तरादुत्तमास्मृता
जपकाले न भाषेत व्यंगानप्रक्षयेद् बुधः । न कम्पयेच्छिरोग्रीवांदन्तान्नैवप्रकाशयेत्
गुह्यकाराक्षसाःसिद्धाहरन्तिप्रसभं यतः । एकान्तेपु शुचौदेशेतस्माज्जप्यंसमाचरेत्
चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वाचैवपुनर्जपेत् । तैरेव भाषणंकृत्वास्नात्वाचैवपुनर्ज्जपेत्
आचम्यप्रयतोनित्यंजपेदशुचिदर्शने । सौरान्मन्त्रान्शक्तितोवैंपावमानीस्तुकामतः

यदि स्यात् क्लिन्न (खिन्न) वासा वै वारिमध्यं गतोऽपि वा ।
अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः ॥ ८३ ॥
प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्य ततः क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्रं भक्त्या (शक्त्या) स्वाध्यायमाचरेत् ॥ ८४ ॥

ततःसन्तर्पयेद्देवान्नृषीन्पितृगणांस्तथा । आदावोङ्कारमुच्चार्यनामान्तेतर्पयामिवः
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैवतर्पयेदक्षतोदकैः । तिलोदकैः पितृन्भक्त्यास्वसूत्रोक्तविधानतः
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिनादक्षिणेन तु । देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिःपितॄन्

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे ॥ ८७ ॥
प्राचीनावीती पैत्र्येण स्वेन तीर्थेन भावितः ।
निष्पीडय्य स्नानवस्त्रन्तु समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रैरर्च्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैरथाम्बुभिः ॥ ८८ ॥

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् । अन्यांश्चाभिमतान्देवान् भक्त्याचारोनरोत्तमः
प्रदद्याद्वाथपुष्पाणिसूक्तेनपौरुषेण तु । आपो वादेवताःसर्वास्तेनसम्यक्समर्च्चिताः
ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वैदैवतानिसमाहितः । नमस्कारेणपुष्पाणिविन्यसेद्वैपृथक्पृथक्

विष्णोराराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥ ९२ ॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेनसुसमाहितः । न ताभ्यांसदृशोमन्त्रोवेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि

तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥ ९३ ॥

अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम् । आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम्

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः । ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः
पुष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वाचन्दनाद्यैर्महेश्वरम् । उक्त्वा नमः शिवायेतिमन्त्रेणानेन वाजपेत्
नमस्कुर्यान्महादेवंतंमृत्युञ्जयमीश्वरम् । निवेदयीत स्वात्मानंयोब्राह्मणमितीश्वरम्
प्रदक्षिणं द्विजःकुर्यात्पञ्चवर्षाणि वैबुधः । ध्यायीतदेवमीशानंव्योममध्यगतंशिवम्
अथावलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यृचा । कुर्वन् पञ्च महायज्ञान् गृहंगत्वासमाहितः
देवयज्ञं पितृयज्ञम्भूतयज्ञं तथैव च । मानुषं ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान्प्रचक्षते ॥ १०० ॥
यदिस्यात्तर्पणादर्वाक्ब्रह्मयज्ञःकृतोनहि । कृत्वामनुष्ययज्ञं वै ततःस्वाध्यायमाचरेत्
अग्नेः पश्चिमतोदेशे भूतयज्ञान्तएव च । कुशपुञ्जे समासीनः कुशपाणिःसमाहितः

शालाग्नौलौकिके वाथ जले भूम्यामथापिवा ।
वैश्वदेवश्च कर्त्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥ १०३ ॥

यदि स्याल्लौकिके पक्षे ततोऽन्नं तत्रहूयते । शालाग्नौ तत्पचेदन्नं विधिरेषसनातनः
देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिं हरेत् । भूतयज्ञः स विज्ञेयोभूतिदः सर्वदेहिनाम्

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिश्चान्नम्पक्षिभ्यो द्विजसत्तमाः ॥ १०६ ॥
सायञ्चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।
भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायम्प्रातर्यथाविधि ॥ १०७ ॥

एकन्तु भोजयेद्विप्रं पितॄनुद्दिश्य सन्ततम् । नित्यश्राद्धं तदुच्छिष्टंपितृयज्ञो गतिप्रदः
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नंसमाहितः । वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत्
पूजयेदतिथिं नित्यंनमस्येदर्च्चयेद्विभुम् । मनोवाक्कर्मभिः शान्तःस्वागतंस्वगृहंगतः
अन्वारब्धेन सव्येनपाणिना दक्षिणेनतु । हन्तकारमथाग्रंवाभिक्षां वाशक्तितो द्विजः
दद्यादतिथये नित्यम्बुध्येतपरमेश्वरम् । भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रामग्रं तत्स्याच्चतुर्गुणम्
पुष्कलं हन्तकारन्तुतच्चतुर्गुणमुच्यते । गोदोहकालमात्रंवैप्रतीक्ष्योह्यतिथिःस्वयम्
अभ्यागतान्यथाशक्तिपूजयेदतिथीन्सदा । भिक्षांवैभिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे

दद्यादन्नं यथाशक्ति ह्यर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥ ११४ ॥

सर्वेषामप्यलाभे हि त्वन्नं गोभ्यो निवेदयेत् ।
भुञ्जीत बहुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥ ११५ ॥
अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान्द्विजोत्तमाः ।
भुञ्जीत चेत्स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति ॥ ११६ ॥
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञः क्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि देवताभ्यर्च्चनं तथा ॥ ११७ ॥
योमोहादथवाज्ञानादकृत्वा देवतार्च्चनम् । भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरं नात्रसंशयः
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्म्माणि वै द्विजाः ।
भुञ्जीत स्वजनैः सार्द्धं स याति परमां गतिम् ॥ ११६ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ऋषिव्याससम्वादे व्यासगीतासु ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

नित्यकर्तव्यकर्मसुभोजनादिप्रकारवर्णनम्

व्यास उवाच

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
आसीनः स्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय च ॥ १ ॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियम्प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतम्भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥ २ ॥
पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद्‌ भूमौ पात्रं निधाय च । उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः
उपलिप्ते शुचौदेशेपादौप्रक्षाल्यवै करौ । आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पञ्चार्द्रोभोजनञ्चरेत्
महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु ।

अमृतोपस्तरणमसीत्यापोऽशानक्रियाश्चरेत् ॥ ९ ॥

स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुतिं ततः । अपानायततोभुक्त्वाव्यानाय तदनन्तरम्

उदानाय ततःकुर्यात्समानायेति पञ्चमम् । विज्ञायतत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनिद्विजः

शेषमन्नं यथाकामंभुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् । ध्यात्वा तन्मनसादेवानात्मानंवैप्रजापतिम्

अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् । आचान्तः पुनराचामेदयंगौरिति मन्त्रतः

द्रुपदां वा त्रिरावर्त्य सर्वपापप्रणाशनीम् । प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेदुदरंततः ॥

आचम्याङ्गुष्ठमात्रेण पादाङ्गुष्ठेन दक्षिणे । निस्रावयेद्धस्तजलमूर्द्धहस्तः समाहितः ॥

कृतानुमन्त्रणं कुर्यात्सन्ध्यायामितिमन्त्रतः ।

अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेद् ब्राह्मणेति हि ॥ १२ ॥

सर्वेषामेवयोगानामात्मयोगःस्मृतःपरः । योऽनेनविधिनाकुर्यात्सकविर्ब्राह्मणःस्वयम्

यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालङ्कृतः शुचिः ।

सायम्प्रातर्नान्तरा वै सन्ध्यायां तु विशेषतः ॥ १४ ॥

नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वंप्रतिसायंशशिग्रहात् । ग्रहकालेनचाश्नीयात्स्नात्वाश्नीयाद्विमुक्तये

मुक्ते शशिनि चाश्नीयाद्यदि न स्यान्महानिशा ।

अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि ॥ १६ ॥

नाश्नीयात्प्रेक्षमाणानामप्रदाय च दुर्मतिः । यज्ञावशिष्टमद्याद्वा न क्रुद्धो नान्यमानसः

आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम् ।

वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम् ॥१८ ॥

यद्भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदङ्मुखः ।

सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् ॥ १६ ॥

नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णेनार्द्रवस्त्रधृक् । न च भिन्नासनगतोनयानसंस्थितोपिवा

न भिन्नभाजने चैव न भूम्यांनच पाणिषु । नोच्छिष्टोघृतमादद्यात्नमूर्द्धानंस्पृशेदपि

न ब्रह्मकीर्त्तयेच्चापिननिःशेषं न भार्यया । नान्धकारे न सन्ध्यायां न चदेवालयादिषु

नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः । न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन्विलपन्नपि

भुक्त्वा वै सुखमास्थाय तदन्नम्परिणामयेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत् ॥ २४ ॥
ततः सन्ध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना शुचिः ।
आसीनश्च जपेद्देवीं गायत्रीं पश्चिमाम्प्रति ॥ २५ ॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वानास्ते (पूर्वां नापीति) सन्ध्यां तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रेण समो लोके सर्वकर्मविवर्जितः ॥ २६ ॥
हुत्वाऽग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम् ।
सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि ॥ २७ ॥
नोत्तराभिमुखः स्वप्यात्पश्चिमाभिमुखो न च ।
न चाऽऽकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित् ॥ २८ ॥
न शीर्णायांतु खट्वायांशून्यागारे न चैव हि । नानुवंशेन पालाशे शयने वा कदाचन
इत्येतदखिलेनोक्तमहन्यहनि वै मया । ब्राह्मणानाङ्कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥३०॥
नास्तिक्यादथवालस्याद् ब्राह्मणो न करोति यः ।
स याति नरकान्घोरान् काकयोनौ च जायते ॥ ३१ ॥
नाऽन्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाऽऽश्रमविधिं स्वकम् ।
तस्मात्कर्म्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥ ३२ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मसु
भोजनादिप्रकारवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

———

प
उ

विंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः ।
पिण्डान्वाहार्यकम्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥

पिण्डान्वाहार्यकंश्राद्धं क्षीणेराजनिशस्यते । अपराह्णेद्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेणच
प्रतिपत्प्रभृतिह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके । चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युपरोधतः

अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु ।
तिस्रस्तास्त्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशा तथा ॥ ४ ॥

त्रयोदशीमघायुक्तावर्षासुच विशेषतः । शस्यपाकश्राद्धकालाःनित्याःप्रोक्तादिनेदिने
नैमित्तिकंतुकर्त्तव्यंग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः । बान्धवानांविस्तरेणनारकीस्यादतोऽन्यथा

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥ ७ ॥

संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि । नक्षत्रेषुच सर्वेषु कार्यंकाले विशेषतः
स्वर्गञ्चलभतेकृत्वाकृत्तिकासुद्विजोत्तमः । अपत्यमथरोहिण्यांसौम्येतुब्रह्मवर्च्चसम्
रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायांशौर्यमेव च । पुनर्वसौतथा भूमिंश्रियं पुष्येतथैवच

सर्वान्कामांस्तथा सार्प्ये पित्र्ये सौभाग्यमेव च ॥ १० ॥
अर्यम्णे तु धनं विन्द्येत् फाल्गुन्यां पापनाशनम् ॥ ११ ॥
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायाञ्च बहून् सुतान् ।
वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखासु सुवर्णकम् ॥ १२ ॥

मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रेतथैवच । मूले कृषिं लभेज्ज्ञानंसिद्धिमाप्येसमुद्रतः
सर्वान् कामान्वैश्वदेवे श्रैष्ठ्यन्तुश्रवणेपुनः । धनिष्ठायांतथाकामानप्सुपेचपरम्बलम्

अजैकपादेकुप्यंस्यादाहिर्बुध्नेगृहंशुभम् । रेवत्याम्बहवोगावोह्यश्विन्यांतुरगांस्तथा
याम्ये तु जीवितन्तु स्याद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥ १५ ॥
आदित्यवारेऽन्वारोग्यंचन्द्रे सौभाग्यमेवच । कुजेसर्वत्रविजयंसर्वान्कामान्बुधस्यतु
विद्यामभीष्टांतु गुरौ धनम्वै भार्गवे पुनः । शनैश्चरे लभेदायुःप्रतिपत्सुसुतान्शुभान्
कन्यका वै द्वितीयायां तृतीयायां तु विन्दति ।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां वै पञ्चम्यां शोभनान् सुतान् ॥ १८ ॥
षष्ठ्यां द्युतिंकृषिञ्चापिसप्तम्याञ्चधनंनरः । अष्टम्यामपि वाणिज्यंलभतेश्राद्धदःसदा
स्यान्नवम्यामेकखुरंदशम्यांद्विखुरं बहु । एकादश्यान्तथारूप्यंब्रह्मवर्चस्विनःसुतान्
द्वादश्यां जातरूपञ्च रजतंकुप्यमेव च । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यांचतुर्दश्यांतुकुप्रजाः
पञ्चदश्यां सर्वकामान् प्राप्नोति श्राद्धदः सदा ॥ २१ ॥
तस्माच्छ्राद्धं न कर्त्तव्यं चतुर्द्दश्यां द्विजातिभिः ।
शस्त्रेण तु हतानां तु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥
द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियमः कृतः । तस्माद्भोगापवर्गार्थं श्राद्धंकुर्युर्द्विजातयः
कर्मारम्भेषुसर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुनः । पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणंपर्वसु स्मृतम् ॥
अहन्यहनि नित्यं स्यात्काम्यं नैमित्तिकं पुनः ।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं द्विधा श्राद्धंतु पार्वणम् ॥ २५ ॥
एतत्पञ्चविधं श्राद्धं मनुनापरिकीर्त्तितम् । यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेनपालयेत्
शुद्धयेसप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणापरिभाषितम् । दैविकञ्चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यतेभयात्
सन्ध्यांरात्रौनकर्त्तव्यंराहोरन्यत्रदर्शनात् । देशानान्तुविशेषेण भवेत्पुण्यमनन्तकम्
गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके । गायन्ति पितरोगाथांनर्त्तयन्ति मनीषिणः
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ।
तेषान्तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ ३० ॥
गयांप्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्धंसमाचरेत् । तारिताः पितरस्तेनसयातिपरमांगतिम्

वाराहपर्वते चैव गयायां वै विशेषतः । वाराणस्यां विशेषेण यत्र देवः स्वयं हरः

गङ्गाद्वारे प्रभासे तु बिल्वके नीलपर्वते। कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये॥
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च। सरस्वत्यां विशेषेण पुष्करे तु विशेषतः
नर्मदायां कुशावर्त्ते श्रीशैले भद्रकर्णके। वेत्रवत्यां विशाखायां गोदावर्यां विशेषतः
एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च। नदीनाञ्चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा
व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा। श्यामाकैश्च यवैः काशैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः

गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्॥ ३७॥

आम्रान् पाने रतानिक्षून् मृद्वीकांश्च सदाडिमान्।

विदार्श्वांश्च कुरण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत्॥ ३८॥

लाजान्मधुयुतान् दद्यात्सक्तून् शर्करया सह।

दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटककशेरुकान्॥ ३९॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु।

औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु।

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेनेह सप्त वै॥ ४०॥

अष्टावेणस्यमांसेन रौरवेण नवैव तु। दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः
शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु। सम्वत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन तु

वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ ४२॥

कालशाकं महाशल्कः खड्गलोहामिषं मधु। आनन्त्यायैवकल्पन्तेमुन्यन्नानिचसर्वशः

क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वै द्विजः।

दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते॥ ४४॥

पिप्पली रुचकश्चैव तथा चैव मसूरकम्। कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकभूतृणं सरसंतथा
कुसुम्भपिण्डमूलं वैतन्दुलीयकमेवच। राजमाषांस्तथा क्षीरंमाहिषाजंविवर्ज्जयेत्
आढक्यःकोविदाराश्चपालक्यामरिचास्तथा। वर्जयेत्सप्तयत्नेनश्राद्धकालेद्विजोत्तमः
इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणेउत्तरार्द्धेव्यासगीतासुश्राद्धकल्पवर्णनंनामविंशोऽध्यायः॥ २०॥

———

एकविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पवर्णनम्

व्यास उवाच

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितृँश्चन्द्रक्षये द्विजः ।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात्सौम्यमनाः शुचिः ॥ १ ॥

पूर्व्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् । तीर्थंतद्धव्यकव्यानां प्रदानानाञ्च स स्मृतः

ये सोमपा विरजसो धर्म्मज्ञाःशान्तचेतसः ।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥ ३ ॥

पञ्चाग्निरप्यधीयानोयजुर्वेदविदेव च । वह्वृचश्चात्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वा च योऽभवत्

त्रिणाचिकेतच्छन्दोगोज्येष्ठसामग एव च ।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः ॥ ५ ॥

अग्निहोत्रपरोविद्वान्न्यायविच्चषडङ्गवित् । मन्त्रब्राह्मणविच्चैवयश्चस्याद्धर्म्मपाठकः

ऋषिव्रती ऋषीकश्च शान्तचेता जितेन्द्रियः । ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भशुद्धःसहस्रदः

चान्द्रायणव्रतचरःसत्यवादीपुराणवित् । गुरुदेवाग्निपूजासुप्रसक्तोज्ञानतत्परः ॥ ८॥

विमुक्तः सर्वतोधीरोब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः । महादेवार्च्चनरतोवैष्णवः पङ्क्तिपावनः

अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा । सत्री चदाननिरतो विज्ञेयः पङ्क्तिपावनः

(युवानः श्रोत्रियाः स्वस्था'महायज्ञपरायणाः ।
सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनः ॥
कुलानां श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विनः ।
अग्निचित् स्नातको विप्रो विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः)।
मातपित्रोर्हिते युक्तः प्रातःस्नायी तथा द्विजः ।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पङ्क्तिपावनः ॥ ११ ॥

ज्ञाननिष्ठोमहायोगीवेदान्तार्थविचिन्तकः । श्रद्धालुःश्राद्धनिरतोब्राह्मणःपङ्क्तिपावनः
वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा । अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः
असमानप्रवरकोह्यसगोत्रस्तथैव च । सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः
भोजयेद्योगिनं शान्तं तत्त्वज्ञानरतं यतः । अभावे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा
तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम् । सर्वालाभेसाधकं वा गृहस्थमपिभोजयेत्
प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञोयस्याश्नाति यतिर्हविः । फलं वेदान्तवित्तस्य सहस्रादतिरिच्यते
तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् । भोजयेद्धव्यकव्येषुअलाभादितरान्द्विजान्
एष वै प्रथमः कल्पः प्रदानेहव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः

मातामहं मातुलञ्च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिम्बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ २० ॥
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
पैशाची दक्षिणाशा हि नेहाऽमुत्रफलप्रदा ॥ २१ ॥
कामं श्राद्धेऽर्च्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥ २२ ॥

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति । तस्मैहव्यंनदातव्यं न हिभस्मनिहूयते
यथोषरे बीजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् । तथाऽनृचेहविर्दत्त्वा न दाताल्लभतेफलम्

यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान् ॥ २५ ॥

अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः । यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजाः
यस्यवेदश्च वेदी च विच्छिद्येतेत्रिपूरुषम् । सवैदुर्ब्राह्मणो नार्हःश्राद्धादिषुकदाचन
शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलानाञ्च याजकः । वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः
दत्त्वानुयोगो द्रव्यार्थंपतितान्मनुरब्रवीत् । वेदविक्रयिणो ह्येतेश्राद्धादिषुविगर्हिताः
सुतविक्रयिणो ये तुपरपूर्वासमुद्भवाः । असामान्यान्यजन्तेयेपतितास्तेप्रकीर्त्तिताः

असंस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये ।

अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ३१ ॥

वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाःपञ्चरात्रविदोजनाः । कापालिकाःपाशुपताःपाषण्डायेचतद्विधाः

यस्याऽश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः ।

न तस्य तद्भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥ ३३ ॥

अनाश्रमी द्विजो यः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः ।

मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पङ्क्तिदूषकाः ॥ ३४ ॥

दुश्चर्म्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः ।

विद्धप्रजननश्चैव तेन क्लीवोऽथ नास्तिकः ॥ ३५ ॥

मद्यपोवृषलीसक्तो वीरहादिधिषूपतिः । अगारदाहीकुण्डाशीसोमविक्रयिणोद्विजाः

परिवेत्ता च हिंस्रश्च परिवित्तिर्निराकृतिः । पौनर्भवः कुसीदश्च तथा नक्षत्रदर्शकः

गीतवादित्रशीलश्चव्याधितःकाणएवच । हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णीतथैवच

अन्नदूषीकुण्डगोलौअभिशस्तोऽथदेवलः । मित्रध्रुक् पिशुनश्चैवनित्यंभार्यानुवर्त्तितः

मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च ।

गोत्रस्पृक् भ्रष्टशौचश्च काण्डस्पृष्टस्तथैव च ॥ ४० ॥

अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः । समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः ॥

वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दापरस्तथा । द्विजनिन्दारतश्चैव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मणि

कृतघ्नःपिशुनः क्रूरोनास्तिकोवेदनिन्दकः । मित्रध्रुक्कुहकश्चैव विशेषापङ्क्तिदूषकः

सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाःस्वकर्मसु । ब्रह्महात्राभिशस्ताश्च वर्जनीयाःप्र यत्नतः

शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवर्जितः । महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ॥

अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः । तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः

बहुनाऽत्रकिमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते । निन्दितानाचरन्त्येतेवर्ज्याःश्राद्धेप्रयत्नतः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पेऽनर्हब्राह्मण वर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पवर्णनम्

व्यास उवाच

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः ।
सन्निमन्त्र्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत् ॥ १ ॥
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्यच । असम्भवे परेद्युर्वायथोक्तैर्लक्षणैर्युतान्
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम् ।
अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः ॥ ३ ॥
तैर्ब्राह्मणैः सहाऽश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परांगतिम् ॥ ४ ॥
आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते । वसेयुर्नियताःसर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः
अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तःसत्यवादीसमाहितः । भारंमैथुनमध्वानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्ध्रुवम्
आमन्त्रितोब्राह्मणोवैयोऽन्यस्मैकुरुतेक्षणम् । स यातिनरकंघोरं सूकरत्वम्प्रयातिच
आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यश्चाऽऽमन्त्रयेद् द्विजः ।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते ॥ ८ ॥
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति ।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ विधीयते ॥ ९ ॥
निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः ।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पापभोजनाः ॥ १० ॥
निमन्त्रितस्तुयःश्राद्धेकुर्याद्वैकलहंद्विजः । भवन्ति पितरस्तस्यतन्मासंमलभोजनाः
तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः ।
अक्रोधनः शौचपरः कर्त्ता चैव जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥

श्वोभूतेदक्षिणांगत्वादिशंदर्भान्समाहितः।समूलानाहरेद्वारिदक्षिणाग्रान्सुनिर्मलान्
दक्षिणाप्रवणंस्निग्धं विभक्तंशुभलक्षणम्। शुचि देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत्
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव नाम्बुषु। विविक्तेषुच तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा
पारक्येभूमिभागेतु पितृणांनैवनिर्वपेत्। स्वामिभिस्तद्विहन्येतमोहाद्यत्क्रियतेनरैः
अटव्यःपर्वताःपुण्यास्तीर्थान्यायतनानिच। सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नह्येतेषुपरिग्रहः
तिलान्प्रविकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजम्। असुरोपहतं श्राद्धं तिलैः शुध्यत्यजेन तु
ततोऽन्नम्बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमध्यगम्। चोष्यंपेयं संस्कृतञ्चयथाशक्ति प्रकल्पयेत्
ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तरोमनखान्द्विजान्। अवगम्य यथामार्गम्प्रयच्छेद्दन्तधावनम्

"आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरन्ते पृथक् पृथक्"

तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम्। पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥
ततःस्नानान्निवृत्तेभ्यःप्रत्युत्थायकृताञ्जलिः। पाद्यमाचमनीयञ्च सम्प्रयच्छेद्यथाक्रमम्

ये चात्र विश्वदेवानां द्विजाः पूर्वं निमन्त्रिताः।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहतानि च॥ २३॥

दक्षिणामुखमुक्तानि पितृणामासनानि च। दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानितिलोदकैः
तेषूपवेशयेदेतानासनं संस्पृशन्नपि। आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरंस्ते पृथक् पृथक्
द्वौदैवेप्राङ्मुखौ पित्र्येत्रयश्चोदङ्मुखास्तथा। एकैकं तत्र दैवंतु पितृमातामहेष्वपि

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥ २७॥

अपिवा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम्। श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम्॥
उद्धृत्यपात्रेचान्नं तत्सर्वस्मात्प्रकृतात्ततः। देवतायतने वासौ निवेद्यान्यत्प्रवर्त्तयेत्
प्राश्येदन्नं तदग्नौ तु दद्याद्वै ब्रह्मचारिणे। तस्मादेकमपिश्रेष्ठंविद्वांसंभोजयेद्द्विजम्
भिक्षुकोब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः। उपविष्टस्तुयःश्राद्धेकामंतमपिभोजयेत्

अतिथिर्यस्य नाऽश्नाति न तच्छ्राद्धम्प्रशस्यते।
तस्मात्प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः॥ ३२॥

आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जतेये द्विजातयः। काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैवन संशयः
हीनाङ्गःपतितःकुष्ठीव्रणयुक्तस्तुनास्तिकः। कुक्कुटः शूकरश्वानौवर्ज्याःश्राद्धेषुदूरतः
बीभत्सुमशुचिं नग्नंमत्तं धूर्त्तं रजस्वलाम्। नीलकाषायवसनपाषण्डांश्च विवर्जयेत्
यत्तत्र क्रियते कर्म पैतृके ब्राह्मणान्प्रति। तत्सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥
यथोपविष्टान् सर्वांस्तानलङ्कुर्याद्विभूषणैः। स्रग्दामभिःशिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः
ततस्त्वावाहयेद्देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया। उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वेदेवास इत्यृचा

द्वे पवित्रे गृहीत्वाऽस्य भाजने क्षालिते पुनः।
शन्नो देवी जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥ ३६॥

यादिव्याइतिमन्त्रेणहस्तेत्वर्घंविनिक्षिपेत्। प्रदद्याद्गन्धमाल्यानिधूपादीनिचशक्तितः
अपसव्यं ततःकृत्वापितृणांदक्षिणामुखः। आवाहनं ततःकुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचाबुधः
आवाह्यतदनुज्ञातोजपेदायान्तुनस्ततः। शन्नोदेव्योदकंपात्रेतिलोऽसीतितिलांस्तथा

क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वा पुनः।
संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः॥ ४३॥

पितृभ्यः स्थानमेतच्चन्युब्जपात्रंनिधापयेत्। अग्नौकरिष्यन्नादायपृच्छेदन्नंघृतप्लुतम्

कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवित्॥ ४४॥

यज्ञोपवीतिना होमःकर्त्तव्यःकुशपाणिना। प्राचीनावीतिनापित्र्यंवैश्वदेवन्तुहोमवित्
दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरन्सदा। पितॄणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा
सोमाय वै पितृमते स्वधानम इति ब्रुवन्। अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेतिजुहुयात्ततः
अग्न्यभावेतु विप्रस्य प्राणावेवोपपादयेत्। महादेवान्तिके वाथगोष्ठेवा सुसमाहितः

ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणां दिशम्।
गोमयेनोपलिप्याथ स्थानंकुर्यात्ससैकतम्॥ ४६॥

मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणाप्रवणं शुभम्। त्रिरुल्लिखेत्तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि

ततः संस्तीर्य्य तत्स्थाने दर्भान्वै दक्षिणाग्रगान्।
त्रीन्पिण्डान्निर्वपेत् तत्र हविः शेषात्समाहितः॥ ५१॥

उप्यपिण्डांस्तुतद्धस्तंनिमृज्याल्लेपभोजिनान् ।तेषुदर्भेष्वथाचम्यत्रिराचम्यशनैरसून्

तदन्नन्तुनमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥ ५२ ॥

उदकन्निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।

अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथा न्युप्त्वा समाहितः ॥ ५३ ॥

अथ पिण्डाच्च शिष्टान्नं विधिवद्भोजयेद् द्विजान् ।

मांसान् पूपांश्च विविधाञ्छ्राद्धकल्पांस्तु शोभनान् ॥ ५४ ॥

यो (ततोऽन्नमुत्सृजेद्भुक्तेष्वग्रतो विकिरन्भुवि । पृष्ट्वा तदन्नमित्येव तृप्तानाचामयेत्ततः ॥

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।

स्वधास्त्वित्यति च ते ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥ ५६ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् । यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः

पित्रेस्वदितमित्येववाच्यंगोष्ठेषु सुश्रितम् । सम्पन्नमित्यभ्युदयेदेवे सेवितमित्यपि

विसृज्य ब्राह्मणान् तान्वै पितृपूर्वन्तु वाग्यतः ।

दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान् पितॄन् ॥ ५९ ॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।

श्रद्धा च नो मा वि (व्य) गमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विवति ॥ ६० ॥

पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपिवा ।

मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी ॥ ६१ ॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिशेषेणतोषयेत्)। सूपशाकफलानीक्षून् पयोदधिघृतं मधु

अन्नञ्चैव यथाकामंविविधं भोज्यपेयकम् । यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राणांतत्सर्वं विनिवेदयेत्

धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा ।

उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता ॥

पञ्च अन्यत्र फलमूलेभ्यो पानकेभ्यस्तथैव च ॥ ६४ ॥

उर्पा न भूमौ पातयेज्जानु न कुप्येन्नानृतं वदेत् । न पादेन स्पृशेदन्नं न चैवमवधूनयेत् ॥

क्रोधेनैवच यद्भुक्तंयद्भुक्तं त्वयथाविधि । यातुधाना विलुम्पन्तिजल्पता चोपपादितम्

स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ च द्विजोत्तमाः ।
न च पश्येत काकादीन् पक्षिणः प्रतिलोमगान् ॥
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः ॥ ६७ ॥

न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षं लवणं तथा । न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥
काञ्चनेन तु पात्रेण राजतोदुम्बरेण वा । दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः
पात्रेतुमृण्मयेयो वै श्राद्धेवैभोजयेद्द्विजान् । स यातिनरकंघोरंभोक्ता चैव पुरोधसः
नपङ्क्त्यांविषमंदद्यान्नयाचेतनदापयेत् । याचितादापितादाता नरकान्यातिभीषणान्

भुञ्जीरन्नग्रतः श्रेष्ठं न ब्रूयुः प्राकृतान् गुणान् ।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ ७२ ॥
नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः ।
वहूनां पश्यतां सोऽन्यः पङ्क्त्याहरति किल्विषम् ॥ ७३ ॥
न किंचिद्वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः ।
न मांसस्य निषेधेन न चान्यस्यान्नमीक्षयेत् ॥ ७४ ॥
यो नाऽश्नाति द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्मणि ।
स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम् ॥ ७५ ॥
स्वाध्यायाञ्छ्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान् ॥ ७६ ॥

ततोऽन्नमुत्सृजेद्भोक्ता साग्रतोविकिरन्भुवि । पृष्ट्वास्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।
स्वधास्त्विति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥ ७८ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् । यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तुतैर्द्विजैः
पित्र्ये स्वदित इत्येववाक्यं गोष्ठेषुसूत्रितम् । सम्पन्नमित्यभ्युदयेदैवे रोचत इत्यपि

विसृज्य ब्राह्मणांस्तुत्वा पितृपूर्वं तु वाग्यतः ।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥ ८१ ॥

दातारोनोभिवर्द्धंतां वेदाः सन्ततिरेवच । श्रद्धा च नोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोऽस्त्विति

पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी ॥ ८३ ॥
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत् ।
ज्ञातिष्वपि चतुर्थेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः ॥ ८४ ॥

पश्चात्स्वयञ्चपत्नीभिःशेषमन्नंसमाचरेत् । नोद्वासयेत्तदुच्छिष्टंयावन्नास्तंगतोरविः
ब्रह्मचारी भवेतांतु दम्पतीरजनीं तुताम् । दत्त्वा श्राद्धंतथाभुक्त्वासेवते यस्तुमैथुनम्

महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत्पुनः ॥ ८७ ॥
शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः ।
स्वाध्यायञ्च तथाध्वानं कर्त्ता भोक्ता च वर्ज्जयेत् ॥ ८८ ॥

श्राद्धंभुक्त्वापरश्राद्धभुञ्जतेयेद्विजातयः । महापातकिभिस्तुल्या यान्तितेनरकान्बहून्
एषवोविहितःसम्यक्श्राद्धकल्पःसमासतः । अनेनवर्द्धयेन्नित्यं ब्राह्मणोव्यसनान्वितः
आमश्राद्धंयदाकुर्याद्विधिज्ञःश्रद्धयान्वितः । तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैवनिर्वपेत्
योऽनेन विधिनाश्राद्धंकुर्याद्वैशान्तमानसः । व्यपेतकल्मषोनित्यंयतीनां वर्त्तयेत्पदम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंकुर्याद्विजोत्तमः । आराधितोभवेदीशस्तेनसम्यक्सनातनः

अपि मूलैः फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्द्धनो द्विजः ।
तिलोदकैस्तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा समाहितः । ६४ ॥

न जीवत्पितृकोदद्याद्धोमान्तं वा विधीयते । येषां वापि पितादद्यात्तेषाञ्चैकेप्रचक्षते
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । यो यस्य प्रीयते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु
भोजयेद्वापि जीवन्तंयथाकामं तु भक्तितः । न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति प्रयतःशुचिः

द्व्यामुष्यायणिको दद्याद्बीजिक्षेत्रिकयोः समम् ।
अधिकारी भवेत्सोऽथ नियोगोत्पादितो यदि ॥ ६८ ॥

अनियुक्तात्सुतोयश्चशुक्रतोजायतेत्विह । प्रदद्याद्बीजिने पिण्डंक्षेत्रिणेतु ततोऽन्यथा

द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्ताभ्यां क्षेत्रिणे बीजिने तथा ।

कीर्त्तयेदथचैवास्मिन् वीजिनं क्षेत्रिणं ततः ॥
मृताहनि तु कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः ॥ १०० ॥
अशौचेस्वेपरिक्षीणेकाम्यंवै कामतः पुनः । पूर्वाह्ने चैव कर्त्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना
देववत्सर्वमेव स्यान्नैव कार्या तिलैः क्रियाः ।
दर्भाश्च ऋजवः कार्या युग्मान्वै भोजयेद् द्विजान् ॥ १०२ ॥
नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत् ।
मातृश्राद्धं तु पूर्व्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् ॥ १०३ ॥
ततो मातामहानान्तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् । दैवपूर्वं प्रदद्याद्वै न कुर्यादप्रदक्षिणम्
प्राङ्मुखो निर्वपेद्विद्वानुपवीती समाहितः । पूर्वं तु मातरःपूज्याभक्त्यावै सगणेश्वराः
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु । पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्भूषणैरपि पूजयेत्
पूजयित्वामातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयंद्विजः । अकृत्वा मातृयोगंतुयःश्राद्धंतुनिवेशयेत्
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसां गच्छन्ति मातरः ॥ १०७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पवर्णनंनाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

अशौचकल्पवर्णनम्

व्यास उवाच

दशाहम्प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विधीयते । मृतेषुवापिजातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः ।
न कुर्याद्विहितं किञ्चित्स्वाध्यायं मनसाऽपि च ॥ २ ॥

शुचीनक्रोधनान् भूस्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान्।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानान् जुहुयात्तथा ॥ ३ ॥
न स्पृशेदुरिमानन्येनच तेभ्यः समाहरेत्। चतुर्थे पञ्चमे चाह्निसंस्पर्शः कथितोबुधैः
सूतकेतु सपिण्डानां संस्पर्शोनैवदुष्यति। सूतकं सूतिकाञ्चैव वर्ज्जयित्वानृणांपुनः
अधीयानस्तथा वेदान् वेदविच्च पिता भवेत्।
संस्पृश्याः सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहतः ॥ ६ ॥
दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमाशौचं वातिनिर्गुणे। एकद्वित्रिगुणैर्युक्तश्चतुर्ह्यैकदिनैः शुचिः
दशाह्नादपरं सम्यक्अधीयीत जुहोति च। चतुर्थे तस्य संस्पर्शंमनुः प्राहप्रजापतिः
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च। यथेष्टाचरणस्येह मरणान्तमशौचकम्
त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम्। प्राक्सम्वत्सरात्त्रिरात्रंदशरात्रंततःपरम्
ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते।
(त्रिरात्रेणशुचिस्त्वन्यो यदिह्यत्यन्तनिर्गुणः। अदन्तजातमरणेपित्रोरेकाहमिष्यते)
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ ॥ ११ ॥
आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्। त्रिरात्रमौपनयनात्सपिण्डानामशौचकम्
जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः।
मातुश्च सूतकं तत्स्यात्पिता स्यात्स्पृश्य एव च ॥ १३ ॥
सदाशौचंसपिण्डानांकर्त्तव्यंसोदरस्यतु। ऊद्ध्र्वं दशाहादेकाहंसोदरोयदिनिर्गुणः
ततोद्ध्र्वं दन्तजननात्सपिण्डानामशौचकम्।
एकरात्रं निर्गुणानां चौडादूद्ध्र्वंत्रिरात्रकम् ॥ १५ ॥
अदन्तजातमरणंसम्भवेद्यदि सत्तमाः। एकरात्रंसपिण्डानांयदि तेऽत्यन्तनिर्गुणाः
व्रतादेशात्सपिण्डानां गर्भस्रावात्स्वपाततः।
(सर्वेषामेवगुणिनामूद्ध्र्वन्तु विषमः पुनः।
अर्वाक् षण्मासतःस्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः।
तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम्।

तत ऊर्द्ध्वन्तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम् ॥
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च धातुतः ।)

गर्भच्युतादहोरात्रंसपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे । यथेष्टाचरणे ज्ञातौत्रिरात्रमितिनिश्चयः यदिस्यात्सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत् । शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे त्रिरात्रकम् मरणोत्पत्तियोगेन मरणेन समाप्यते । आद्यंवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुद्ध्यति (तथाच पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत्) । देशान्तरगतं श्रुत्वा सूतकं शावमेवच

तावदप्रयतो मर्त्यो यावच्छेषं समाप्यते ॥ २० ॥
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम् ।

(अथैवमरणेस्नानमूर्द्ध्वंसम्वत्सराद्यदि । वेदार्थविद्याधीयानोयोऽग्निवान्वृत्तिकर्षितः सद्यः शौचंभवेत्तस्यसर्वावस्थासुसर्वदा । स्त्रीणामसंस्कृतानांतुप्रदानात्परतःसदा

सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात्संस्कारे भर्त्तुरेव हि ।
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणं स्मृतम् ॥

ऊनद्विवर्षामरणे सद्यः शौचमुदाहृतम् । आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम्)

आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशारात्रं ततःपरम् ॥ २१ ॥

मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् । एकादशानाञ्च तथा सूतके चैतदेव हि पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च । एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि प्रेतेराजनिसज्योतिर्यस्यस्याद्विषयेस्थितः । गृहेमृतासुसर्वासु कन्यासुचत्र्यहंपितुः परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्यास्वभार्यास्वन्यगासुच आचार्यपुत्रेपत्न्याञ्चअहोरात्रमुदाहृतम् । एकाहं स्यादुपाध्यायेस्वग्रामेश्रोत्रियेऽपिच त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषुच । एकाहं चास्ववर्ये स्यादेकरात्रं तदिष्यते त्रिरात्रंश्वश्रूमरणात् श्वशुरेचैतदेव हि । सद्यःशौचंसमुद्दिष्टं स्वगोत्रे संस्थितेसति शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेनभूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति

क्षत्त्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः ।
तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥

राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु । तमेवशौचं कुर्याता विशुद्ध्यर्थमसंशयम्
सर्वे तूत्तरवर्णानामशौचं कुर्यु राद्वृताः । तद्वर्णविधिद्दृष्टेन स्वं तु शौचं स्वयोनिषु
षड्रात्रं तु त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण तु । वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेवच
अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः । शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्यस्याशौचमेवच
षड्रात्रं वै दशाहश्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः । अशौचंक्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेणद्विजपुङ्गवाः

शूद्रविट्क्षत्त्रियाणांतु ब्राह्मणस्य तथैव च ।
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलापतिः ॥ ३६ ॥
असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३७ ॥

यद्यन्नमति तेषांतु त्रिरात्रेणततःशुचिः । अनदंस्त्वन्नमह्ना तु नचतस्मिन्गृहे वसेत्
सोदकेऽथ तदेवस्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु । दशाहेन शवस्पर्शी सपिण्डश्चैव शुद्ध्यति
यदि निर्हरति प्रेतं लोभादाक्रान्तमानसः । दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्द्वादशाहेनभूमिपः
अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति । षड्रात्रेणाथवासर्वेत्रिरात्रेणाथवापुनः
अनाथश्चैवनिर्हृत्यब्राह्मणंधनवर्जितम् । स्नात्वासम्प्राश्यचघृतं शुध्यन्तिब्राह्मणादयः
अपरश्चेत्परं वर्णमपरश्चापरे यदि । अशौचे संस्पृशेत्स्नेहात्तदा शौचेन शुद्ध्यति ॥
प्रेतीभूतं द्विजं विप्रोह्यनुगच्छेतकामतः । स्नात्वासचैलंस्पृष्ट्वाग्निंघृतंप्राश्यविशुध्यति

एकाहात्क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्चद्व्यहेन तु ।
शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः ॥ ४५ ॥
अनस्थिसञ्चिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मणः स्वकैः ।
त्रिरात्रं स्यात्तथाशौचमेकाहं त्वन्यथा स्मृतम् ॥ ४६ ॥

अस्थिसञ्चयनादर्वागेकाहः क्षत्रवैश्योः । अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणेस्नानमेव तु॥
अनस्थिसञ्चिते विप्रो ब्राह्मणोरौतिचेत्तदा । स्नानेनैवभवेच्छुद्धिःसचैलेनात्रसंशयः

यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि ।
बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति ॥ ४६

यस्तेषां सममश्नाति सकृदेवापि कामतः ।
तदाऽशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥ ५० ॥

यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतोनरः । तावन्त्यहान्यशौचंस्यात्प्रायश्चित्तंततश्चरेत्
दाहाद्यशौचं कर्त्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम् । सपिण्डानाञ्चमरणेमरणादितरेषु च
सपिण्डता च पुरुषेसप्तमेविनिवर्त्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ५३ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः । लेपभाजस्त्रयो ज्ञेयाःसापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्

अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ।
तासां तु भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः पितामहः ॥ ५५ ॥

ये चैकजाता बहवोभिन्नयोनयएव च । भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्यंभवेत्तेषांत्रिपूरुषम्

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।
दातारो नियमाच्चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ ।
सत्त्रिणो व्रतिनस्तावत्सद्यः शौचमुदाहृतम् ॥ ५७ ॥

राजा चैवाऽभिषिक्तश्च अन्नसत्रिण एव च । यज्ञे विवाहकाले च दैवयोगे तथैव च

सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपप्लवे ॥ ५८ ॥

डिम्बाहवहतानाञ्चसर्पादिमरणेऽपि च । सद्यः शौचं समाख्यातं स्वज्ञातिमरणेतथा
अग्निमरुत्प्रपतने वीराध्वन्यप्यनाशके । गोब्राह्मणार्थे सन्न्यस्ते सद्यःशौचंविधीयते
नैष्ठिकानां वनस्थानांयतीनांब्रह्मचारिणाम् । नाशौचंकीर्त्यतेसद्भिःपतितेचतथामृते

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नाऽस्थिसञ्चयः ।
नाऽश्रुपातो न पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥ ६२ ॥
व्यापादयेत्तथाऽऽत्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः ।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम् ॥ ६३ ॥
अथ किञ्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः ।
तस्याऽशौचं विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम् ॥ ६४ ॥

जाते कुमारे तदहः कामंकुर्यात्प्रतिग्रहम् । हिरण्यधान्यगोवासस्तिलांश्चगुडसर्पिषा

फलानि पुष्पं शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च। तक्रंदधिघृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च
आशौचिनो गृहाद्ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः ॥ ६६ ॥
आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः।
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः ॥ ६७ ॥
देहाभावात्पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिम्पुनः।
दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः ॥ ६८ ॥
सकृत्प्रसिञ्चेदुदकं नामगोत्रेण वाग्यतः। दशाहं बान्धवाः श्राद्धं सर्वेचैवसुसंयताः
पिण्डं प्रतिदिनंदद्युः सायंप्रातर्यथाविधि। प्रेतायच गृहद्वारिचतुर्थे भोजयेद्द्विजान्
द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म्म सबान्धवैः।
चतुर्थे बान्धवैः सर्वैरस्थ्नां सञ्चयनं भवेत्।
पूर्वान्प्रयुञ्जयेद्विप्रान् युग्मान्सुश्रद्धया शुचीन् ॥ ७१ ॥
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि। युग्मांश्च भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धंतु तद्द्विजाः
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्यभावतः। द्वादशे वाह्नि कर्त्तव्यंनवमेऽप्यथवाहनि
एकं पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च ॥ ७३ ॥
एवं मृताह्नि कर्त्तव्यं प्रतिमासंतु वत्सरम्। सपिण्डीकरणं प्रोक्तंपूर्णेसंवत्सरेपुनः
कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः।
प्रेतार्थे पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः ॥ ७५ ॥
येसमाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि। सपिण्डीकरणश्राद्धंदेवपूर्वं विधीयते
पितृनावाहयेत्तत्रपुनःप्रेतंविनिर्द्दिशेत्। ये सपिण्डीकृताःप्रेतानतेषांस्युःप्रतिक्रियाः
यस्तु कुर्यात्पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते ॥ ७७ ॥
मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डानब्दं समावसेत्। दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहंप्रेतधर्मतः
पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते। प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेष सनातनः
मातापित्रोः सुतैः कार्यम्पिण्डदानादिकञ्च यत्।
पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥ ८० ॥

अनेनैव विधानेन जीवः श्राद्धं समाचरेत् ।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः ॥ ८१ ॥
एषवःकथितःसम्यग्गृहस्थानांक्रियाविधिः । स्त्रीणांभर्तृ शुश्रूषाधर्मोनान्यइहोच्यते
स्वधर्मतत्परा नित्यमीश्वरार्पितमानसाः । प्राप्नुवन्ति परं स्थानंयदुक्तंवेदवादिभिः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुश्राद्धकल्पेऽशौचकल्पवर्णनंनाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्यवर्णनम्

व्यास उवाच

अग्निहोत्रंतु जुहुयात्सायम्प्रातर्यथाविधि । दर्शे चैव हितस्यान्तेनवसस्येतथैवच
इष्ट्वा चैव यथान्यायमृत्वन्ते च द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सोऽग्निकैर्मखैः ॥ २ ॥
नानिष्ट्वानवसस्येष्ट्यापशुनावाग्निमान्द्विजः । नचान्नमद्यान्मांसंवादीर्घमायुर्जिजीविषुः
नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः । प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः
सावित्रान्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितृंश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकासु च ॥ ५ ॥
एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते ।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ ६ ॥
नास्तिक्यादथवालस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति ।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून् ॥ ७ ॥
(तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ । कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा ।

फलानि पुष्पं शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च। तक्रंदधिघृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च

आशौचिनो गृहाद्ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः ॥ ६६ ॥

आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ।

अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः ॥ ६७ ॥

देहाभावात्पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिम्पुनः ।

दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः ॥ ६८ ॥

सकृत्प्रसिञ्चेदुदकं नामगोत्रेण वाग्यतः। दशाहं बान्धवाः श्राद्धं सर्वेचैवसुसंयताः

पिण्डं प्रतिदिनंदद्युः सायंप्रातर्यथाविधि। प्रेतायच गृहद्वारिचतुर्थे भोजयेद्द्विजान्

द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म्म सबान्धवैः ।

चतुर्थे बान्धवैः सर्वैरस्थ्नां सञ्चयनं भवेत् ।

पूर्वान्प्रयुञ्जयेद्विप्रान् युग्मान्सुश्रद्धया शुचीन् ॥ ७१ ॥

पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि। युग्मांश्च भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धंतु तद्द्विजाः

एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्यभावतः। द्वादशे वाह्नि कर्त्तव्यंनवमेऽप्यथवाहनि

एकं पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च ॥ ७३ ॥

एवं मृताह्नि कर्त्तव्यं प्रतिमासंतु वत्सरम्। सपिण्डीकरणं प्रोक्तंपूर्णेसंवत्सरेपुनः

कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः ।

प्रेतार्थे पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः ॥ ७५ ॥

येसमाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि। सपिण्डीकरणश्राद्धंदेवपूर्वं विधीयते

पितॄनावाहयेत्तत्रपुनःप्रेतंविनिर्द्दिशेत्। ये सपिण्डीकृताःप्रेतानतेषांस्युःप्रतिक्रियाः

यस्तु कुर्यात्पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते ॥ ७७ ॥

मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डानब्दं समावसेत्। दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहंप्रेतधर्मतः

पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते। प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेष सनातनः

मातापित्रोः सुतैः कार्यम्पिण्डदानादिकञ्च यत् ।

पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥ ८० ॥

अनेनैव विधानेन जीवः श्राद्धं समाचरेत् ।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः ॥ ८१ ॥
एषवःकथितःसम्यग्गृहस्थानांक्रियाविधिः । स्त्रीणांभर्तृशुश्रूषाधर्मोनान्यइहोच्यते
स्वधर्मतत्परा नित्यमीश्वरार्पितमानसाः । प्राप्नुवन्ति परं स्थानंयदुक्तंवेदवादिभिः

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुश्राद्धकल्पेऽशौचकल्पवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्यवर्णनम्

व्यास उवाच

अग्निहोत्रंतु जुहुयात्सायम्प्रातर्यथाविधि । दर्शे चैव हितस्यान्तेनवसस्येतथैवच
इष्ट्वा चैव यथान्यायमृत्वन्ते च द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सोऽग्निकैर्मखैः ॥ २ ॥
नानिष्ट्वानवसस्येष्ट्यापशुनावाग्निमान्द्विजः । नचान्नमद्यान्मांसंवादीर्घमायुर्जिजीविषुः
नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः । प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः
सावित्रान्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितृंश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकासु च ॥ ५ ॥
एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते ।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ ६ ॥
नास्तिक्यादथवालस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति ।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून् ॥ ७ ॥
(तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ । कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा ।

अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्नोति सुदुर्मतिः ।
अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते ।)
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
आधायाऽग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ॥ ८ ॥

अग्निहोत्रात्परोधर्माद्विजानां नेहविद्यते । तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रणशाश्वतम्

यस्त्वाध्यायाग्निमांश्च स्यान्न यष्टुं देवमिच्छति ।
स सम्मूढो न सम्भाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः ॥ १० ॥

यस्यत्रैवार्षिकम्भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये । अधिकं वा भवेद्यस्य स सोमं पातुमर्हति

एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते । सोमेनाराधयेद्देवं सोमलोकमहेश्वरम् ॥१२

नसोमयागादधिकोमहेशाराधनात्ततः । न सोमो विद्यतेतस्मात्सोमेनाभ्यर्चयेत्परम्

पितामहेनविप्राणामादायविहितःपशुः । धर्मोविमुक्तयेसाक्षाच्छ्रौतःस्मार्त्तोभवेत्पुनः

श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात्स्मार्त्तः पूर्वं मयोदितः ।
श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत् ॥ १४ ॥
उभावपि हितौ धर्मौ वेदवेदविनिःसृतौ ।
शिष्टाचारस्तृतीयःस्याच्छ्रुतिस्मृत्योरभावतः ॥ १५ ॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः नित्यमात्मगुणान्विता ॥ १६ ॥

तेषामभिमतोयःस्याच्चेतसानित्यमेवहि । सधर्मःकथितःसद्भिर्नान्येषामितिधारणा

पुराणंधर्मशास्त्राणि वेदानामुपवृंहणम् । एकस्माद्ब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः ॥

धर्मं जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम् । धर्मशास्त्रं पुराणानि ब्रह्मज्ञानेतराश्रमम्

नान्यतो जायते धर्मो ब्राह्मी विद्या च वैदिकी ।
तस्माद्धर्मं पुराणञ्च श्रद्धातव्यं मनीषिभिः ॥ २० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्य-
निरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

द्विजादीनांवृत्तिवर्णनम्

व्यास उवाच

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः ।
द्विजातेः परमो धर्मो वर्त्तनानि निबोधत ॥ १ ॥

द्विविधस्तुगृहीज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः । अध्यापनंयाजनञ्च पूर्वस्याहुःप्रतिग्रहम्
कुसीदकृषिवाणिज्यम्प्रकुर्वन्तः स्वयं कृतम् ॥ २ ॥

कृषेरभावे वाणिज्यं तदभावे कुसीदकम् । आपत्कल्पस्त्वयंज्ञेयः पूर्वोक्तोमुख्यइष्यते
स्वयं वा कर्षणाकुर्याद्वाणिज्यं वा कुसीदकम् ।
कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद्विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

क्षात्रवृत्तिम्पराम्प्राहुर्न स्वयंकर्षणंद्विजैः । तस्मात्क्षात्रेण वर्त्तेत वर्ततेऽनापदिद्विजः
तेन चावाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिःकृषिव्रजेत् । न कथञ्चन कुर्वीतब्राह्मणः कर्म कर्षणम्
लब्धलाभः पितृन्देवान्ब्राह्मणांश्चापिपूजयेत् । तेतृप्तास्तस्यतंदोषंशमयन्तिनसंशयः
देवेभ्यश्चपितृभ्यश्चदद्याद्भागन्तुविंशकम् । त्रिंशद्भागंब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन्न दुष्यति
वाणिज्येद्विगुणंदद्यात् कुसीदीत्रिगुणंपुनः । कृषिपालान्नदोषेणयुज्यते नात्रसंशयः
शिलोञ्छंवाप्याददीतगृहस्थःसाधकःपुनः । विद्याशिल्पादयस्त्वन्येबहवोवृत्तिहेतवः
असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः ।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः ॥ ११ ॥

अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि । अयाचितं स्यादमृतं मृतम्भैक्षन्तुयाचितम्
कुशूलधान्यकोवा स्यात्कुम्भीधान्यकएवच । त्र्यहिकोवापिचभवेदश्वस्तनिकएव च
चतुर्णामपि वै तेषां द्विजानांगृहमेधिनाम् । श्रेयान्परःपरोज्ञे योधर्मतोलोकजित्तमः
षट्कर्मको भवेत्तेषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति

वर्त्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टिः पार्वायणान्ता याः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १६ ॥
नलोकवृत्तंवर्त्तेतवार्त्तान्ते वृत्तिहेतवे । अजिह्मामशठांशुद्धांजीवेद्ब्राह्मणजीविकाम्
याचित्वा चार्थसद्भ्योऽन्नं पितॄन्देवांस्तु तोषयेत् ।
याचयेद्वा शुचीन्दान्तान्तेन तृप्येत् स्वयं ततः ॥ १८ ॥
यस्तु द्रव्यार्ज्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु ।
देवान्पितॄंस्तु विधिना शुनां योनिं व्रजत्यधः ॥ १६ ॥
धर्मश्चार्थश्चकामश्चश्रेयोमोक्षश्चतुष्टयम् । धर्माद्विरुद्धःकामःस्याद्ब्राह्मणानांतुनेतरः
योऽर्थो धर्माय नाऽऽत्मार्थं सोऽर्थो नार्थस्तथेतरः ।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद्वै जुहुयाद् द्विजः ॥ २१ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु द्विजातीनां वृत्तिनिरूणं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

दानधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् । ब्रह्मणाभिहितंपूर्वमृषाणां ब्रह्मवादिनाम्
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिर्द्दिष्टंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम्
यद्ददाति विशिष्टेभ्यःशिष्टेभ्यःश्रद्धयायुतः । तद्विचित्रमहम्मन्येशेषंकस्यापिरक्षति
नित्यंनैमित्तिकंकाम्यंत्रिविधंदानमुच्यते । चतुर्थं विमलम्प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्
अहन्यहनियत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे । अनुद्दिश्यफलंतस्माद्ब्राह्मणायतुनित्यकम्
यत्तुपापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषांकरे । नैमित्तिकन्तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥

आपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते। दानंतत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्द्धर्मचिन्तकैः
यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसाधर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८॥
दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः। उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः
कुटुम्बभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते। अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानं फलप्रदम् ॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने।
व्रतस्थाय दरिद्राय यद्देयं भक्तिपूर्वकम् ॥ ११ ॥

यस्तुदद्यान्महीम्भक्त्याब्राह्मणायाहिताग्नये। सयातिपरमंस्थानंयत्रगत्वानशोचति
इक्षुभिः सन्ततांभूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविदुषे यः स भूयोनजायते
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिंसम्प्रयच्छति। ब्राह्मणायदरिद्रायसर्वपापैः प्रमुच्यते
भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन। अन्नदानंतेनततुल्यं विद्यादानंततोऽधिकम्
यो ब्राह्मणाय शुचये धर्मशीलाय शीलिने। ददाति विद्यां विधिनाब्रह्मलोकेमहीयते
दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्राह्मणंस्थानमाप्नुयात्

गृहस्थायाऽन्नदानेन फलम्प्राप्नोति मानवः।
आगमे चास्य दातव्यं दत्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ॥ १८ ॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यांतु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा।
उपोष्य विधिना शान्ताञ्छुचीन् प्रयतमानसः ॥ १६ ॥

पूजयित्वातिलैःकृष्णैर्मधुनाचविशेषतः। गन्धादिभिःसमभ्यर्च्यवाचयेद्वास्वयंवदेत्
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्त्तते। यावज्जीवं कृतम्पापं तत्क्षणादेव नश्यति
कृष्णाजिनेतिलान्दत्त्वाहिरण्यंमधुसर्पिषी। ददातियस्तुविप्राय सर्वंतरतिदुष्कृतम्
कृतान्नमुदकुम्भञ्च वैशाख्याञ्च विशेषतः। निर्द्दिश्यधर्मराजायविप्रेभ्योमुच्यतेभयात्
सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा। तर्पयेदुदपात्राणि ब्रह्महत्यां व्यपोहति

(माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः।)
शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु विप्रेभ्यः सुसमाहितः ॥

जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः ॥ २५ ॥
अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने । यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याद्वोद्दिश्यशङ्करम्
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः । सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

यस्तु कृष्णचतुर्द्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम् ।
आराधयेद् द्विजमुखे न तस्याऽस्ति पुनर्भवः ॥ २८ ॥
कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये ।
स्नात्वाऽभ्यचर्य्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः ॥ २६ ॥

प्रीयतांमेमहादेवोदद्याद्द्रव्यंस्वकीयकम् । सर्वपापविनिर्मुक्तःप्राप्नोतिपरमांगतिम्

द्विजैः कृष्णचतुर्द्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः ।
अमावास्यांतु वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः ॥ ३१ ॥

एकादश्यां निराहारोद्वादश्यांपुरुषोत्तमम् । अर्चयेद्ब्राह्मणमुखेस गच्छेत्परमम्पदम्
एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद्द्वादशीशुक्लपक्षके । तस्यामाराधयेद्देवम्प्रयत्नेन जनार्द्दनम्
यत्किञ्चिद्देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ । दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम्

यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुन्नरः ।
ब्राह्मणान् पूजयेद्विद्वान् स तस्यास्तोषहेतुतः ॥ ३५ ॥
द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित् ॥ ३६ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सुभिः ।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः ॥ ३७ ॥

विभूतिकामः सततं पूजयेद्वैपुरन्दरम् । ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः ॥
आरोग्यकामोऽथरविंधेनुकामोहुताशनम् । कर्मणांसिद्धिकामस्तुपूजयेद्वैविनायकम्
भोगकामस्तुशशिनंबलकामःसमीरणम् । मुमुक्षुः सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्च्चयेद्धरिम्
यस्तु योगंतथामोक्षमिच्छेत्तज्ज्ञानमैश्वरम् । सोऽर्चयेद्वैविरूपाक्षंप्रयत्नेन महेश्वरम्
यो वाञ्छतिमहायोगाज्ज्ञानानिच महेश्वरम् । ते पूजयन्तिभूतेशंकेशवञ्चापिभोगिनः

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥
भूमिदःसर्वमाप्नोतिदीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽग्र्याणिवेश्मानिरूप्यदोरूप्यमुत्तमम्

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।

अनडुद्दः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ ४५ ॥

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः । धान्यदःशाश्वतंसौख्यंब्रह्मदोब्रह्मसात्म्यताम्
धान्यान्यपियथाशक्तिविप्रेषुप्रतिपादयेत् । वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्यस्वर्गं समश्नुते
गवां वा सम्प्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते । इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥

फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च ।

प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः स्वयम्भवेत् ॥ ४६ ॥

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये । ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम् । तीव्रतापञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः ॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे । तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।

संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तम्भवति चाक्षयम् ॥ ५३ ॥

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च । दत्त्वाचाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च
दानधर्मात्परोधर्मोभूतानांनेह विद्यते । तस्माद्विप्रायदातव्यंश्रोत्रियाय द्विजातिभिः
स्वर्गायुर्भूतिकामेनतथापापोपशान्तये । मुमुक्षुणाच दातव्यंब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम्
दीयमानन्तुयो मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च । निवारयतिपापात्मातिर्यग्योनिंव्रजेत्तु सः

यस्तु द्रव्यार्ज्जनं कृत्वा नार्च्चयेद्द्ब्राह्मणान् सुरान् ।

सर्वस्वमपहृत्यैनं राष्ट्राद्विप्रतिवासयेत् ॥ ५८ ॥

यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति । म्रियमाणेषुसत्त्वेषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः
तस्मान्नप्रतिगृह्णीयान्नवै देयश्चतस्यहि । अङ्कयित्वास्वकाद्राष्ट्रात्तं राजाविप्रवासयेत्
यस्तु सद्भ्यो ददातीह न द्रव्यंधर्मसाधनम् । सपूर्वाभ्यधिकःपापीनरकेपच्यतेनरः

स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ।

सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमाः ॥ ६२ ॥

सुभुक्तमपिविद्वांसंधार्मिकम्भोजयेद् द्विजम् । न तु मूर्खमवृत्तस्थंदशरात्रमुपोषितम्
सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति । स तेन कर्मणापापी दहत्यासप्तमंकुलम्

यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ।
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्याऽपि सन्निधिम् ॥ ६५ ॥

योऽर्च्चितम्प्रतिगृह्णाति ददात्यर्च्चितमेववा । तावुभौगच्छतः स्वर्गं नरकन्तु विपर्यये
न वार्यपि प्रयच्छेतनास्तिकेहैतुकेऽपि च । पाषण्डेषुच सर्वेषुनाऽवेदविदि धर्मवित्

अपूपश्च हिरण्यञ्च गामश्वं पृथिवींतिलान् ।
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति काष्ठवत् ॥ ६८ ॥
द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः ।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथञ्चन ॥ ६६ ॥

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेत् नेहेतधनविस्तरम् । धनलोभेप्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेवहीयते

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः ।
न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद्यामवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थन्तु धनं हरेत् ।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥ ७२ ॥

यस्तुस्याद्याचकोनित्यंनसस्वर्गस्यभाजनम् । उद्वेजयतिभूतानियथाचौरस्तथैवसः

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन् अर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ ७४ ॥

एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः । वर्त्तमानः संयतात्मायातितत्परमम्पदम्
पुत्रेनिधायवासर्वंगत्वाऽरण्यन्तु तत्त्ववित् । एकाकीविचरेन्नित्यमुदासीनःसमाहितः

एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः ।
ज्ञात्वा तु तिष्ठेन्नियतं तथाऽनुष्ठापयेद् द्विजान् ॥ ७७ ॥

इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम् ।

समतीत्य स सर्वभूययोनिं प्रकृतिं वै स परं न याति जन्म ॥ ७८ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुदानधर्मवर्णनंनाम

षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं गृहाश्रमेस्थित्वाद्वितीयम्भागमायुषः । वानप्रस्थाश्रमंगच्छेत्सदारःसाग्निरेववा
निक्षिप्यभार्यांपुत्रेषु गच्छेद्वनमथापिवा । दृष्ट्वा पत्यस्यचापत्यं जर्ज्जरीकृतविग्रहः
शुक्लपक्षस्यपूर्वाह्णे प्रशस्तेचोत्तरायणे । गत्वारण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात्समाहितः
फलमूलानिपूतानि नित्यमाहारमाहरेत् । यताहारोभवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥ ४॥

पूजयित्वातिथीन्नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान् ।
गृहादादाय चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः ॥ ५ ॥
जटां वै बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत् ।
स्वाध्यायं सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः ॥ ६ ॥

अग्निहोत्रञ्चजुहुयात्पञ्चयज्ञान्समाचरेत् । मुन्यन्नैर्विविधैर्वन्यैः शाकमूलफलेन च ॥
चीरवासाभवेन्नित्यं स्नातित्रिषवणंशुचिः । सर्वभूतानुकम्पीस्यात्प्रतिग्रहविवर्जितः
स दर्शपौर्णमासेन यजेतनियतंद्विजः । ऋक्षेष्वाग्रयणेचैवचातुर्मास्यानि चाहरेत् ॥ ६
उत्तरायणञ्चक्रमशो दक्षस्यायनमेव च । वासन्तैः शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥
पुरोडाशांश्चरुञ्चैव द्विविधं निर्वपेत्पृथक् । देवताभ्यश्चतद्धुत्वावन्यं मेध्यतरं हविः
शेषं समुपभुञ्जीत लवणञ्च स्वयंकृतम् । वर्ज्जयेन्मधुमांसानि भौमानि कवकानिच
भूस्तृणं शिशुकञ्चैव श्लेष्मातकफलानि च । नफालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपिकेनचित्

न ग्रामजातान्यार्त्तोऽपिपुष्पाणिचफलानि च । श्रावणेनैवविधिनावह्निंपरिचरेत्सदा
नद्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयोभवेत् । ननक्तञ्चैवमश्नीयात्रात्रौध्यानपरोभवेत्
जितेन्द्रियोजितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः । ब्रह्मचारीभवेन्नित्यंनपत्नीमपिसंश्रयेत्

यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् ।
तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥ १७ ॥
तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो भवेद् द्विजः ।
न च वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि ॥ १८ ॥

अधःशयीत नियतं सावित्रीजपतत्परः । शरण्यः सर्वभूतानां सम्विभागरतः सदा॥
परिवादंमृषावादंनिद्रालस्यंविवर्जयेत् । एकाग्निरनिकेतःस्यात्प्रोक्षितांभूमिमाश्रयेत्

मृगैः सह चरेद्वा यस्तैः सहैव च संविशेत् ।
शिलायां वा शर्करायां शयीत सुसमाहितः ॥ २१ ॥
सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयकोऽपि वा ।
षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव च ॥ २२ ॥
त्यजेदाश्वयुजे मासि सम्पन्नं पूर्वचिन्तितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥ २३ ॥
दन्तोलूखलिको वा स्यात्कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।
अश्मकुट्टो भवेद्वाऽपि कालपक्वभुगेव च ॥ २४ ॥
नक्तं चान्नं समश्नीयाद् दिवा चाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वा चाष्टमकालिकः ॥ २५ ॥
चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्त्तयेत् ।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद् द्विजाग्र्यान् कथितान् सकृत् ॥ २६ ॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत्सदा । स्वाभाविकैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः
भूमौ वा परिवर्त्तेततिष्ठेद्वाप्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेन्न कचिद्धैर्यमुत्सृजेत्
ग्रीष्मेपञ्चतपास्तद्वद्वर्षास्वभ्रावकाशकः । आर्द्रवासास्तु हेमन्तेक्रमशो वर्द्धयंस्तपः

उपस्पृश्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत् । एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन्वा पिबेत्तदा ॥

पञ्चाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽथवा ।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च गोमयम् ॥ ३१ ॥
शीर्णपर्णाशनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत्सदा ।
योगाभ्यासरतश्चैव रुद्राध्यायी भवेत्सदा ॥ ३२ ॥

अथर्वशिरसोऽध्येतावेदान्ताभ्यासतत्परः । यमान् सेवेतसततंनियमांश्चाप्यतन्द्रितः

कृष्णाजिनः सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः ॥ ३४ ॥

अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत् । तापसेष्वेव विप्रेषुयात्रिकंभैक्ष्यमाहरेत्
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु । ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वनेवसन्
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिनाशकलेन वा । विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत्

विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च ।

महाप्रस्थानिकंवासौ कुर्यादनशनन्तु वा । अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः

ये न सम्यगिममाश्रमं शिवं संश्रयन्त्यशिवपुञ्जनाशनम् ।
ते विशन्ति पदमैश्वरं पदं यान्ति यत्र गतमस्य संस्थितेः ॥ ३६ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धेव्यासगीतासु वानप्रस्थाश्रमधर्म्मवर्णनंनाम

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

———

अष्टाविंशोऽध्यायः

यतिधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं वनाश्रमे स्थित्वातृतीयंभागमायुषः । चतुर्थमायुषोभागं सन्न्यासेननयेत्क्रमात्

अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ।

योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥ २ ॥

यदामनसिसञ्जातंवैतृष्ण्यंसर्ववस्तुषु । तदासन्न्यासमिच्छन्तिपतितःस्याद्विपर्यये

प्राजापत्यान्निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवापुनः । दान्तः पक्ककषायोऽसौब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्

ज्ञानसन्न्यासिनः केचिद्वेदसन्न्यासिनः परे ।

कर्मसन्न्यासिनस्त्वन्ये विविधाः परिकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥

यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः ।

प्रोच्यते ज्ञानसन्न्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थितः ॥ ६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यन्निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।

प्रोच्यते वेदसन्न्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ॥ ७ ॥

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वाब्रह्मार्पणपरो द्विजः । सज्ञेयःकर्मसन्न्यासीमहायज्ञपरायणः

त्रयाणामपि चैतेषांज्ञानीत्वभ्यधिकोमतः । नतस्यविद्यतेकार्यंनलिङ्गंवाविपश्चितः

निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।

जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ॥ १० ॥

ब्रह्मचारी मितग्रासी ग्रामात्त्वन्नंसमाहरेत् । अध्यात्ममतिरासीतनिरपेक्षोनिरामिषः

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्

कालमेव प्रतीक्षेत निदेशम्भृतको यथा । नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन

एवं ज्ञात्वापरोयोगीब्रह्मभूयायकल्पते । एकवासाथवाविद्वान्कौपीनाच्छादनस्तथा

मुण्डीशिखीवाथभवेत्त्रिदण्डीनिष्परिग्रहः। काषायवासाःसततंध्यानयोगपरायणः
ग्रामान्तेवृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपिवा। समः शत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः
भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यन्नैकान्नादी भवेत्कचित्।
यस्तु मोहेन चान्यस्मादेकान्नादी भवेद्यतिः॥ १७॥
न तस्यनिष्कृतिःकाचिद्धर्मशास्त्रेषुकथ्यते। रागद्वेषविमुक्तात्मासमलोष्टाश्मकाञ्चनः
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनीस्यात्सर्वनिस्पृहः। दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतंजलंपिबेत्
शास्त्रपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥ १६॥
नैकत्र निवसेद्देशेवर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः। स्नानशौचरतोनित्यंकमण्डलुकरःशुचिः
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत्। मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः। आत्मज्ञानगुणोपेतोयतिर्मोक्षमवाप्नुयात्
अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवाख्यंसनातनम्। स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु
यज्ञोपवीतीशान्तात्माकुशपाणिःसमाहितः। धौतकाषायवसनोभस्मच्छन्नतनूरुहः
अधियज्ञंब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव वा। आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्चयत्
पुत्रेषु चाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः। वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं सयातिपरमांगतिम्
अहिंसा सत्यमस्तेयंब्रह्मचर्यं तपः परम्। क्षमा दयाच सन्तोषोव्रतान्यस्यविशेषतः
वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान् समाहितः। ज्ञानध्यानसमायुक्तो भिक्षार्थे नैवतेनहि
होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः।
स्वाध्यायञ्चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत्॥ २६॥
ततो ध्यायीत तं देवमेकान्ते परमेश्वरम्। एकान्ते वर्जयेन्नित्यं कामंक्रोधं परिग्रहम्
एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्।
कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम्॥ ३१॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु यतिधर्म्मवर्णनंनामऽष्टाविंशोऽध्यायः

———

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

यतिधर्मवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं स्वाश्रमनिष्ठानांयतीनांनियतात्मनाम् । भैक्ष्येण वर्त्तनंप्रोक्तं फलमूलैरथापिवा
एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे । भैक्ष्यप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपि सज्जति
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत् । प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीत अद्भिः प्रक्षालयेत्पुनः
अथवाऽन्यदुपादायपात्रेभुञ्जीतनित्यशः । भुक्त्वातत्सम्मृजेत्पात्रंयात्रामात्रमलोलुपः
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षांनित्यं यतिश्चरेत्

गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालम्भिक्षुरधोमुखः ।
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद्वाग्यतः शुचिः ॥ ६ ॥
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च समाचम्य यथाविधि ।
आदित्ये दर्शयित्वाऽन्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ७ ॥

हुत्वाप्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः । आचम्यदेवंब्रह्माणं ध्यायीतपरमेश्वरम्
अलाबुं दारुपात्रञ्च मृण्मयं वैणवंततः । चत्वार्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापतिः
प्राग्रात्रे परारात्रे च मध्यरात्रेतथैवच । सन्ध्यास्वग्निविशेषेणचिन्तयेन्नित्यमीश्वरम्

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम् ।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम् ॥ ११ ॥

सर्वस्याधारभूतानामानन्दं ज्योतिरव्ययम् । प्रधानपुरुषातीतमाकाशकुहरं शिवम्
तदन्तःसर्वभावानामीश्वरंब्रह्मरूपिणम् । ध्यायेदनादिमध्यान्तमानन्दादिगुणालयम्
महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं सत्यमव्ययम् । तरुणादित्यसङ्काशं महेशं विश्वरूपिणम्

ओङ्कारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि ।
आकाशे देवमीशानं ध्यायीताऽऽकाशमध्यगम् ॥ १२ ॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम् । पुराणं पुरुषं शुभ्रं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात्
यद्वा गुहायां प्रकृतं जगत्सम्मोहनालये । विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम्
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते । आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मंयत्पश्यन्तिमुमुक्षवः
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलंज्ञानलक्षणम् । अनन्तंसत्यमीशानंविचिन्त्यासीतसंयतः
गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम् । योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुतेयोगमैश्वरम्

तस्माद्ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ।

ज्ञानं समाश्रयेद् ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात् ॥ २१ ॥

गत्वा पृथक् स्वमात्मानंसर्वस्मादेवकेवलम् । आनन्दमजरंज्ञानंध्यायीतचपुनःपरम्
यस्माद्भवन्तिभूतानियद्गत्वानेहजायते । स तस्मादीश्वरोदेवःपरस्माद्योऽधितिष्ठति
यदन्तरे तद्गगनं शाश्वतं शिवमुच्यते । यदाहुस्तत्परो यः स्यात्स देवस्तु महेश्वरः
व्रतानियानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च । एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते
उपेत्यतुस्त्रियंकामात्कृच्छ्रसंयतमानसः । प्राणायामसमायुक्तः कुर्यात्सान्तपनंशुचिः
ततश्चरेत नियमात्कृच्छ्रं संयतमानसः । पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥२७॥
न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः । तथापि च न कर्त्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः
एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा । कर्त्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना परमव्ययम्

गतेनाऽपि न कार्यन्ते न कार्यं स्तैन्यमन्यतः ।

स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः ॥ ३० ॥

हिंसाचैषा परा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका । यदेतद्द्रविणं नामप्राणाह्येतेवहिश्चराः
स तस्य हरति प्राणान्योयस्य हरतेधनम् । एवंकृत्वा सुदुष्टात्माभिन्नवृत्तोव्रताहतः

भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ ३२ ॥

विधिना शास्त्रदृष्टेन सम्वत्सरमिति श्रुतिः । भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥

अकस्मादेव हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत् ।

कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा ॥ ३५ ॥

स्कन्नमिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।

तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥ ३५ ॥

दिवास्कन्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतंतथा । एकान्ते मधुमांसे व नवश्राद्धेतथैवच

प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ ३६ ॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यतेसर्वपातकम् । तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वातद्ध्यानपरमोभवेत्

यद्ब्रह्मपरमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् । योऽन्तरापरमं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः । तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ॥३९

यस्मान्महीयसो देवः स्वधाम्निज्ञानसंस्थिते ।

आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ४० ॥

नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तंप्रपश्यति । तमेवात्मानमात्मेतियःसयातिपरम्पदम्

मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ।

न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥ ४२ ॥

एकं ब्रह्म परं ब्रह्म ज्ञेयं तत्तत्त्वमव्ययम् । स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बाध्यते ॥

तस्माद्यजेत नियतं यतिः संयतमानसः । ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ॥

एष वः कथितोविप्रा यतीनामाश्रमः शुभः । पितामहेन विभुनामुनीनां पूर्वमीरितम्

नाऽत्र शिष्यस्य योगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम् ।

ज्ञानं स्वयम्भुना प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम् ॥ ४६ ॥

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं पशुपतिपरितोषे यद्भवेदेकहेतुः ।

न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः प्रणिहितमनसा ये नित्यमेवाचरन्ति ॥ ४७

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु यतिधर्मवर्णनं

नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिंशुभम् । हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये

अकृत्वा विहितं कर्म्म कृत्वा निन्दितमेव च ।

दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २ ॥

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद्ब्राह्मणः क्वचित् ।

यद्ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत् ॥ ३ ॥

वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्म्मकामोऽग्निमान्द्विजः ।

स एव स्यात्परो धर्म्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति ॥ ४ ॥

अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः । यद्ब्रूयुर्धर्मकामांस्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम्

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः । वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्त्तिताः

मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः ।

एकविंशतिविख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै ॥ ७ ॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च । महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह सम्विशेत्

सम्वत्सरन्तु पतितैः संसर्गंकुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितोभवेत्

याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः । सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव च

अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः । सम्वत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च

ब्रह्महाद्वादशाब्दानिकुटिंकृत्वावनेवसेत् । भैक्षमात्मविशुद्ध्यर्थंकृत्वाशवशिरोध्वजम्

ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्ज्जयेत् ।

विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तञ्च संस्मरन् ॥ १३ ॥

असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणिसंविशेत् । विधूमेशनकैर्नित्यंव्यङ्गारेभुक्तवर्ज्जने

एककालश्चरेद्भैक्षं दोषं विख्यापयन्नृणाम् । वन्यमूलफलैर्वापि वर्त्तयेद्वै समाश्रितः
कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः । पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित् ॥ १७ ॥
कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेववा । ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलंवा प्रविशेत्स्वयम्
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु ॥ १९ ॥
दीर्घामयाविनं विप्रं कृत्वानामयमेव वा । दत्त्वा चान्नं सुविदुषे ब्रह्महत्या व्यपोहति
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः । सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायप्रदाय च
सरस्वत्यास्त्वरुणया सङ्गमे लोकविश्रुते ।
शुध्येत्त्रिषवणस्नानात्त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ॥ २२ ॥
गत्वा रामेश्वरं पुण्यंस्नात्वाचैवमहोदधौ । ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रंविमोचयेत्
कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः ।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २४ ॥
यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितौजसा । कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
समभ्यर्च्य महादेवंतत्र भैरवरूपिणम् । तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वामुच्यते ब्रह्महत्यया

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुब्रह्महत्याप्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

———

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणःकपालस्थापनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा। कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजम्भुवि॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयःपुण्यांकथां पापप्रणाशिनीम्। माहात्म्यं देवदेवस्यमहादेवस्यधीमतः
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः। प्रोचुः प्रणम्य लोकादिंकिमेकं तत्त्वमव्ययम्
समायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः। अविज्ञायपरम्भावंस्वात्मानंप्राहधर्षिणम्
अहंधाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः। अनादि मत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्यविमुच्यते
अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः। न विद्यते चाभ्यधिकोमत्तो लोकेषु कश्चन
तस्यैवंमन्यमानस्यजज्ञे नारायणांशजः। प्रोवाचप्रहसन्वाक्यं रोषितोऽयंत्रिलोचनः
किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम्। अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते
अहंकर्त्तादिलोकानांयज्ञे नरायणात्प्रभोः। न मामृतेऽस्यजगतो जीवनंसर्वथाक्वचित्
अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः। मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम्॥
एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैषिणोः। आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि
अन्वीक्ष्यदेवं ब्रह्माणंयज्ञात्मानञ्चसंस्थितम्। प्रोचुःसंविग्नहृदया याथात्म्यंपरमेष्ठिनः

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्त्तते।
यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः॥ १३॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते। यमाहुरीश्वरं देवं स देवःस्यात्पिनाकधृक्

सामवेद उवाच

येनेदम्भ्राम्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम् । योगिभिर्वेद्यते तत्त्वंमहादेवःसशङ्करः

अथर्ववेद उवाच

यम्प्रपश्यन्ति देवेशं यजन्ते यतयः परम् । महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः

एवंसभगवान्ब्रह्मावेदानामीरितंशुभम् । श्रुत्वाचिहस्यविश्वात्माततश्चाहविमोहितः

कथं तत्परमं ब्रह्मसर्वसङ्गविवर्जितम् । रमतेभार्य्ययासार्द्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः ॥ १८॥

इतीरितेऽथभगवान्प्रणवात्मासनातनः । अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वावचःप्राहपितामहम्

प्रणव उवाच

न ह्येष भगवानीश स्वात्मनोव्यतिरिक्तया । कदाचिद्रमतेरुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः

अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ॥ २० ॥

स्वानन्दभूता कथिता देवी आगन्तुका शिवा ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्तेऽपितदायज्ञमूर्त्तेरजस्य च । नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैवमायया ॥ २२ ॥

तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः । प्रादर्शदद्भुतं दिव्यम्पूरयन् गगनान्तरम्

तन्मध्यसंस्थितज्ज्योतिर्मण्डलंतेजसोज्वलम् ।

व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ॥ २४ ॥

स दृष्ट्वा वदनं दिव्यमूर्ध्नि लोकपितामहः । तैजसं मण्डलं घोरमलोकयदनिन्दितम्

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणःपञ्चमं शिरः । क्षणादपश्यत्समहान् पुरुषोनीललोहितः

त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् । तंप्राहभगवान् ब्रह्मा शङ्करंनीललोहितम्

ज्ञानाय पूर्वं भवतो ललाटादद्यशङ्करम् । प्रादुर्भूतंमहेशानं मामतःशरणंव्रज ॥ २८ ॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः । प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम् ॥२६

स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः । प्रचकर्त्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथपञ्चमम्

निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना । ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वधृक्

अथान्वपश्यदीशानं मण्डलान्तरसंस्थितम् । समासीनं महादेव्यामहादेवंसनातनम्

भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशंजटाजूटविराजितम् ॥ ३२

शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम् ।

त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम् ॥ ३४ ॥

यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् । तमादिमेकं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह ॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसञ्ज्ञिता ।

सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल ॥ ३६ ॥

यस्याशेषजगद्बीजंविलयं याति मोहनम् । सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते

येऽथ नाचारनिरतास्तद्भक्ताश्चैव केवलम् । विमोचयतिलोकात्मानायकोदृश्यतेकिल

यस्यब्रह्मादयोदेवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः । अर्चयन्तिसदालिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते

यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरः । न मुञ्चति सदा पार्श्वं शङ्करोऽसौ च दृश्यते

विद्यासहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम् । हिरण्यगर्भपुत्रोसौईश्वरोदृश्यतेपरः

पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगलेजलम् । दत्त्वातरति संसारंरुद्रोऽसौदृश्यतेकिल

तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः ।

कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि दृश्यते ॥ ४३ ॥

जीवनंसर्वलोकानांत्रिलोकस्यैवभूषणम् । सोमःसदृश्यतेदेवःसोमोयस्य विभूषणम्

देव्या सहसदासाक्षाद्यस्य योगस्वभावतः । गीयते परमामुक्तिर्महादेवः स दृश्यते

योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखोऽनिशम् ।

योगं ध्यायन्ति देव्यासौ स योगी दृश्यते किल ॥ ४६ ॥

सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम् । वरासनेसमासीनमवापपरमांस्मृतिम्

लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यांसंस्मृतिंभगवानजः । तोषयामासवरदंसोमंसोमार्द्धभूषणम्

ब्रह्मोवाच

नमोदेवाय महते महादेव्यै नमो नमः । नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः

ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विद्यायै ते नमो नमः । महेशाय नमस्तुभ्यंमूलप्रकृतये नमः ॥

नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमोनमः । नमोऽस्तुकालकालायईश्वरायै नमो नमः

नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमोनमः । नमोनमस्तेकालायमायायैते नमोनमः

नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमोनमः । नमोऽस्तुतेप्रकृतये नमोनारायणाय च

योगदाय नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः। नमः संसारवासाय संसारोत्पत्तये नमः
नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्त्तये। नमःकार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः
ओंकारमूर्त्तयेतुभ्यंतदन्तःसंस्थिताय च। नमस्ते व्योमसंस्थायव्योमशक्त्यैनमोनमः
इति सोमाष्टकेनेशं प्रणिपत्य पितामहः। पपात दण्डवद्भूमौ गृणन्वै शतरुद्रियम्

अथ देवो महादेवः प्रणतार्त्तिहरो हरः।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम्॥ ५८॥

दत्वास्मै परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत्। प्रोवाचाग्रस्थितं रुद्रं नीललोहितमीश्वरम्
एषब्रह्मास्यजगतःसम्पूज्यःप्रथमः स्थितः। आत्मनारक्षणीयस्ते गुणज्येष्ठःपितातव
अयम्पुराणःपुरुषो न हन्तव्यस्त्वयाऽनघ!। स योगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेवशरणंगतः
अयञ्चयज्ञोगर्वोऽसौसगर्वोभवताऽनघ!। शासितव्योविरिञ्चस्यधारणीयंशिरस्त्वया
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन्। चरस्व सततं भिक्षां संस्थापयसुरद्विजान्

इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरम्।
स्थानं स्वाभाविकं दिव्यं ययौ तत्परमम्पदम्॥ ६४॥

ततः स भगवानीशः कपर्द्दी नीललोहितः। ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम्
चरत्वं पापनाशार्थं व्रतंलोके हिताबहम्। कपालहस्तोभगवान् भिक्षांगृह्णातुसर्वतः

उक्त्वैवं प्राहिणोत्कन्यां ब्रह्महत्येति विश्रुताम्।
दंष्ट्राकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम्॥ ६७॥

यावद्वाराणसीं दिव्यांपुरीमेषगमिष्यति। तावद्विभीषणाकाराह्यनुगच्छत्रिशूलिनम्
एवमाभाष्यकालाग्निप्राहलोकमहेश्वरम्। अटस्वलोकानखिलान्भैक्षार्थीमन्नियोगतः
यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम्। तदासौ वक्ष्यतिस्पष्टमुपायं पापशोधनम्
स देवदेवतावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः। कपालपाणिर्विश्वात्मा चचारभुवनत्रयम्
आस्थाय विकृतं वेषंदीप्यमानं स्वतेजसा। श्रीमत्पवित्रंरुचिरं लोचनत्रयसंयुतम्
सहस्रसूर्यप्रतिमं सिद्धैः प्रमथपुङ्गवैः। भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः॥

पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दम्परमेष्ठिनः। लीलाविलासबहुलोलोकानागच्छतीश्वरः

तं दृष्ट्वा कालवदनं शङ्करं कालभैरवम् । रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु ॥७५॥
गायन्ति गीतैर्विविधैर्नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः । सस्मितं प्रेक्ष्यवदनञ्चक्रुर्भूभङ्गमेव च

स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक् ।

जगाम विष्णोर्भुवनं यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः ॥ ७७ ॥

सम्प्राप्य दिव्यभवनं शङ्करो लोकशङ्करः । सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥७८॥
अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम् । न्यवारयत्त्रिशूलाङ्कं द्वारपालो महाबलः
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासामहाभुजः । विष्वक्सेनइतिख्यातोविष्णोरंशसमुद्भवः
(अथ त शङ्करगणं युयुधेविष्णुसम्भवः । भीषणो भैरवादेशात्कालवेगइतिस्मृतः)
विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः । दुद्रावाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्
अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत् । तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदमित्रजित्
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम् । शूलेनोरसिनिर्भिद्य पातयामास तं भुवि ॥

स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वम्परमं बलम् ।

तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव ॥ ८४ ॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्द्धं प्रमथपुङ्गवैः । विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम् ॥
वीक्ष्यतं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरिः । शिरांललाटात्सम्भिद्यरक्तधारामपातयत्
गृहाणभिक्षां भगवन् !मदीयाममितद्युते !। न विद्यतेऽन्या ह्युचिता तव त्रिपुरमर्द्दन!
न सम्पूर्णं कपालं तद्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिता
अथाब्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः । संस्तूय विविधैर्भावैर्बहुमानपुरःसरम् ॥
किमर्थमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम् । प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः ॥६०॥
समाहूय हृषीकेशोब्रह्महत्यामथाच्युतः । प्रार्थयामास भगवान्विमुञ्चेतित्रिशूलिनम्

न तत्याजाऽथ सा पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।

चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित् ॥ ६२ ॥

व्रजस्वदिव्यां भगवन्पुरींवाराणसीं शुभाम् । यत्राखिलजगद्दोषात्क्षिप्रन्नाशयतीश्वरः
ततः सर्वाणिभूतानितीर्थान्यायतनानि च । जगाम लीलया देवो लोकानांहितकाम्यया

संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः । नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः
तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः । समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः ॥

निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः ।
सस्मयोनन्तयोगात्मा नृत्यतिस्म पुनः पुनः ॥ ६७ ॥

अनु चानुचरो रुद्रं स हरिर्द्धर्मवाहनः । भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम् ॥
प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्द्दिनि । हाहेत्युक्त्वा सनादंवै पातालं प्रापद्दुःखिता
प्रविश्यपरमं स्नानं कपालं ब्रह्मणो हरः । गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शङ्करः

स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम् ।
उक्त्वाँ सजीवमस्त्वित्वति विष्णवेऽसौ घृणानिधिः ॥ १०१ ॥

ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापालं वेषमुत्तमम् । तेषांविनश्यतिक्षिप्रमिहामुत्रचपातकम्
आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानंकृत्वा विधानतः । तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मुच्यतेब्रह्महत्यया
अशाश्वतञ्जगज्ज्ञात्वा व्रजध्वं परमाम्पुरीम् । देहान्तेतत्परं ज्ञानं ददाति परमम्पदम्
इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्यजनार्द्दनम् । सहैवप्रमथेशानैःक्षणादन्तरधीयत

स लब्ध्वा भगवान्कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः ।
स्वं देशमगमत्तूर्ण्णीं गृहीत्वा परमं बुधः ॥ १०६ ॥

एतद्वःकथितंपुण्यं महापातकनाशनम् । कपालमोचनंतीर्थं स्थाणोः प्रियकरंशुभम्
यइमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः । मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्चप्रमुच्यते

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुकपालमोचनमाहात्म्यं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरांतप्तामग्निवर्णाम्पिवेत्तदा । निर्दग्धकायःस तयामुच्यते च द्विजोत्तमः

गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा । पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः

जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वानारायणं हरिम् । ब्रह्महत्याव्रतश्चाथ चरेत्पापप्रशान्तये

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्माम्भवाननुशास्त्विति ॥ ४ ॥

गृहीत्वामुसलं राजासकृद्धन्यात्तुतंस्वयम् । वधेतुशुद्ध्यतेस्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा

स्कन्धेनादायमुसलंलगुडंवापिखादिरम् । शक्तिञ्चादायतीक्ष्णाग्रामायसंदण्डमेववा

राजातेनचगन्तव्यो मुक्तकेशेनधावता । आचक्षाणेनतत्पापमेतत्कर्म्मास्मिशाधिमाम्

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥ ८ ॥

तपसापनोत्तुमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ॥ ६ ॥

स्नात्वाश्वमेधावभृथेपूतःस्यादथवाद्विजः । प्रदद्याद्वाथविप्रेभ्यःस्वात्मतुल्यंहिरण्यकम्

चरेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः । ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये

गुरोर्भार्य्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः ।
अवगूहेत्स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम् ॥ १२ ॥

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
अभिगच्छेद्दक्षिणामाशामानिपातादजिह्मगः ॥ १३ ॥

गुर्व्वङ्गनागमः शुद्ध्यै चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ।

शाखां वा कण्टकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम् ॥ १४ ॥

अधः शयीत नियतोमुच्यते गुरुतल्पगः । कृच्छ्रं वाब्दश्चरेद्विप्रश्चीरवाम्माःसमाहितः

अश्वमेधावभृथके स्नात्वावाशुद्ध्यतेद्विजः । कालेऽष्टमेवा भुञ्जानोब्रह्मचारीसदाव्रती

स्थानाशनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयत्नतः ।

अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तद्व्यपोहति पातकम् ॥ १७ ॥

चान्द्रायणानि वा कुर्य्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः ।

पतितैः सम्प्रयुक्तात्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ १८ ॥

पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः । स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्

ततकृच्छ्रश्चरेद्वाथ सम्वत्सरमतन्द्रितः । षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्थमाचरेत्

एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम् ।

पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्यां वाथ निष्कृतिः ॥ २१ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमम् । कृत्वातैश्चापि संसर्गं ब्राह्मणः कामचारतः

कुर्य्यादनशनं विप्रः पुनस्तीर्थे समाहितः ।

ज्वलन्तम्वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्द्दिनम् ॥ २३ ॥

न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्द्धर्म्मवादिभिः

तस्मात्पुण्येषु तीर्थेषु दहन्वापि स्वदेहकम् ॥ २४ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुप्रायश्चित्तकथनंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः

———

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तकथनम्

व्यास उवाच

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्नुषामपि ।
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥ १ ॥
मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् ।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ ॥ २ ॥

चान्द्रायणञ्च कुर्वीततस्यपापस्य शान्तये । ध्यायन्देवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम्
भ्रातृभार्यां समारुह्यकुर्यात्तत्पापशान्तये । चन्द्रायणानिचत्वारि पञ्चवासुसमाहितः
पितृष्वस्रेयींगत्वातुस्वस्रीयांमातुरेवच । मातुलस्यसुतांवापिगत्वाचान्द्रायणञ्चरेत्

सखिभार्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा ततः कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ६ ॥

उदक्या गमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति । चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः
शुद्धिःसान्तपनेनस्यान्नान्यथानिष्कृतिःस्मृता । मातृगोत्रांसमारुह्यसमानप्रवरांतथा
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मासमाहितः । ब्राह्मणोब्राह्मणींगत्वा कृच्छ्रमेकंसमाचरेत्
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु
रेतःसिक्त्वाजलेचैवकृच्छ्रंसान्तपनञ्चरेत् । वार्द्धिकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेणविशुद्ध्यति
गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । वेश्यायांमैथुनं कृत्वाप्राजापत्यंचरेद्द्विजः

पतिताञ्च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ।
पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ १३ ॥

नटींशैलूषकींचैवरजकींवेणुजीविनीम् । गत्वाचान्द्रायणंकुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम्

ब्रह्मचारी स्त्रियंगच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः । सप्तागारञ्चरेद्भैक्षंवसित्वा गर्दभाजिनम्

उपस्पृशेत्त्रिषवणं स्वपापम्परिकीर्त्तयन् । सम्वत्सरेणचैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते
ब्रह्महत्याव्रतश्चापि षण्मासान्विचरन्यमी । मुच्यते ह्यवकीर्णीतुब्राह्मणानुमतेस्थितः
सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम् । रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

ओङ्कारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा ।

सम्वत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तम्भिक्षाशनः शुचिः ॥ १६ ॥

सावित्रीञ्चजपेन्नित्यंसत्वरःक्रोधवर्ज्जितः । नदीतीरेषुतीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते
हत्वातुक्षत्रियंविप्रःकुर्याद्‌ब्रह्महणोव्रतम् । अकामतोवै षण्मासान्दद्यात्पञ्चशतंगवाम्
अब्दञ्चरेद्ध्यानयुतो वनवासीसमाहितः । प्राजापत्यंसान्तपनं तप्तकृच्छ्रन्तुवास्वयम्
प्रमादात्कामतोवैश्यं कुर्यात्सम्वत्सरत्रयम् । गोसहस्रन्तुपादन्तुप्रदद्याद्‌ब्रह्मणोव्रतम्

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्य्याच्चान्द्रायणमथापि वा ।

सम्वत्सरं व्रतं कुर्य्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः ॥ २४ ॥

गोसहस्रार्धपादञ्च दद्यात्तत्पापशान्तये । अष्टौवर्षाणिवात्रीणिकुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्

हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्चैव यथाक्रमम् ॥ २५ ॥

निहत्यब्राह्मणींविप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतञ्चरेत् । राजन्यांवर्षषट्कंतु वैश्यां सम्वत्सरत्रयम्

वत्सरेण विशुद्ध्येत शूद्रीं हत्वा द्विजोत्तमः ।

वैश्यां हत्वा द्विजातिस्तु किञ्चिद्दद्याद् द्विजातये ॥ २७ ॥

अन्त्यजानाम्वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणंव्रतम् । पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः
मण्डूकं नकुलंकाकंविडालं खरमूषकौ । श्वानं हत्वाद्विजः कुर्यात्षोडशांशंमहाव्रतम्
पयः पिबेत्त्रिरात्रन्तुश्वानं हत्वाह्यतन्द्रितः । मार्ज्जारं वाथनकुलं योजनञ्चाध्वनोव्रजेत्
कृच्छ्रंद्वादशरात्रन्तुकुर्यादश्ववधेद्विजः । अर्च्चांकार्ष्णायसींदद्यात्सर्पंहत्वाद्विजोत्तमः
पलालभारकं षण्ढे सीसकञ्चैकमाषकम् । घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरे
शुकं द्विहायनंवत्सं क्रौञ्चंहत्वा त्रिहायनम् । हत्वा हंसं बलाकाञ्चबकं बर्हिणमेवच

वानरं श्येनभासञ्च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम् ।

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ३४ ॥

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वातुकृष्णलम् । किञ्चिद्देयन्तु विप्रायदद्यादस्थिमतांवधे
अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायांप्राणायामेनशुध्यति । फलदानांतुवृक्षाणां छेदनेजप्यमृक्शतम्
गुल्मवल्लीलतानांतु पुष्पितानाञ्चवीरुधाम् । अण्डजानांचसर्वेषां स्वेदजानांचसर्वशः
फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् । हस्तिनाञ्च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रंविशोधनम्

चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः ।
मतिपूर्व्ववधे चाऽस्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुप्रायश्चित्तनिरूपणंनाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तवर्णनम्

व्यास उवाच

मनुष्याणांतुहरणंकृत्वास्त्रीणांगृहस्य च । वापीकूपजलानाञ्चशुद्ध्ये च्चान्द्रायणेनतु

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ २ ॥
धान्यान्नधनचौर्यंतु कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन चिशुध्यति ॥ ३ ॥

भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम्
तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च शुष्कान्नस्यगुडस्यच । चैलचर्मामिषाणाञ्चत्रिरात्रंस्यादभोजनम्
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्यरजतस्य च । अयस्कान्तोपलानाञ्चद्वादशाहंकणाशनम्
कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्यच । पुष्पगन्धौषधीनाञ्च पिबेच्चैव त्र्यहं पयः
नरमांसाशनंकृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् । काकञ्चैव तथाश्वानंजग्ध्वाहस्तिनमेववा

वराहं कुक्कुटं वाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेववा
गोगोमायुकपीनाञ्च तदेव व्रतमाचरेत् । शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च
उपोष्यद्द्वादशाहञ्चकूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् । नकुलोलूकमार्जाराञ्जग्ध्वासान्तपनञ्चरेत्
श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैवतु

वकञ्चैव वलाकाञ्च हंसं कारण्डवांस्तथा ।
चक्रवाकपलं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम् ॥ १३ ॥

कपोतटिट्टिभांश्चैव शुकं सारसमेवच । उलूकं जालपादञ्च जग्ध्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् ॥
शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च । जग्ध्वाचैव कटाहारमेतदेव व्रतञ्चरेत्
कोकिलञ्चैवमत्स्यादान्मण्डूकं भुजगं तथा । गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेनशुद्ध्यति
जलेचरांश्चजलजान्प्रणुदानथ विष्किरान् । रक्तपादांस्तथाजग्ध्वासप्ताहञ्चैतदाचरेत्
शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थञ्च तथाकृतम् । भुक्त्वा मासञ्चरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये
वृन्ताकं भूस्तृणे शिग्रुं कुटकञ्चटकं यथा । प्राजापत्यञ्चरेज्जग्ध्वा खड्गं कुम्भीकमेवच
पलाण्डुं लशुनञ्चैवभुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् । नालिकां तण्डुलीयञ्च प्राजापत्येनशुध्यति

अश्मान्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे ॥ २१ ॥

अलाबुं किंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् । एतेषाञ्चविकाराणिपीत्वा मोहेनवापुनः
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति । उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥

भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा ॥ २३ ॥

चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः । यस्याग्नौहूयतेनित्यमन्नस्याग्रंनदीयते

चाद्रायणञ्चरेत्सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः ।
अभोज्यान्नन्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ॥ २५ ॥
अन्तावसायिनाञ्चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।
चण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ २६ ॥

बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च । असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्

अभोज्यान्नन्तुभुक्त्वाच प्राजापत्येन शुध्यति। विण्मूत्रप्राशनंकृत्वारेतसश्चैतदाचरेत्
अनादिष्टेतुचैकाहं सर्वत्रतुयथार्थतः। विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः
प्राश्यमूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत्। अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रंसुरासंस्पृष्टमेवच
पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः। क्रव्यादांपक्षिणाञ्चैवप्राश्यमूत्रपुरीषकम्
महासान्तपनं मोहात्तथा कुर्याद्द्विजोत्तमः। भासमण्डूककुररेविष्किरेकृच्छ्रमाचरेत्

प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवाऽतिकृच्छ्रकम् ॥ ३३ ॥
शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्।
सुराया भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ३४ ॥

समुच्छिष्टंद्विजोभुक्त्वात्रिरात्रेणविशुध्यति। गोमूत्रयावकाहारःपीतशेषञ्चवागवाम्
अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद्यदि। तदा सान्तपनं कृच्छ्रं व्रतम्पापविशोधनम्
चाण्डालकूपेभाण्डेषुयदिज्ञानातिपवेज्जलम्। चरेत्सान्तपनंकृच्छ्रंब्राह्मणःपापशोधनम्
चाण्डालेनतु संस्पृष्टस्पीत्वावारिद्विजोत्तमः। त्रिरात्रव्रतमुख्येनपञ्चगव्येन शुध्यति
महापातकिसंस्पर्शेभुक्त्वास्नात्वाद्विजोयदि। बुद्धिपूर्वं यदामोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्
स्पृष्ट्वा महापातकिनंचण्डालञ्चरजस्वलाम्। प्रमादाद्भोजनंकृत्वात्रिरात्रेणविशुध्यति
स्नानार्हो यदिभुञ्जीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति। बुद्धिपूर्वंतु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः

भुक्त्वा पर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषिताः।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा ॥ ४२ ॥

सम्वत्सरान्ते कृच्छ्रन्तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः। अज्ञानभुक्तशुद्ध्यर्थंज्ञातस्यतुविशेषतः
व्रात्यानां याजनं कृत्वापरेषामन्त्यकर्मच। अभिचारमहीनञ्चत्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुध्यति
ब्राह्मणादिहतानांतु कृत्वादाहादिकं द्विजः। गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येनशुध्यति
तैलाभ्यक्तोऽथवान्तोवा कुर्यान्मूत्रपुरीषके। अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रुकर्मणिमैथुने
एकाहेन विहायाग्निपरिहाप्य द्विजोत्तमः। त्रिरात्रेणविशुद्ध्येतत्रिरात्रात्षडहःपरम्

दशाहं द्वादशाहं वा परिहाप्य प्रमादतः। कृच्छ्रश्चान्द्रायणंकुर्यात्तत्पापस्योपशान्तये

पतितादद्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति । चरेच्चविधिनाकृच्छ्रमित्याह भगवान्मनुः

अनाशकान्निवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा ।

चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ॥ ५० ॥

पुनश्चजातकर्मादिसंस्कारैःसंस्कृताद्विजाः । शुद्धयेयुस्तद्व्रतं सम्यक्चरेयुर्धर्मदर्शिनः

अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्यावके भवेत् । अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि

अकृत्वा समिदाधानंशुचिःस्नात्वासमाहितः । गायत्र्यष्टसहस्रस्यजप्यंकुर्याद्विशुद्धये

उपवासी चरेत्सन्ध्यां गृहस्थो हि प्रमादतः ।

स्नात्वा विशुद्धयते सद्यः परिश्रान्तश्च संयतः ॥ ५४ ॥

वेदोदितानिनित्यानिकर्माणिचविलोप्यतु । स्नातकोव्रतलोपंतुकृत्वाचोपवसेद्दिनम्

सम्वत्सरञ्चरेत्कृच्छ्रमन्योत्सादी द्विजोत्तमः ।

चान्द्रायणञ्चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुद्धयति ॥ ५६ ॥

नास्तिक्यं यदिकुर्वीतप्राजापत्यञ्चरेद्द्विजः । देवद्रोहंगुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयति

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानञ्च कामतः । त्रिरात्रेण विशुद्धयेच्चनग्नोवा प्रविशेज्जलम्

षष्ठान्नकालतामासं संहिताजपएव च । होमाश्चशाकलानित्यंअपाङ्क्तानांविशोधनम्

नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणोवस्त्रमेवहि । अहोरात्रोषितःस्नातःपञ्चगव्येनशुद्धयति

वेदधर्मपुराणानांचण्डालस्यतुभाषणे । चान्द्रायणेनशुद्धिःस्यान्नह्यन्यातस्यनिष्कृतिः

उद्बन्धनादिनिहतंसंस्पृश्यब्राह्मणंक्वचित् । चान्द्रायणेनशुद्धिःस्यात्प्राजापत्येनवापुनः

उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन्स्पृशेद् द्विजः ।

प्रमादाद्वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ ६३ ॥

द्रुपदानां शतं वापिब्रह्मचारीसमाहितः । त्रिरात्रोपोषितःसम्यक्पञ्चगव्येनशुद्धयति

चाण्डालपतितादींस्तु कामाद्यः संस्पृशेद् द्विजः ।

उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये ॥ ६५ ॥

चाण्डालसूतकिशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम् ।

स्पृष्ट्वा स्नायाद्विशुद्धयर्थं तत्स्पृष्टपतितांस्तथा ॥ ६६ ॥

चाण्डालसूतकिशवैःसंस्पृष्टंसंस्पृशेद्यदि । ततःस्नात्वाथआचम्यजपंकुर्यात्समाहितः
तत्स्पृष्टस्पर्शिनंस्पृष्ट्वाबुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः। स्नात्वाचामेद्विशुद्ध्यर्थंप्राहदेवःपितामहः

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्संस्पृशेद्यदि ।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् व्रतम् ॥ ६९ ॥
चाण्डालन्तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद्विशुद्ध्यति ।
स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्य अहोरात्रेण शुद्ध्यति॥ ७० ॥

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजःकुर्यात्प्राणायामत्रयंशुचिः । पलाण्डुं लशुनञ्चैवघृतंप्राप्यततःशुचिः
ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायम्पयःपिवेत् । नाभेरूर्द्धन्तुदष्टस्य तदेव द्विगुणंभवेत्

स्यादेतत्त्रिगुणं वाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः ॥ ७३ ॥

अनिर्वर्त्यमहायज्ञान्यो भुङ्क्तेतुद्विजोत्तमः । अनातुरःसतिधनेकृच्छ्रार्द्धेनसशुद्ध्यति

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।
ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपिकृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ॥ ७५ ॥

विनाद्भिरप्सुनाप्यार्त्तःशरीरंसन्निवेश्यच । सचैलोजलमाप्लुत्यगामालभ्यविशुध्यति
बुद्धिपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहं चोपवसेद्द्विजः
अनुगम्येच्छया शूद्रंप्रेतीभूतंद्विजोत्तमः । गायत्र्यष्टसहस्रञ्चजपंकुर्यान्नदीषु च ॥ ७८॥
कृत्वातुशपथंविप्रोविप्रस्यावधिसंयुतम् । स चैवयावकान्नेनकुर्याच्चान्द्रायणंव्रतम्

पङ्क्तौ विषमदानं तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम् ॥ ८० ॥
ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाऽग्निञ्चन्द्रमेव वा ।
मानुषञ्चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ८१ ॥

कृत्वा तु मिथ्याध्ययनञ्चरेद्भैक्षन्तु वत्सरम् । कृतघ्नो ब्राह्मणगृहेपञ्चसंवत्सरव्रती
हुङ्कारंब्राह्मणस्योक्त्वात्वङ्कारञ्चगरीयसः । स्नात्वानाश्नन्नहःशेषंप्रणिपत्यप्रसादयेत्
ताडयित्वातृणेनापिकण्ठंबद्ध्वाथवाससा। विवादेवापिनिर्जित्यप्रणिपत्यप्रसादयेत्

अवगूर्य (ह्य) चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ ८५ ॥
गुरोराक्रोशमनृतं कुर्यात्कृत्वा विशोधनम् । एकरात्रं निराहारः तत्पापस्यापनुत्तये
देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते । उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दातव्यञ्च हिरण्यकम्
देवोद्यानेषु यः कुर्यान्मूत्रोच्चारं सकृद्द्विजः ।
छिन्द्याच्छिश्नं विशुद्ध्यर्थञ्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ ८८ ॥
देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद्द्विजोत्तमः ।
शिश्नस्योत्कर्त्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ॥ ८९ ॥
देवतानामृषीणाञ्च देवानाञ्चैवकुत्सनम् । कृत्वासम्यक्प्रकुर्वीतप्राजापत्यंद्विजोत्तमः
तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्च्चयेत् ।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत् ॥ ९१ ॥
यः सर्वभूताधिपतिंविश्वेशानंविनिन्दति । न तस्यनिष्कृतिःशक्त्याकर्त्तुं वर्षशतैरपि
चान्द्रायणं चरेत्पूर्वंकृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम् । प्रपन्नःशरणंदेवं तस्मात्पापाद्विमुच्यते
सर्वस्वदानंविधिवत्सर्वपापविशोधनम् । चान्द्रायणंचविधिनाकृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम्
पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम् ।
अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद्भवम् ॥ ९५ ॥
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९६ ॥
कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथाकृष्णचतुर्दशीम् । सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैःप्रमुच्यते
त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम् । दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः
उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च । प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन्
स्नात्वा दद्याच्च पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः ।
ब्रह्मचर्यमधः शय्या उपवासो द्विजार्च्चनम् ॥ १०१ ॥
व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः ।

अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम् ॥ १०२ ॥
ब्राह्मणांस्त्रीन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः । षष्ठ्यामुपोषितोदेवंशुक्लपक्षेसमाहितः
सप्तम्यामर्चयेद्भानुं मुच्यते सर्वपातकैः । भरण्याञ्चचतुर्थ्याञ्च शनैश्चरदिने यमम्
पूजयेत्सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नरः । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्यजनार्द्दनम्
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते । तपोजपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ॥
ग्रहणादिषु कालेषुमहापातकशोधनम् । यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः
नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः । ब्रह्मघ्नंवाकृतघ्नं वा महापातकदूषितम्
भर्त्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टासह पावकम् । एतदेव परंस्त्रीणाम्प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता । न तस्या विद्यतेपापमिहलोके परत्र च
(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा ।
पातिव्रत्यसमायुक्ता भर्तृशुश्रूषणोत्सुका । न यास्तुपातकंतस्यामिहलोके परत्रच)
पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा । नास्याःपराभवंकर्त्तुं शक्नोतीहजनःक्वचित्
यथा रामस्य सुभगासीतात्रैलोक्यविश्रुता । पत्नीदाशरथेर्देवीविजिग्येराक्षसेश्वरम्
रामस्य भार्या सुभगां रावणोराक्षसेश्वरः । सीतांविशालनयनांचकमे कालनोदितः
गृहीत्वा माययावेषं चरन्तीं विजनेवने । समाहर्त्तुं मतिं चक्रेतापसःकिलकामिनीम्
विज्ञायसा चतद्भावंस्मृत्वादाशरथिम्पतिम् । जगामशरणंवह्निमावसथ्यंशुचिस्मिता
उपतस्थेमहायोगंसर्वलोकविदाहकम् । कृताञ्जलीरामपत्नीसाक्षात्पतिमिवाच्युतम्
नमस्यामि महायोगं कृशानुंगह्वरम्परम् । दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम्
प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम् । योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमम्पदम्
आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम् । तम्प्रपद्ये जगन्मूर्त्तिं प्रथमं सर्वतेजसाम्
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यम्परमेष्ठिनम् ॥ ११६ ॥
प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम् । कालाग्निं योगिनामीशंभोगमोक्षफलप्रदम्
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूर्भुवःस्वः स्वरूपिणम् ।

हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम् ॥ १२१ ॥

वैश्वानरम्प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम् । हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम् ॥
प्रपद्येतत्परंतत्वंवरेण्यंसवितुः शिवम् । स्वर्गमग्निपरं ज्योतिःस्वाक्षयंहव्यवाहनम्
इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी ।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा ॥ १२४ ॥
अथावसथ्याद्भगवान्हव्यवाहो महेश्वरः । आविरासीत्सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव
सृष्ट्वा मायामयींसीतां स रावणवधेच्छया । सीतामादायरामेष्टां पावकोऽन्तरधीयत
तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः ।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम् ॥ १२७ ॥
कृत्वातु रावणवधं रामोलक्ष्मणसंयुतः । समादायाभवत्सीतां शङ्काकुलितमानसः
सा प्रत्ययायभूतानां सीतामायामयीपुनः । विवेशपावकंक्षिप्रंददाहज्वलनोऽपिताम्
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुष्णदीधितिः ।
रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रियः ॥ १३० ॥
प्रगृह्यभर्त्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा । चकारप्रणतिम्भूमौरामायजनकात्मजा
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः । प्रणम्य वह्निं शिरसा तोषयामास राघवः
उवाच वह्निं भगवान् किमेषा वरवर्णिनी । दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता
तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः । यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ
इयं सा परमा साध्वी पार्वतीव प्रिया तव ।
आराध्य लब्ध्वा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा ॥ १३५ ॥
भर्त्तुः शुश्रूषणोपेतासुशीलेयं पतिव्रता । भवानीवेश्वरे गुप्ता माया रावणकामिता
या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हृता ।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया ॥ १३७ ॥
तदर्थम्भवता दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः । मायोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः ॥
गृहाण चैतां विमलांजानकींवचनान्मम । पश्यनारायणंदेवं स्वात्मानम्प्रभवाव्ययम्

इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः ।

मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत ॥ १४० ॥

एतत्पतिव्रतानांवैमाहात्म्यंकथितंमया । स्त्रीणांसर्वाघशमनम्प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम्

अशेषपापसंयुक्तः पुरुषोऽपि सुसंयुतः । स्वदेहंपुण्यतीर्थेषुत्यक्त्वामुच्येतकिल्बिषात्

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वापुण्येषु वा द्विजः । मुच्यतेपातकैःसर्वैःसञ्चितैरपिपूरुषः

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकंकथितोमया । महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः

योगेन विधिनायुक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत् । स पश्यति महादेवं नान्यःकल्पशतैरपि

स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानंतत्पारमेश्वरम् । न तस्मादधिकोलोके स योगीपरमोमतः

यःसंस्थापयितुंशक्तोनकुर्यान्मोहितोजनः । सयोगयुक्तोऽपिमुनिर्नात्यर्थंभगवत्प्रियः

तस्मात्सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः । धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै

यः पठेद्भवतांनित्यं सम्वादं मम चैव हि । सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमांगतिम्

श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ।

पठेत नित्यं सुमनाः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥ १५० ॥

योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन् ।

स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम् ॥ १५१ ॥

एतावदुक्त्वाभगवान्व्यासःसत्यवतीसुतः । समाश्वास्यमुनीन्सूतंजगामचयथागतम्

इति श्रीकूर्म्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुप्रायश्चित्तवर्णनंनाम

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

समाप्ता व्यासगीता ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

गयादिनानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विश्रुतानि महान्त्यपि ।
तानि त्वं कथयाऽस्माकं रोमहर्षण! साम्प्रतम् ॥ १ ॥

रोमहर्षण उवाच

श्रृणुध्वंकथयिष्येऽहंतीर्थानिविविधानिच । कथितानिपुराणेषुमुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः
यत्रस्नानञ्जपोहोमः श्राद्धदानादिकंकृतम् । एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमंकुलम्
पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रयागम्प्रथितं तीर्थंयस्यमाहात्म्यमीरितम्
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणां देववन्दितम् । ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम्

तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः ।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥ ६ ॥

परं गुह्यंगयातीर्थं पितृणाञ्चातिदुर्ल्लभम् । कृत्वापिण्डप्रदानन्तु न भूयोजायतेनरः
सकृद्गयाभिगमनंकृत्वापिण्डंददातियः । तारिताःपितरस्तेन यास्यन्तिपरमांगतिम्
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना । शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितॄन्प्रसादयेत्
गयाभिगमनंकर्तुं यः शक्तोनाधिगच्छति । शोचन्तिपितरस्तं वैवृथा तस्यपरिश्रमः

गायन्ति पितरो गाथाः कीर्त्तयन्ति महर्षयः ।
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ ११ ॥
यदि स्यात्पातकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः ।
गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ १२ ॥

एष्टव्याबहवःपुत्राःशीलवन्तोगुणान्विताः । तेषान्तुसमवेतानांयद्येकोऽपिगयांव्रजेत्

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनब्राह्मणस्तुविशेषतः । प्रदद्याद्विधिवत्पिण्डान्गयांगत्वासमाहितः

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः ।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याऽऽप्नुयुः परम् ॥ १५ ॥

अन्यच्चतीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम् । प्रभासमिति विख्यातंयत्रास्तेभगवान्भवः

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥

तीर्थन्त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम् । पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलंलभेत्

सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्द्दिनम् । ब्राह्मणान्पूजयित्वाच्च गाणपत्यंलभेतसः

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः । सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रमालोक्यकारणम् ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयंनामशोभनम् । तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयंनामविश्रुतम्

षण्मासनियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमम्पदम् ॥ २२ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम् । एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ॥२३

दत्त्वाऽत्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम् ।
सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् । ग्रहणेतदुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥२५

अन्याच्चविरजानामनदीत्रैलोक्यविश्रुता । तस्यां स्नात्वा नरोविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते

तीर्थं नारायणस्यान्यंनाम्ना तु पुरुषोत्तमम् । तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः

पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ २८ ॥

तीर्थानाम्परमं तीर्थंगोकर्णंनाम विश्रुतम् । सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः

दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णम्परमुत्तमम् । ईप्सिताँल्लभते कामान्रुद्रस्यदयितोभवेत्

उत्तरश्चापिगोकर्णं लिङ्गंदेवस्य शूलिनः । महादेवञ्चार्चयित्वाशिवसायुज्यमाप्नुयात्

तत्र देवो महादेवःस्थाणुरित्यभिविश्रुतः । तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यतेनरः

अन्यत्कुब्जाश्रमम्पुण्यं स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।

सम्पूज्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते ॥ ३३ ॥

यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा । कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्यतु विसर्जितः

समन्ताद्योजनंक्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम् । पुण्यमायतनंविष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः

अन्यत्कोकामुखे विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः ।

मुक्तोऽत्रपातकैर्मर्त्यो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

शालिग्रामं महातीर्थं विष्णोःप्रीतिविवर्द्धनम् ।

प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशम्प्रपश्यति ॥ ३७ ॥

अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम् ।

आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणःस्वयम् ॥ ३८ ॥

तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम् ।

तत्राऽस्ति पुण्यदं तीर्थं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ३९ ॥

पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम् । मनसासंस्मरेद्यस्तु पुष्करम्वैद्विजोत्तमः

पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते । तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः

उपासतेसिद्धसङ्घा ब्रह्माणंपद्मसम्भवम् । तत्र स्नात्वा व्रजेच्छुद्धो ब्रह्माणंपरमेष्ठिनम्

पूजयित्वा द्विजवरं ब्रह्माणं सम्प्रपश्यति । तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम्

तद्रूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम् ॥ ४४ ॥

पूजयित्वा यत्र रुद्रमश्वमेधफलं भवेत् । यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नं परमेश्वरम् ॥४५॥

आराधयामास शिवं तपसागोवृषध्वजम् । प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा

ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम् । तं प्राह भगवान्रुद्रःकिमर्थं नर्त्तितन्त्वया४७

दृष्ट्वापिदेवमिशानंनृत्यतिस्म पुनः पुनः । सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशःसगर्वंगर्वशान्तये

स्वकंदेहंविदार्यास्मैभस्मराशिमदर्शयत् । पश्येमंमच्छरीरोत्थं भस्मराशिंद्विजोत्तम

माहात्म्यमेतत्तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते ।

यत्सगर्वं हि भवता नर्त्तितं मुनिपुङ्गव !॥ ५० ॥

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम् ।
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिलविश्वदृक् ॥ ५१ ॥

आख्याय परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः । सहस्रशीर्षाभूत्वा स सहस्राक्षःसहस्रपात्
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामालीभयङ्करः । सोऽन्वपश्यदथेशस्यपार्श्वेतस्य त्रिशूलिनः
विशाललोचनामेकांदेवीञ्चारुविलासिनीम् । सूर्यायुतसमाकारांप्रसन्नवदनांशिवाम्
सस्मितंप्रेक्ष्यविश्वेशं तिष्ठन्तममितद्युतिम् । दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयो वेपमानोमुनीश्वरः
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायञ्जपन्वशी । प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बकोभक्तवत्सलः
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत् । आलिङ्ग्य भक्तम्प्रणतं देवदेवःस्वयंशिवः
न भेतव्यं त्वया वत्स! प्राहकिन्तेददाम्यहम् । प्रणम्यमूर्ध्नागिरिशंहरं त्रिपुरसूदनम्
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः । नमोऽस्तुतेमहादेवमहेश्वरनमोऽस्तु ते
किमेतद्भगवद्रूपंसुघोरंविश्वतोमुखम् । का च सा भगवत्पार्श्वेराजमानाव्यवस्थिता
अन्तर्हिते च सहसा सर्वमिच्छामिवेदितुम् । इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदामङ्कणकंहरः
महेशः स्वात्मनो योगं देवीञ्च त्रिपुरानलः । अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः
दाहकः सर्वपाशानां कालः कालकरोहरः । मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम्

सोऽन्तर्य्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः ।
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥ ६४ ॥
प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनिः सनातनी ।
स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत् ॥ ६५ ॥

नारायणःपरोऽव्यक्तोमायारूपइति श्रुतिः । एवमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्
योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविंशकम् । तथा वै सङ्गतोदेवः कूटस्थःसर्वगोऽमलः
सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्त्तेः प्रकृतेरजः । स देवो भगवान्ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः ॥
तवैतत्कथितंसम्यक्स्रष्टृत्वंपरमात्मनः । एकोऽहंभगवान्कालोह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः
समास्थायपरमभावं प्रोक्तोरुद्रोमनीषिभिः । ममैवसा पराशक्तिर्देवीविद्येति विश्रुता

दृष्टो हि भवतानूनं विद्यादेहः स्वयं ततः । एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरः ॥

विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान्रुद्रः कालइतिश्रुतिः । त्रयमेतदनाद्यन्तंब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः । आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमम्पदम्
आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ।
एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु ॥ ७४ ॥
सम्पूज्योवन्दनीयोऽहं ततस्तंपश्यसीश्वरम् । एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनंहरः
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः । एतत्पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् ॥
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ७६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे गयादिनानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्रकोटि-कालञ्जरतीर्थवर्णनेकालवधवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यत्पवित्रंविपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । रुद्रकोटिरितिख्यातं रुद्रस्यपरमेष्ठिनः ।
पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्पराः । कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमन्परम् ॥
अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम् ।
अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां विवादोऽभून्महान् किल ॥ २ ॥
तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः ।
कोटिरूपोऽभवद्रुद्रो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत् ॥ ४ ॥
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम् । अपश्यन् पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन्
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम् । दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्
अथान्तरिक्षे विमलमपश्यन्ति स्म महत्तरम् । ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परम्पदम्
यतःस देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम् ।

दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयुः ॥ ८ ॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं शुभम् । तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत्
अथान्या पद्मनगरी देशः पुण्यतमः शुभः । तत्रगत्वापितॄन्पूज्यकुलानां तारयेच्छतम्
कालञ्जरं महातीर्थं रुद्रलोके महेश्वरः । कालञ्जरं भजन्देवं तत्र भक्तप्रियो हरः ॥११
श्वेतो नाम शिवेभक्तो राजर्षिप्रवरःपुरा । तदाशीस्तन्नमस्कारैःपूजयामास शूलिनम्
संस्थाप्य विधिनारुद्रं भक्तियोगपुरःसरः । जजाप रुद्रमनिशं तत्र सन्न्यस्तमानसः
सितंकार्ष्णाजिनं दीप्तं शूलमादायभीषणम् । नेतुमभ्यागतोदेशंस राजा यत्रतिष्ठति
वीक्ष्य राजा विष्टः शूलहस्तं समागतम् । कालंकालकरंघोरं भीषणं चण्डदीपितम्
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमुत्तमम् ।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ॥ १६ ॥
जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम् । एह्येहीति पुरः स्थित्वाकृतान्तःप्रहसन्निव
तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः । एकमीशार्च्चनरतं विहायान्यान्निषूदय ॥
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम् । रुद्रार्च्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति
एवमुक्त्वास राजानं कालो लोकप्रकालनः । बबन्ध पाशै राजापि जजापशतरुद्रियम्
अथाऽन्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशिं भूतभर्त्तुः पुराणम् ।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श ॥ २१ ॥
तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम् ।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो मेने चात्मानमप्यागच्छतीति ॥ २२ ॥
आगच्छन्तं नाऽतिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम् ।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं राजर्षिस्तन्नेतुमभ्याजगाम ॥ २३ ॥
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्म्मा देवो रुद्रो भूतभर्त्ता पुराणः ।
एवं भक्तं सत्वरं मां स्मरन्तं देहीतीमं कालरूपं ममेति ॥ २४ ॥
श्रुत्वा वाक्यं गोपते रुद्रभावः कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम् ।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशं रुद्रो रौद्रं चाभिदुद्राव वेगात् ॥ २५ ॥

प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः ।
सावज्ञं वै वामपादेन कालं त्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान ॥ २६ ॥
ममार सोऽभिभीषणो महेशपादघातितः । विराजते सहोमया महेश्वरः पिनाकधृक्
निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् । ननाम वै तमव्ययं स राजपुङ्गवस्तदा ॥
नमोभवाय हेतवे हराय विश्वशम्भवे । नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने ॥
नमो नमो नमो नमोमहाविभूतये नमः । विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते ॥
नमोऽस्तु ते गणेश्वर! प्रपन्नदुःखशासन !। अनादिनित्यभूतये वराहशृङ्गधारिणे ॥
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः । नमो महानगाय ते शिवाय शङ्कराय ते
अथानुगृह्य शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम् । स्वगाणपत्यमव्ययं स्वरूपतामथो ददौ
सहोमया सपार्षदः सराजपुङ्गवो हरः । मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात् ॥
काले महेशनिहते लोकनाथः पितामहः । अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवित्विति

नाऽस्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज !।
कृतान्तस्यैव भविता तत्कार्ये विनियोजितः ॥ ३६ ॥
स देवदेववचनाद्देवदेवेश्वरोहरः ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत् ॥ ३७ ॥

इत्येतत्परमं तीर्थं कालञ्जरमिति श्रुतम् । गत्वाभ्यर्च्य महादेवंगाणपत्यं सविन्दति

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे रुद्रकोटि-कालञ्जरतीर्थवर्णनेकालवधवर्णनं
नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

———

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महालयादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

इदमन्यत्परंस्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत् । महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम्
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा । शिवातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम्
तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः । उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः

स्नात्वा तत्र पदं शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम् ।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अन्यच्चदेवदेवस्यस्थानं शम्भोर्महात्मनः । केदारमितिविख्यातं सिद्धानामालयंशुभम्
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम् । पीत्वा चैवोदकंशुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात्
श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभतेफलम् । द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः
तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम् । तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते
अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम् । अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वाद्विजोत्तमः
तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम् । यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः ॥
तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः । मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः

महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम् ।
तत्राऽभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥ १२

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नाश्रीपर्वतं शुभम् । अत्रप्राणान्परित्यज्य रुद्रस्यदयितो भवेत्
तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः । स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम्
गोदावरीनदीपुण्या सर्वपापप्रणाशिनी । तत्रस्नात्वापितॄन्देवांस्तर्पयित्वायथाविधि
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत् । पवित्रसलिला पुण्याकावेरी विपुला नदी
तस्यां स्नात्वोदकंकृत्वामुच्यते सर्वपातकैः । त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेनवा

द्विजातीनां तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम् ।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ ॥ १८ ॥
अलोलुपोब्रह्मचारीतीर्थानांफलमाप्नुयात् । स्वामितीर्थंमहातीर्थंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
तत्रसन्निहितोनित्यंस्कन्दोऽमरनमस्कृतः । स्नात्वाकुमारधारायांकृत्वादेवादितर्पणम्
आराध्य षण्मुखं देवंस्कन्देनसह मोदते । नदीत्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीतिनामतः
तत्रस्नात्वा पितृन्भक्त्यातर्पयित्वा यथाविधि । पापकर्तृनपि पितृंस्तारयेन्नात्रसंशयः
चन्द्रतीर्थंमितिख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम् । तीर्थे तत्र भवेद्दत्तंमृतानांसद्गतिप्रदम्
विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम् । भक्तायेतेनपश्यन्ति यमस्यवदनंद्विजाः
देविकायां वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा योगसिद्धिञ्च विन्दति ॥ २५ ॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्वपापविनाशकम् । दशानामश्वमेधानां तत्राप्नोति फलं नरः
पुण्डरीकं तथा तीर्थंब्राह्मणैरुपशोभितम् । तत्राभिगम्ययुक्तात्मापुण्डरीकफलंलभेत्
तीर्थेभ्यः परमं तीर्थंब्रह्मतीर्थमितिस्मृतम् । ब्रह्माणमर्चयित्वात्र ब्रह्मलोके महीयते
सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम् ।
व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोत्तमः ॥ २६ ॥
यमुनाप्रभवश्चैव सर्वपापविनाशनः । पितृणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत् ।
कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम् ॥ ३१ ॥
प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत् । उमातुङ्गमितिख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत् । भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धंदानं तथाकृतम्
कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति मतिर्मम । काश्यपस्य महातीर्थंकालसर्पिरितिश्रुतम्
तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया ।
दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमं तपो जपः ॥ ३५ ॥

अक्षयञ्चाव्ययञ्चैव कृतं भवति सर्वदा । तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्नावैकुरुजाङ्गलम्

दत्त्वा तु दानं विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते । वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च
धर्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे । भरतस्याश्रमे पुण्ये पुण्ये गृध्रवने शुभे ॥ ३८ ॥
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम् । मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता
हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निदर्शनम् । अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः

पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ।
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ४१ ॥

उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम् । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति सशरीरा द्विजातयः
दत्तं वापि सदा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् । ऋणैस्त्रिभिर्नरः स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मषः

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ४४ ॥
तस्मान्निर्वर्त्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् ।
स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायश्च विन्दति ॥ ४५ ॥
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः ।
योजनानां सहस्राणि साशीतिस्त्वायतो गिरिः ॥ ४६ ॥

सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः । तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामतः

तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ।
श्राद्धं भवति चाक्षयं तत्र दत्तं महोदयम् ॥ ४८ ॥

तारयेच्च पितॄन्सम्यग्दश पूर्वान्दशापरान् । सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गा पुण्या समन्ततः
नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः । बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात्
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः । अक्षयं तत्र दानं स्यात्छ्राद्धदानादिकञ्च यत्
महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद्विशेषतः । तारयेच्च पितॄन्सर्वान्दत्त्वा श्राद्धं समाहितः
देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । महता देवदेवेन तत्र दत्तं महेश्वरम् ॥ ५३ ॥

मोहयित्वा मुनीन्सर्वान्समस्तैः सम्प्रपूजितः ।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान् ॥ ५४ ॥

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा। मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ
यत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणाः। तेषां ददामि परमंगाणपत्यं हि शाश्वतम्

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म चाप्नुयात्॥ ५७॥

संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगताजनाः। तेषाञ्च सर्वपापानिनाशयामिद्विजोत्तमाः
श्राद्धं दानं तपोहोमःपिण्डनिर्वपणं तथा। ध्यानं जपश्चनियमःसर्वमत्राक्षयं कृतम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यंहि द्विजातिभिः। देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम्
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः। तत्र सन्निहितागङ्गा तीर्थान्यायतनानिच
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे महालयादितीर्थवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दारुवनाख्यानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं दारुवनम्प्राप्तो भगवान्गोवृषध्वजः। मोहयामास विप्रेन्द्रान्सूत! तद्वक्तुमर्हसि॥

सूत उवाच

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते। सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरुः सहस्रशः॥ २॥
प्रवृत्तं विविधंकर्म प्रकुर्व्वाणा यथाविधि। यजन्तिविविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः
तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलभृत्। व्याख्यापयन्सदा दोषं ययौदारुवनंहरः
कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवोमहेश्वरः। ययौ निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थञ्चशङ्करः
आस्थाय विपुलञ्चैवजनंविंशतिवत्सरम्। लीलालसो महाबाहुःपीनाङ्गश्चारुलोचनः
चामीकरवपुः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः। मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः
जातरूपमयीं मालांसर्वरत्नैरलंकृताम्। दधानो भगवानीशः समागच्छतिसस्मितः

योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययोहरिः ।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम् (शूलिनम्)॥ ६ ॥
सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् । शुचिस्मितं सुप्रसन्नंरणन्नूपुरकद्वयम् ॥ १०॥
सुपीतवस्त्रं दिव्यं श्यामलञ्चारुलोचनम् । उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम् ॥
एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः । चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत् ॥
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् । मायया मोहिता नार्योदेवदेवंसमन्वयुः
विस्रस्ताभरणाः सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः ।
सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥ १४ ॥
ऋषीणां पुत्रकायेस्युर्युवानोजितमानसाः । अन्वागमन्हृषीकेशंसर्वेकामप्रपीडिताः
गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम् ।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिष्टं तथालिङ्गितमाचरन्ति ॥ १६ ॥
ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः ।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं शुभाङ्ग (भ्रूभङ्ग) मन्ये विचरन्ति तेन ॥ १७ ॥
आशामथैकामपि वासुदेवो मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः ।
करोति भोगान्मनसि प्रवृत्तिं मायानुभूयन्त इतीव सम्यक् ॥ १८ ॥
विभाति विश्वामरविश्वनाथः समाधवस्त्रीगणसन्निविष्टः ।
अशेषशक्त्या समयं निविष्टो यथैकशक्त्या सह देवदेवः ॥ १६॥
करोति नित्यं परमं प्रधानं तदा विरूढः पुनरेव भूयः ।
ययौ समारुह्य हरिः स्वभावं तमीदृशं नाम तमादिदेवम् ॥ २० ॥
दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम् ।
मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं सन्दधिरे भृशम्॥ २१ ॥
अतीवपरुषं वाक्यं प्रोचुर्देवंकपर्द्दिनम् । शेपुश्चविविधैर्वाक्यैर्माययातस्यमोहिताः
तपांसि तेषां सर्वेषांप्रत्याहन्यन्तशङ्करे । यथादित्यप्रतीकाशेतारकानभसिस्थिताः
ते भग्नस्य तापसा विप्राः समेत्य वृषभध्वजम् ।

को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः ॥ २४ ॥

सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः । इदानीं भार्यया देशं भवद्भिरिह सुव्रताः

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुङ्गवाः ।

ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर ॥ २६ ॥

अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।

सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम् ॥ २७ ॥

कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकैः ।

त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः ॥ २८ ॥

ऋषय(मुनय) ऊचुः

व्यभिचाररता भार्याः सन्त्याज्याः पतिनेरिताः ।

अस्माभिर्भक्ताः सुभगा नेदृशास्त्यागमर्हति ॥ २९ ॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रामनसाप्यन्यमिच्छति । नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामिकदाचन

ऋषय ऊचुः

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभिः पुरुषाधम । उक्तंह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेवहि

एवमुक्ते महादेवः सत्यमेव मयेरितम् । भवतां प्रतिभा ह्येषा त्यक्त्वासौ विचचारह

सोऽगच्छद्धरिणासार्द्धंमुनीन्द्रस्यमहात्मनः । वसिष्ठस्याश्रमंपुण्यंभिक्षार्थीपरमेश्वरः

दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती । वसिष्ठस्य प्रियाभक्तयाप्रत्युद्गम्यननामतम्

प्रक्षाल्यपादौविमलंदत्वाचासनमुत्तमम् । सम्प्रेक्ष्यशिथिलं गात्रमभिघातहतंद्विजैः

सन्धयामास भैषज्यैर्विषण्णवदना सती ॥ ३५ ॥

चकार महतींपूजांप्रार्थयामासभार्यया । को भवान्कुतआयातःकिमाचारो भवानिति

उच्यतामाह भगवान्सिद्धानाम्प्रवरो ह्यहम् ॥ ३६ ॥

यदेतन्मण्डलं शुभ्रं भाति ब्रह्ममयंसदा । एषैवदेवता मह्यंधारयामि सदैव तु ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वाप्रययौश्रीमाननुगृह्यपतिव्रताम् । ताडयाञ्चक्रिरेदण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजाः

दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतिलक्षणम् । प्रोचुरेतद्भवल्लिङ्गमुत्पाटय सुदुर्मते! ॥
तानब्रवीन्महायोगीकरिष्यामीतिशङ्करः । युष्माकं मामकेलिङ्गेयदिद्वेषोऽभिजायते
उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा । नापश्यंस्तत्क्षणाच्चेशं केशवं लिङ्गमेव च
तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः । न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः

निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः ॥ ४२ ॥

अपश्यच्चानुसूयात्रेःस्वप्नं भार्यापतिव्रता । कथयामासविप्राणांभयादाकुलितेन्द्रिया

तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान् ।

भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति ॥ ४४ ॥

तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः । सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्
उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः । चतुर्वेदैर्मूर्त्तिमद्भिः सावित्र्यासहितंप्रभुम
आसानमासनेरम्येनानाश्चर्यसमन्विते । प्रभासहस्रकलिलेज्ञानैश्वर्य्यादिसंयुते ॥ ४७

विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम् ।

चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम् ॥ ४८ ॥

विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम् । शिरोभिर्द्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्
तान्प्रसन्नोमहादेवश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्मुखः । व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्॥
तत्तस्य वृत्तमखिलंब्रह्मणःपरमात्मनः । ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसिचाञ्जलिम्

ऋषय ऊचुः

कश्चिद्दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः । भार्य्ययाचारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्नएवहि
मोहयामास वपुषा नारीणांकुलमीश्वरः । कन्यकानांप्रियोयस्तुदूषयामासपुत्रकान्

अस्माभिर्विविधाः शापाः(वाताःप्रदत्ताः) प्रवृत्तास्ते पराहताः ।

ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गन्तु विनिपातितम् ॥ ५४

अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिङ्गमेव च । उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयङ्कराः
क एष पुरुषो देवः भीताः स्मः पुरुषोत्तम !। भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत!॥
त्वंहिवेत्सिजगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम् । अनुग्रहेण युक्तेन तदस्मानुपालय

विज्ञापितोमुनिगणैर्विश्वात्माकमलोद्भवः । ध्यात्वादेवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत

ब्रह्मोवाच

हा कष्टम्भवतामद्य जातंसर्वार्थनाशनम् । धिग्बलंधिक्तपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह
सम्प्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनांपरमंनिधिम् । उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिहमोहितैः
काङ्क्षन्तेयोगिनोनित्यंयतन्तोयतयोनिधिम् । यमेव तं समासाद्यहाभवद्भिरुपेक्षितम्
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्तैर्वेदवादिनः । महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्
यमर्चयित्वासततंविश्वेशत्वमिदंमम । स देवोपेक्षितो दृष्ट्वा निधानम्भाग्यवर्जिताः

यस्मिन्समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम् ।
तमासाद्य निधिं ब्रह्म हा भवद्भिर्वृथाकृतम् ॥ ६४ ॥

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः । न तस्य परमं किञ्चित्पदं समभिगम्यते ॥
देवतानामृषीणां वा पितॄणाञ्चापिशाश्वतः । सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ॥
संहरत्येष भगवान्कालो भूत्वा महेश्वरः । एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येष स्वतेजसा
एष चक्री चक्रवर्त्ती श्रीवत्सकृतलक्षणः । योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च

द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतुः कलौ युगे (भव)॥ ६८ ॥
रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम् ।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्वंविष्णुरिति स्मृतिः ॥ ६९ ॥
मूर्त्तिरन्यास्मृताचास्य दिग्वासा च शिवा ध्रुवा ।
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ॥ ७० ॥

याचास्य पार्श्वगा भार्याभवद्भिरभिभाषिता । सहिनारायणोदेवः परमात्मासनातनः
तस्मात्सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयंव्रजेत् । स एषमोचयेत्कृत्स्नं स एषच परागतिः
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । एकशृङ्गो महानात्मानारायण इतिश्रुतिः
रेतोऽस्यगर्भोभगवानापोमायातनुःप्रभुः । स्तूयतेविविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः

संहृत्य सकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः ।

शेते योगामृतं पीत्वा यत्र विष्णोः परम्पदम् ॥ ७५ ॥

न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वदृक्। मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरजः ॥
ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलञ्जगत । अजनाभौतुतद्बीजंक्षिपत्येषमहेश्वरः
तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणंविश्वतोमुखम् । महान्तं पुरुषं विश्वमपांगर्भमनुत्तमम्
न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य मायया । देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम्
एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान्हरः । विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोतिच
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद्विद्यते परम् । स वेदान्प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम
स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च । तमेवमुक्तयेज्ञात्वा व्रजध्वंशरणंशिवम्
इतीरिता भगवतामरीचिप्रमुखाविभुम् । प्रणम्य देवं ब्रह्माणंपृच्छन्तिस्मसमाहिताः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे दारुवनाख्यानवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

*ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

देवदारुवनप्रवेशवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कथं पश्येम तं देवं पुनरेवपिनाकिनम् । ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम्

ब्रह्मोवाच

यद्दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम् ।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम् ॥ २ ॥

पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः । वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः ॥
संस्थाप्यशाङ्करैर्म्मन्त्रैरृग्यजुःसामसम्भवैः । तपःपरंसमास्थायगृहन्तःशतरुद्रियम्
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः । सर्वे प्राञ्जलयोभूत्वा शूलपाणिप्रपद्यथ
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्द्दर्शमकृतात्मभिः । यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति ॥ ६ ॥
ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम् । जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः ॥७॥

---

* कलिकातास्थ-एसियाटिक समितिप्रकाशितपुराणेऽष्टत्रिंशदूनचत्वारिंशदध्यायौ सम्मिलितौस्तः ।

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणाकथितं यथा। अजानन्तःपरं भावं वीतरागाविमत्सराः
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानांगुहासु च। नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषुच

शैवालभोजनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठे ह्यधिष्ठिताः॥ १०॥
दन्तोऽलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथापरे।
शाकपर्णाशनाः केचित्सम्प्रक्षाला मरीचिपाः॥ ११॥

वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे। कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तोमहेश्वरम्
ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रपन्नार्त्तिहरो हरः। चकार भगवान्बुद्धि बोधयन्वृषभध्वजः॥
देवः कृतयुगे ह्यस्मिच्छृङ्गे हिमवतः शुभे। देवदारुवनम्प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः॥
भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः। उल्मूकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः
कचिच्च हसतेरौद्रंकचिद्गायतिविस्मितः। कचिन्नृत्यतिशृङ्गारीकचिद्रौतिमुहुर्मुहुः
आश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः। मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः
कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वेदेवः पिनाकधृक्। साचपूर्ववद्देवेशी देवदारुवनङ्गता
दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्द्दिनम्। प्रणेमुः शिरसा भूमौतोवयामासुरीश्वरम्
वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैःस्तोत्रैर्माहेश्वरैः शुभैः। अथर्वशिरसाचान्ये रुद्राद्यैरर्चयन्भवम्॥
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः। त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे॥
नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने। सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणतात्मने॥
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च। नमोऽस्तु नृत्यलीलाय नमो भैरवरूपिणे
नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः। नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च

विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमस्ते लेलिहानाय श्रीकण्ठाय च ते नमः॥ २५॥

अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः। नमः कनकमालाय देव्या प्रियकराय च॥२६॥
गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने। नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः॥

प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गधारिणे। नमस्ते हव्यवाहायदंष्ट्रिणे हव्यरेतसे

ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे । आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैवच

विश्वेश्वर! महादेव! योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुते ।

नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ॥ ३० ॥

कपालपाणये तुभ्यं नमोऽजुष्टतमाय ते । नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ॥

नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः । नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च

किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ॥ ३२ ॥

महादेव! महादेव! देवदेव! त्रिलोचन !। क्षम्यतां यत्कृतं मोहात्त्वमेव शरणं हि नः ॥

चरितानि विचित्राणि गुह्यानिगहनानि च । ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोहिशङ्करः

अज्ञानाद्यदि वाज्ञानात्किञ्चिद्यत्कुरुते नरः । तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रविष्टैरन्तरात्मभिः । ऊचुःप्रणम्यगिरिशंपश्यामस्त्वांयथापुरा

तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः । स्वयमेव परंरूपं दर्शयामास शङ्करः ॥

तं ते दृष्ट्वाथगिरिशंदेव्यासहपिनाकिनम् । यथापूर्वंस्थिता विप्राःप्रणेमुर्हृष्टमानसाः

ततस्तेमुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम् । भृग्वङ्गिरा वसिष्ठस्तुविश्वामित्रस्तथैवच

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्चपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः । मरीचिःकश्यपश्चापिसम्वर्त्तकमहातपाः

प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४० ॥

कथं त्वां देवदेवेश! कर्मयोगेनवा प्रभो । ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि ॥

केन वा देवमार्गेण सम्पूज्योभगवानिह । किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद्ब्रवीहिनः

देवदेव उवाच

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम् । ब्रह्मणा कथितम्पूर्वं महादेवे महर्षयः ॥

साङ्ख्ययोगाद् द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम् ।

योगेन सहितं साङ्ख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥

न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः । ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम् ॥४५॥

भवन्तःकेवलं योगं समाश्रित्यविमुक्तये । विहाय साङ्ख्यं विमलमकुर्वतपरिश्रमम्

एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम् ।

आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन्मोहसम्भवम् ॥ ४७ ॥

तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम् । ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च

एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः ।

आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै साङ्ख्यदर्शनम् ॥ ४६ ॥

एतदेव परं ज्ञानमथ मोक्षोऽनुगीयते । एतत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः ॥५०॥

आश्रित्य चैतत्परमं तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।

पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥ ५१ ॥

एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम् । अहं हि वेद्यो भगवान्मम मूर्त्तिरियं शिवा

बहूनिसाधनानीह सिद्धये कथितानि तु । तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवाः

ज्ञानयोगरताःशान्तामामेवशरणङ्गताः । ये हि मां भस्मनि रता ध्यायन्ति सततंहृदि

मद्भक्तितत्परा नित्यंयतयः क्षीणकल्मषाः । नाशयाम्यचिरात्तेषां घोरं संसारगह्वरम्

निर्म्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं शुभम् । गुह्याद्गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये

प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः । ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतश्चरेत् ॥

यद्वाकौपीनवसनःस्यादेकवसनोमुनिः । वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिंशिवम्

एषपाशुपतोयोगःसेवनीयोमुमुक्षुभिः। तस्मिन्स्थितैस्तुपठितंनिष्कामैरितिहिश्रुतम्

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः । बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ॥

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु ।

वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ॥ ६१ ॥

वामं पाशुपतं सोमं लाकुरञ्चैव भैरवम् । असेव्यमेतत्कथितं वेदबाह्यं तथेतरम् ॥

वेदमूर्त्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः । ज्ञायते मत्स्वरूपन्तु मुक्त्वा देवंसनातनम्

स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम् । ततोऽचिराद्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति नसंशयः

मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः !।

ध्यानमात्रं हि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।

तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम् ॥ ६६ ॥
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः । समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः
विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।
किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ॥ ६८ ॥
कोऽपिस्यात्सर्वभावानांहेतुरीश्वरएवच । इत्येवंमन्यमानानांध्यानमार्गावलम्बिनाम्
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥ ६९ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता ।
स्वभाभिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥ ७० ॥
तामन्वपश्यद्गिरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम् ॥ ७१ ॥
अस्माकमेषा परमस्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।
पश्यन्त्यथात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः ॥ ७२ ॥
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥ ७३ ॥
आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम् ।
ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु ॥ ७४ ॥
इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।
माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥ ७५ ॥
अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥ ७६ ॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥ ७७ ॥
अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तयासह देवाधिदेवः ।

आराधयन्ति स्म तमादिदेवं वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥ ७८ ॥

एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम् । देवदारुवने पूर्वं पुराणेयन्मया श्रुतम् ॥
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्च्छान्तान्स याति परमां गतिम् ॥ ८० ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे देवदारुवनप्रदेशो नामैकोन-
रशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेययुधिष्ठिरसम्वादेनर्मदामाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

एषा पुण्यमता देवी देवगन्धर्वसेविता । नर्मदालोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी
तस्याः शृणुध्वंमहात्म्यंमार्कण्डेयेन भाषितम् । युधिष्ठिरायतुशुभं सर्वपापप्रणाशनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्ते विविधा धर्म्मास्तत्प्रसादान्महामुने !।
माहात्म्यञ्च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च ॥ २ ॥
नर्म्मदासर्वतीर्थानांमुख्याहिभवतेरिता । तस्यास्त्विदानींमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिसत्तम

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता । तारयेत्सर्वभूतानि,स्थावराणि चराणि च
नर्मदायास्तुमाहात्म्यंपुराणे यन्मयाश्रुतम् । इदानींतत्प्रवक्ष्यामिशृणुष्वैकमनाःशुभम्
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा
त्रिभिः सारस्वतंतोयं सप्ताहाद्यामुनं जलम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयंदर्शनादेव नार्मदम्
कलिङ्गदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके । पुण्या त्रिषु त्रिलोकेषु रमणीया मनोरमा ॥ ६

सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । तपस्तप्त्वातु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमांगताः

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ११ ॥

योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा । विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च । पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके

ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
सर्व्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्व्वभूतहिते रतः ॥ १४ ॥

एवंशुद्धसमाचारोयस्तु प्राणान्परित्यजेत् । तस्यपुण्यफलंराजन्च्छृणुष्वावहितोऽनघ
शतंवर्षसहस्राणिस्वर्गे मोदतिपाण्डव !। अप्सरोगणसङ्कीर्णोदिव्यस्त्रीपरिवारितः
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः । क्रीडतेदिव्यलोके तुविबुधैः सहमोदते
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टोराजाभवतिधार्मिकः । गृहंतु लभतेऽसौवैनानारत्नसमन्वितम्
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम् । आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम्
राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः । जीवेद्वर्षशतं साग्रंतत्र भोगसमन्वितः ॥
अग्निप्रवेशेऽथ जले वाथवानशने कृते । अनिवर्त्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा
पश्चिमे पर्वततटेसर्वपापविनाशनः । ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२२
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा । दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशयः
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्यामहानदी । सरसार्जुनसञ्छन्नानातिदूरे व्यवस्थिता
सा तु पुण्यामहाभागात्रिषुलोकेषुविश्रुता । तत्रकोटिशतंसाग्रंतीर्थानान्तुयुधिष्ठिर

तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमाङ्गतिम् ॥ २६ ॥

द्वितीयातुमहाभागाविशल्यकरणीशुभा । तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाविशल्योभवतिक्षणात्
कपिला च विशल्या च श्रूयेते सरिदुत्तमे । ईश्वरेण पुराप्रोक्ते लोकानांहितकाम्यया
अनाशकन्तुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप !। सर्वपापविशुद्धात्मारुद्रलोकेसगच्छति
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् । ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्तिते
सरस्वत्याञ्च गङ्गायांनर्मदायांयुधिष्ठिर !। समं स्नानञ्च दानञ्च यथामेशङ्करोऽब्रवीत्

परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके। वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते॥
नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मिसफलीकृतम्। पवित्रं शिरसा धृत्वासर्वपापैः प्रमुच्यते
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी। अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया
जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापप्रणाशनम्। तत्र गत्वा नियमवान्सर्वकामांल्लभेन्नरः
चन्द्रसूर्य्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम्। अश्वमेधाद्दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः
एवं पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः। नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः
तत्र सन्निहितो राजन्देव्या सहमहेश्वरः। ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो विद्याधरगणैःसह
प्रदक्षिणन्तुयःकुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके। पौण्डरीकस्य यज्ञस्यफलम्प्राप्नोति मानवः
कावेरी नाम विख्यातानदी कल्मषनाशिनी। तत्रस्नात्वामहादेवमर्चयेद्वृषभध्वजम्
सङ्गमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते॥ ४०॥

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसंवादे नर्म्मदामाहात्म्य वर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्यवर्णनेनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी। मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुना
मुनिभिःसंस्तुताह्येषानर्मदाप्रवरानदी। रुद्रगात्राद्विनिष्क्रान्तालोकानांहितकाम्यया
सर्वपापहरानित्यंसर्वदेवनमस्कृता। संस्तुतादेवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥ ३॥
उत्तरे चैव कूले च तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते। नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरंशुभम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते। ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्

तत्रस्नात्वा नरोराजन्गोसहस्रफलंलभेत्। ततोऽङ्गारकेश्वरंगच्छेन्नियतोनियताशनः

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! केदारं नाम पुण्यदम्

तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

निष्फलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ॥ ८ ॥

तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! बाणतीर्थमनुत्तमम्

तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।

ततः पुष्करिणीं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १० ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनपतिर्भवेत् । शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूलेचैवतुदक्षिणे
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्रशूलभेदइतिश्रुतिः
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचगोसहस्रफलंलभेत् । उपोष्यरजनीमेकांस्नानंकृत्वायथाविधि
आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः । गोसहस्रफलम्प्राप्य विष्णुलोकंसगच्छति
ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकेमहीयते
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्
यत्रतप्तंतपः पूर्वंनारदेन सुरर्षिणा । प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः ॥१७॥

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम् ।

यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ॥ १८ ॥

ऋणतीर्थं ततोगच्छेद्दृणान्मुच्येन्नरो ध्रुवम् । वटेश्वरंततोगच्छेत्पर्याप्तं जन्मनःफलम्
भीमेश्वरं ततोगच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैःप्रमुच्यते
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र! कपिलां यः प्रयच्छति ।

यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥ २२ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप !॥
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः

ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।

ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् ॥ २५ ॥

निवर्त्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी । हुङ्कारिता तु व्यासेन तत्क्षणेनततोगता

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर !।

प्रीतस्तत्र भवेद्व्यासो वाञ्छितं लभते फलम् ॥ २७ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्रइक्षुनद्यास्तुसङ्गमम् । त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्रसन्निहितःशिवः

तत्र स्नात्वा नरो राजन् गणपत्यमवाप्नुयात् ।

स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १६ ॥

आजन्मनः कृतम्पापंस्नातस्तत्र व्यपोहति । तत्रदेवाः सगन्धर्वा भर्गात्मजमनुत्तमम्

उपासतेमहात्मानं स्कन्दंशक्तिधरम्प्रभुम् । ततोगच्छेदाङ्गिरसं स्नानंतत्रसमाचरेत्

गोसहस्रफलम्प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति । अङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम्

तपसाऽऽराध्य विश्वेशं लब्धवान्योगमुत्तमम् ।

कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३३ ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत् । कोटितीर्थं ततोगच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्

आजन्मनः कृतम्पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति ।

चन्द्रभागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ३५ ॥

स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते । नर्मदादक्षिणे कूले सङ्गमेश्वरमुत्तमम् ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वयज्ञफलंलभेत् । नर्म्मदाचोत्तरेकूले तीर्थं परमशोभनम्

आदित्यायतनंरम्यमीश्वरेणतुभाषितम् । तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रदत्त्वादानंतु शक्तितः

तस्य तीर्थप्रभावेण लभतेचाक्षयफलम् । दरिद्रा व्याधिताये तु येतु दुष्कृतकर्मिणः

मुच्यतेसर्वपापेभ्यःसूर्यलोकंप्रयान्तिच । मातृतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत्

स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।

ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुतालयमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

तत्रस्नात्वातु राजेन्द्रशुचिर्भूत्वासमाहितः । काञ्चनञ्चयतेर्द्द्याद्यथाविभवविस्तरम्

पुष्पकेणविमानेनवायुलोकं स गच्छति । ततो गच्छेतराजेन्द्र! अहल्यातीर्थमुत्तमम्

स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमुत्तमम् (अक्षयम्) ॥ ४४ ॥

चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी । कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तुपूजयेत्
यत्र तत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियोभवेत् । स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः
सरिद्वरां समासाद्यतीर्थं शक्रस्यविश्रुतम् । स्नातमात्रोनरस्तत्र गोसहस्रफलंलभेत्

सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥

सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत् । त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्
यस्तु चान्द्रायणंकुर्यात्तत्रतीर्थेसमाहितः । सर्वपापविशुद्धात्मासोमलोकंसगच्छति
अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थे नराधिप !। जले चानशनम्वापिनासौमर्त्योहिजायते

स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ॥ ५१ ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र! विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः । तत्र तीर्थंसमुत्पन्नंविष्णुश्रीकोभवेदिह
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति । नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ॥

कामतीर्थमितिख्यातं यत्र कामोऽर्चयद्धरिम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ॥ ५५ ॥

कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥५६

उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयेत्पितॄन् ।
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्यायथाविधि ॥ ५७ ॥

गजरूपाशिलातत्रतोयमध्येव्यवस्थिता । तस्मिंस्तुदापयेत्पिण्डान्वैशाखेतुसमाहितः
स्नात्वासमाहितमनादम्भमात्सर्यवर्जितः । तृप्यन्तिपितरस्तस्यतावत्तिष्ठतिमेदिनी
विश्वेश्वरंततोगच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत् । स्नातमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्

ततो गच्छेत राजेन्द! लिङ्गो यत्र जनार्दनः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् विष्णुलोके महीयते ॥ ६१ ॥

यत्र नारायणोदेवो मुनीनां भावितात्मनाम् ।

स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत्परमम्पदम् ॥ ६२ ॥

अकोल्लन्तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् । स्नानंदानञ्चतत्रैवब्राह्मणानाञ्च भोजनम्

पिण्डप्रदानञ्च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।

त्रियम्बकेन तोयेन यश्चरुं श्रपयेद्द्विजः ॥ ६४ ॥

अङ्कुल्लमूलेदद्याच्चपिण्डांश्चैवयथाविधि । तारिताःपितरस्तेनतृप्यन्त्याचन्द्रतारकम्

ततो गच्छेतराजेन्द्रतापसेश्वरमुत्तमम् । तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रप्राप्नुयात्तपसःफलम्

शुक्लतीर्थं ततोगच्छेत्सर्वपापविनाशनम् । नास्ति तेनसमंतीर्थं नर्मदायांयुधिष्ठिर

दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य स्नानाद्ध्यानात्तपोजपात् ।

होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत्फलम् ॥ ६८ ॥

योजनंतत्स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम् । शुक्लतीर्थमितिख्यातं सर्वपापविनाशनम्

पादपाग्रेण दृष्टेनब्रह्महत्यां व्यपोहति । देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्करः

कृष्णपक्षेचतुर्द्दश्यांवैशाखेमासिसुव्रत । लोकात्स्वकाद्विनिष्क्रम्यतत्रसन्निहितोहरः

देवदानवगन्धर्वाःसिद्धविद्याधरास्तथा । गणाश्चाप्सरसोनागास्तत्रतिष्ठन्तिपुङ्गवाः

रञ्जितं हि यथावस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा । आजन्मजनितंपापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति

स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्तु दृश्यते । शुक्लतीर्थात्परं तीर्थंनभविष्यतिपावनम्

पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वापापानिमानवः । अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थेव्यपोहति

कार्त्तिकस्यतु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्द्दशी । घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम्

एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात् । तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः

न तांगतिमवाप्नोतिशुक्लतीर्थेतुयां लभेत् । शुक्लतीर्थंमहातीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम्

तत्रस्नात्वानरोराजन्पुनर्ज्जन्मनविन्दति । अयने वा चतुर्द्दश्यांसंक्रान्तौविषुवेतथा

स्नात्वा तु सोपवासः सन्विजितात्मा समाहितः ।

दानं दद्याद्यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशङ्करौ ॥ ८० ॥

एकतीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् । अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा

उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु। यावत्तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। ततो गच्छेत राजेन्द्र! यमतीर्थमनुत्तमम् ॥

कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर !।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद्योनिसङ्कटम् ॥ ८४ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र! एरण्डीतीर्थमुत्तमम्। संगमे तु नरः स्नात्वाउपवासपरायणः ब्राह्मणं भोजयेदेकंकोटिर्भवतिभोजिताः। एरण्डीसङ्गमेस्नात्वाभक्तिभावात्तुरञ्जितः मृत्तिकांशिरसिस्थाप्यअवगाह्य चतज्जलम्। नर्मदोदकसंमिश्रंमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थंकल्लोलकेश्वरम्। गङ्गाऽवतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्वा चैव यथाविधि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८६ ॥

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानंसमाचरेत्। प्रीयते तत्र नन्दीशःसोमलोकेमहीयते ततो गच्छेत राजेन्द्र!तीर्थं त्वनरकं शुभम्। तत्र स्नात्वानरोराजन्नरकं नैव पश्यति

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत्।
रूपवाञ्जायते लोके धनभोगसमन्वितः ॥ ६२ ॥

ततोगच्छेतराजेन्द्रकपिलातीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलंलभेत् ज्यैष्ठमासे तु सम्प्राप्तेचतुर्द्दश्यां विशेषतः। तत्रोपोष्य नरोभक्त्यादत्त्वा दीपंघृतेनतु घृतेन स्नापयेद्रुद्रं ततो वै श्रीफलं लभेत्। घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत् सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः। शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत्क्रीडते सदा ॥

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ॥ ६७ ॥

सर्वदेवसमायुक्तो विमाने सर्वकामिके। गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टोधृतिमान्भोगवान्भवेत्। अङ्गारकनवम्यांतु अमावास्यांतथैवच स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत्। ततो गच्छेत राजेन्द्र! गणेश्वरमनुत्तमम् श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी। स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोकेमहीयते

पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यतेसऋणत्रयात् । गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम्
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः ।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १०३ ॥
तस्य वै पश्चिमे भागे समीपेनातिदूरतः । दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषुविश्रुतम्'
उपोष्य रजनीमेकां मासिभाद्रपदे शुभे । अमावास्यां हरं स्नाप्यपूजयेद्गोवृषध्वजम्
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना । गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते
सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् । पितॄणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलंलभेत्

इतिश्रीकूर्म्मपुराणेउत्तरार्द्धेनर्मदामाहात्म्येनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्येनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र! भृगुतीर्थमनुत्तमम् । तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रमाराधयत्पुरा
दर्शनात्तस्य देवस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते । एतत्क्षेत्रं सुविपुलंसर्वपापप्रणाशनम्
तत्रस्नात्वादिवंयान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः । उपानहौतथायुग्यं देयमन्नञ्चकाञ्चनम्
भोजनञ्च यथाशक्ति तस्याप्यक्षयमुच्यते । क्षरन्ति सर्वदःनानि यज्ञदानं तपःक्रिया
अक्षय्यं तत्तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर । तस्यैव तपसोग्रेण रुद्रेण त्रिपुरारिणा ॥
सान्निध्यं तत्र कथितंभृगुतीर्थे युधिष्ठिर !। ततो गच्छेत राजेन्द्रगौतमश्वरमुत्तमम्
यत्राराध्यत्रिशूलाङ्कंगौतमःसिद्धिमाप्तवान् । तत्र स्नात्वानरो राजन्नुपवासपरायणः
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ।
वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

न जानन्तिनरा मूढाविष्णोर्मायाविमोहिताः । धौतपापंततो गच्छेद्धौतंयत्रवृषेणतु
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम् । तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा ब्रह्महत्यांविमुञ्चति
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र! प्राणत्यागं करोति यः । चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्चहरतुल्यबलोभवेत्
वसेत्कल्पायुतं साग्रंशिवतुल्यपराक्रमः । कालेनमहता जातः पृथिव्यामेकराड्भवेत्
ततो गच्छेत राजेन्द्र! हस्ततीर्थमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते
ततो गच्छेत राजेन्द्रयत्रसिद्धोजनार्द्दनः । वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम्
ततो गच्छेतराजेन्द्र!चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् । पौर्णमास्यांविशेषेणस्नानंतत्र समाचरेत्
स्नातमात्रो नरस्तत्रपृथिव्यामेकराड्भवेत् । देवतीर्थं ततोगच्छेत्सर्वतीर्थनमस्कृतम्
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र! दैवतैःसह मोदते । ततो गच्छेतराजेन्द्र!शङ्खितीर्थमनुत्तमम्
यत्तत्र दीयतेदानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र!तीर्थं पैतामहं शुभम्
यत्तत्रदीयतेश्राद्धंसर्वंतस्याक्षयंभवेत् । सावित्रीतीर्थमासाद्ययस्तुप्राणान्परित्यजेत्
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकेमहीयते । मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ॥ २०
तत्र स्नात्वा नरोराजन्रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्रकन्यातीर्थमनुत्तमम्
स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते । शुक्लपक्षेतृतीयायांस्नानमात्रं समाचरेत्
स्नातमात्रोनरस्तत्रपृथिव्यामेकराड्भवेत् । सर्गविन्दुं ततोगच्छेत्तीर्थंदेवनमस्कृतम्
तत्र स्नात्वानरोराजन्दुर्गतिं वैन पश्यति । अप्सरेशंततोगच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत्
क्रीडते नाकलोकस्थोह्यप्सरोभिःस मोदते । ततोगच्छेतराजेन्द्र!भारभूतिमनुत्तमम्
उपोषितो यजेतेशंरुद्रलोके महीयते । अस्मिंस्तीर्थे मृतोराजन्गाणपत्यमवाप्नुयात्
कार्त्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम् । अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः
वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम् । वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं सगच्छति
एतत्तीर्थंसमासाद्ययस्तुप्राणान् परित्यजेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकंसगच्छति
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं सगच्छति
एरण्ड्या नर्मदायास्तुसङ्गमंलोकविश्रुतम् । तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्
उपवासंकृतो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्रमुच्यतेब्रह्महत्यया

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! नर्मदोदधिसङ्गमम् ।
जमदग्निमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्द्दनः ॥ ३३ ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदौंदधिसङ्गमे । त्रिगुणश्चाश्वमेधस्य फलम्प्राप्नोति मानवः
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते
तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम् ॥ ३६ ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र अलितीर्थमनुत्तमम् । उपोष्य रजनीमेकां नियतोनियताशनः
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यतेब्रह्महत्यया ।
एतानि तव सङ्क्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च ॥ ३८ ॥
न शक्या विस्तराद्वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव !।
एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता ॥ ३९ ॥
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा । मनसा संस्मरेद्यस्तुनर्मदां वै युधिष्ठिर!
चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ।
अश्रद्दधधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ॥ ४१ ॥
पतन्ति नरके घोर इत्याह परमेश्वरः । नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥ ४२ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये नानातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

———

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम् । महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम्
महादेवंदिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिना । ब्रह्मणा निर्मितंस्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा ।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ३ ॥

समेत्यसर्ववरदंचतुर्म्मूर्त्ति चतुर्म्मुखम् । पृच्छन्तिप्रणिपत्यैनंविश्वकर्माणमव्ययम्

षट्कुलीया ऊचुः

भगवन्देवमीशानं तमेवैकं कपर्दिनम् । केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव! नमस्तव

ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्रमासध्वंवाङ्मनोदोषवर्ज्जिताः । देशञ्चवःप्रवक्ष्यामियस्मिन्देशेचरिष्यथ
मुक्त्वा मनोमयं चक्रं संस्पृष्ट्वा तानुवाच ह । क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत माचिरम्
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः । ततो मुमोच तच्चक्रं तेचतत्समनुव्रजन्
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्रनेमिरशीर्यत । नैमिषं तत् स्मृतंनाम्नापुण्यं सर्वत्रपूजितम्
सिद्धचारणसम्पूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम् । स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिषमुत्तमम्
अत्र देवाः सगन्धर्वाःसयक्षोरगराक्षसाः । तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरेप्रवरान्वरान्

इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः ।
सत्रेणाऽऽराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥ १२ ॥

अत्रदानं तपस्तप्तं श्राद्धयागादिकञ्च यत् । एकैकं नाशयेत्पापं सप्तजन्मकृतं तथा
अत्र पूर्वं स भगवानृषीणांसत्रमासताम् । स वै प्रोवाचब्रह्माण्डंपुराणं ब्रह्मभावितम्
अत्र देवो महादेवोरुद्राण्याकिल विश्वदृक् । रमतेऽद्यापिभगवान्प्रमथैः परिवारितः

अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः ।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥ १६ ॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम् । जजाप रुद्रमनिशं यत्रनन्दी महागणः
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सहपिनाकधृक् । ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च
अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित् ।
आराधयन्महादेवं प्रसादार्थं वृषध्वजम् ॥ १६ ॥
तस्यवर्षसहस्रान्तेतप्यमानस्य विश्वधृक् । शर्वःसोमोगणवृतोवरदोऽस्मीत्यभाषत
स वव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम् ।
अयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम् ॥ २१ ॥
तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सहमहेश्वरः । पश्यतस्तस्यविप्रर्षेरन्तर्द्धानं गतोहरः
ततो युयोज तां भूमिंशिलादोधर्मवित्तमः । चकर्षलाङ्गलेनोर्वी भित्वादृश्यतशोभनः
संवर्त्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव ।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः ॥ २४ ॥
कुमारतुल्योऽप्रतिमोमेघगम्भीरया गिरा । शिलादं तात तातेतिप्राह नन्दी पुनःपुनः
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे ।
मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम् ॥ २६ ॥
जातकर्म्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह ।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम् ॥ २७ ॥
अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम् । चक्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिव प्रभुम्
स गत्वा सागरं पुण्यमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः ॥ २६ ॥
तस्य कोट्याञ्च पूर्णायां शङ्करोभक्तवत्सलः ।
आगतः सर्वसगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥ ३० ॥

स वव्रेपुनरेवेशं जपेयं कोटिमीश्वरम् । भवदाहं महादेवं देहीति परमेश्वरम्

एवमस्त्विति सम्प्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत ।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥ ३२ ॥
द्वितीयायाञ्चकोट्यां वै पूर्णायाञ्चवृषध्वजः । आगत्यवरदोऽस्मीतिप्राहभूतगणैर्वृतः
तृतीयाञ्जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शङ्कर !।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देव्या चान्तरधीयत ॥ ३४ ॥
कोटित्रयेऽथसम्पूर्णे देवः प्रीतमनाभृशम् । आगत्यवरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः
जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तवतेजसा । इत्युक्तेभगवानाह न जप्तव्यं त्वयापुनः
अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वे गतः सदा । महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भवमहेश्वरः
योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वरः ।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वयज्ञमयो हितः ॥ ३८ ॥
ज्ञानं तन्नामकं दिव्यं हस्तामलकसञ्ज्ञितम् ।
आभूतसंप्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ ३६ ॥
एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शङ्करः । अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्
उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक् ।
मरुताञ्च शुभां कन्यां स्वयमेति च विष्णुताम् ॥ ४१ ॥
एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः । यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

———

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः । नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
त्रिरात्रमुषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम् । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते
अन्यच्च तीर्थप्रवरं शक्रस्यामिततेजसः । महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम् ॥
तीर्थानाञ्च परं तीर्थं वितस्ता परमा रदी । सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेवगिरीन्द्रजा
तीर्थं पञ्चतपो नाम शम्भोरमिततेजसः । यत्र देवाधिदेवेन शक्रार्थे पूजितो भवः
पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम् । मृतस्तत्राथ नियमाद्ब्रह्मलोके महीयते
कायावरोहणं नाम महादेवालयंशुभम् । यत्र माहेश्वराधर्म्मामुनिभिः सम्प्रवर्त्तिताः

श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः ।
परित्यजति यः प्राणान्रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ८ ॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान् ॥ ६ ॥

जामदग्न्यस्य चशुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः । तत्रस्नात्वा तीर्थवरेगोसहस्रफलं लभेत्

महाकालमितिख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम् ।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

गुह्याद्गुह्यतमंतीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम् । तत्र सन्निहितःश्रीमात् भगवान्नकुलीश्वरः
हिमवच्छिखरेरम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने । देव्या सहमहादेवोनित्यंशिष्यैश्च सम्भृतः

तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
सर्वपापैर्विशुद्ध्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात् ॥ १४ ॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम् ।

भीमेश्वरमितिख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम् ॥ १५ ॥

तथान्यश्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः । तत्रस्नात्वाचपीत्वाचमुच्यतेब्रह्महत्यया

सर्वेषामपिचैतेषांतीर्थानांपरमापुरी । नाम्नावाराणसीदिव्याकोटिकोट्ययुताधिका

तस्याःपुरस्तान्माहात्म्यंभाषितंवोमयात्विह । नान्यत्रलभतेमुक्तियोगेनाप्येकजन्मना

एतेप्राधान्यतःप्रोक्ता देशाःपापहरा नृणाम् । गत्वा सङ्क्षालयेत्पापं जन्मान्तरशतैरपि

यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि ।

न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥ २० ॥

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथायायावरोगृही । प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवांयश्चान्यस्तादृशोजनः

सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥

ऋणानित्रीण्यपाकुर्यात्कुर्वन्वातीर्थसेवनम् । विधायवृत्तिपुत्राणांभार्यांतेषुविधायच

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेनतीर्थमाहात्म्यमीरितम् । यःपठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते

इतिश्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विधप्रलयवर्णनम्

सूत उवाच

एतदाकर्ण्यविज्ञानं नारायणमुखेरितम् । कूर्मरूपधरंदेवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम् ॥ १ ॥

मुनय ऊचुः

कथितोभवताधर्मोमोक्षज्ञानंसविस्तरम् । लोकानांसर्गविस्तारोवंशोमन्वन्तराणिच

इदानींदेवदेवेश! प्रलयं वक्तुमर्हसि । भूतानां भूतभव्येश! यथापूर्वं त्वयोदितम् ॥

सूत उवाच

श्रुत्वातेषां तदावाक्यंभगवान् कूर्मरूपधृक्। व्याजहारमहायोगीभूतानांप्रतिसञ्चरम्

कूर्म्म उवाच

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतोऽत्यन्तिकस्तथा।
चतुर्द्धाऽयं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चरः ॥ ५ ॥

योऽयंसंदृश्यतेनित्यंलोकेभूतक्षयस्त्विह। नित्यःसङ्कीर्त्यतेनाम्नामुनिभिप्रतिसञ्चरः

ब्रह्मनैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति।
त्रैलोकस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः ॥ ७ ॥

महदाद्यंविशेषान्तं यदासंयाति संक्षयम्। प्राकृतःप्रतिसर्गाऽयंप्रोच्यतेकालचिन्तकैः

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः ॥ ६ ॥

आत्यन्तिकस्तुकथितःप्रलयोज्ञानसाधनः। नैमित्तिकमिदानींवःकथयिष्येसमासतः

चतुर्व्यूहसहस्रान्तेसम्प्राप्तेप्रतिसञ्चरे। स्वात्मसंस्थाःप्रजाःकर्त्तुम्प्रतिपेदेप्रजापतिः

ततोऽभवत्त्वनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी। भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयङ्करी

ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते !।
तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥ १३ ॥

सप्तरश्मिरथो भूत्वासमुत्तिष्ठन्दिवाकरः। असह्यरश्मिर्भवतिपिबन्नम्भोगभस्तिभिः

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे।
तेनाऽऽहारेण ता दीप्त्वा सप्तसूर्य्या भवन्त्युत ॥ १५ ॥

ततस्तेरश्मयः सप्त शोषयित्वा चतुर्द्दिशम्। चतुर्लोकमिमंसर्वंदहन्ति शिखिनोयथा

व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊद्ध्वंश्चाधः स्वरश्मिभिः।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः ॥ १७ ॥

ते सूर्यावारिणादीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः। खं समावृत्यतिष्ठन्तिप्रदहन्तो वसुन्धराम्

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा। साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निःस्नेहा सम्प्रपद्यते

दीप्ताभिः सन्तताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः ।
अधश्चोद्ध्र्वंश्च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम् ॥ २० ॥
सूर्याग्निनाप्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम् । एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ॥
सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली । चतुर्लोकमिमंसर्वंनिर्द्दहत्याशुतेजसा
ततःप्रलीनेसर्वस्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा । निर्वृक्षानिस्तृणाभूमिःकूर्मपृष्ठा प्रकाशते
अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत् । सर्वमेवतदर्च्चिर्वै पूर्णं जाज्वल्यते पुनः ॥
पाताले यानि सत्त्वानिमहोदधिगतानिच । ततस्तानिप्रलीयन्तेभूमित्वमुपयान्तिच
द्वीपांश्च पर्वतांश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन् ।
तान् सर्वान् भस्मसाच्चक्रे सप्तात्मा पावकः प्रभुः ॥ २६ ॥
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च आपःशुष्काश्च सर्वशः ।
पिबन्नपः समृद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥ २७ ॥
ततःसंवर्त्तकःशैलानतिक्रम्यमहांस्तथा । लोकान्दहतिदीप्तात्मामारुतेयोविजृम्भितः
स दग्ध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोभयत् ।
अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा दिवमूद्ध्र्वं दहिष्यति ॥ २६ ॥
योजनानां शतानीहसहस्राण्ययुतानिच । उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्यवह्नेःसंवर्त्तकस्यतु
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान् । तदा दहत्यसौदीप्तः कालरुद्रप्रणोदितः
भूर्लोकश्च भुवर्लोकं महर्ल्लोकं तथैव च । दहेदशेषंकालाग्निः कालाविष्टतनुः स्वयम्
व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्धमथाग्निना । तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः
अतो गूढमिदं सर्वं तदेवैकम्प्रकाशते । ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलङ्कृताः
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्त्तका घनाः ।
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः ॥ ३५ ॥
धूम्रवर्णास्तथा केचित्केचित्पीताः पयोधराः ।
केचिद्रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभाः परे ॥ ३६ ॥
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा । मनःशिलाभाश्च परे कपोतसदृशाः परे

इन्द्रगोपनिभाःकेचिद्धरितालनिभास्तथा । इन्द्रचापनिभाःकेचिदुत्तिष्ठन्तिघनादिवि
केचित्पर्वतसङ्काशाः केचिद्गजकुलोपमाः । कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहाः
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः । तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तलम् ।

ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः ।
सप्तधा संवृतात्मानं तमग्निं शमयन्त्युत (शमयेत्पुनः) ॥ ४१ ॥

ततस्ते जलदा वर्षंमुञ्चन्तीह महौघवत् । सुघोरमशिवं वर्षं नाशयन्ति च पावकम्

अतिवृद्धस्तदात्यर्थमम्भसा पूर्य्यते जगत् ।
अद्भिस्तेऽम्भोऽभिभूतत्वात्तदग्निः प्रविशत्यपः ॥ ४३ ॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतैः पयोदाः क्षयसम्भवाः । प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिस्रवैः ॥
धाराभिः पूरयन्तीदं नोद्यमानाःस्वयम्भुवा । अत्यन्तसलिलौघास्तु वेलाइवमहोदधेः
साद्रिद्वीपा ततःपृथ्वीजलैःसञ्छाद्यतेशनैः । आदित्यरश्मिभिःपीतजलमभ्रेषुतिष्ठति
पुनःपततितद्भूमौपूर्यन्तेतेनचार्णवाः । ततःसमुद्राःस्वांवेलामतिक्रान्तास्तुकृत्स्नशः
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति । तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे
योगनिद्रांसमास्थाय शेते देवःप्रजापतिः । चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुर्मनीषिणः

वाराहो वर्त्तते कल्पो यस्य विस्तर ईरितः ।
असंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ॥ ५० ॥
कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः ।
सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥ ५१ ॥

तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषुप्रजापतेः । योयं प्रवर्त्तते कल्पो वाराहः सात्त्विकोमतः

अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः ।
ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा ते योगिनः परम् ॥ ५३ ॥
आराध्य तञ्च गिरिशं यान्ति तत्परमस्पदम् ।
सोऽहं तत्त्वं समास्थाय मायी मायामयां (यीं

एकार्णवेजगत्यस्मिन्योगनिद्रांव्रजामि तु । मां पश्यन्तिमह

जनलोके वर्त्तमानास्तापसायोगचक्षुषा । अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवःप्रभवो विभुः

सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात ।

मन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशोऽथ समिधो ह्यहम् ॥ ५७ ॥

प्रोक्षणीयं स्वयञ्चैवसोमोव्रतमथास्म्यहम् । संवर्त्तकोमहानात्मा पवित्रं परमंयशः

मेधाप्यहं प्रभुर्गाप्तागोपतिर्ब्राह्मणोमुखम् । अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतांवरः

हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्त्तिः सनातनः ।

क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम् ॥ ६० ॥

माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ।

आदित्यवर्णा भुवनस्य गोप्ता नारायणः पुरुषो योगमूर्त्तिः ।

तं पश्यन्ते यतयो योगनिष्ठा ज्ञात्वात्मानं मम तत्त्वं व्रजन्ति ॥ ६१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे चतुर्विधप्रलयवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

प्रतिसर्गवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम् । प्राकृतं तत्समासेन शृणुध्वं गदतो मम ॥

गते परार्द्ध द्वितये कालेलोकप्रकालनः । कालाग्निर्भस्मसात्कर्त्तुं चरतेचाखिलंजगत्

स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वादेवो महेश्वरः । दहेदशेषं ब्रह्माण्डं सदेवासुरमानुषम्

तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहितः । करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रितः

प्रविश्य मण्डलंसौरंकृत्वाऽसौ बहुधापुनः । निर्द्दहत्यखिलं लोकंसप्तसप्तिस्वरूपधृक

स दग्ध्वा सकलं विश्वमस्त्रं ब्रह्मशिरोमहत् । देवतानां शरीरेषुक्षिपत्यखिलदाहकम्

दग्धेष्वशेषदेवेषुदेवीगिरिवरात्मजा। एषा सासाक्षिणीशम्भोस्तिष्ठतेवैदिकीश्रुतिः
शिरःकपालैर्देवानां कृतस्रग्वरभूषणः। आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन्व्योममण्डलम्
सहस्रनयनो देवः सहस्राक्ष इतीश्वरः। सहस्रहस्तचरणः सहस्रा च्चिर्महाभुजः॥
दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः। त्रिशूलकृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः॥
पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम्। करोति ताण्डवं देवीमालोक्यपरमेश्वरः
पीत्वा नृत्यामृतंदेवीभर्त्तुः ,परममङ्गलम्। योगमास्थाय देवस्यदेहमायातिशूलिनः

स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक्।
ज्योतिःस्वभावं भगवान्दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम्॥ १३॥
संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा विष्णुः पिनाकधृक्।
गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिषु॥ १४॥
स वारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहनः।
तेजः स्वगुणसंयुक्तं वायौ संयाति सङ्क्षयम्॥ १५॥

आकाशे सगुणोवायुःप्रलयंयातिविश्वभृत्। भूतादौ चतथाकाशेलीयतेगुणसंयुतः

इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम्।
वैकारिको देवगणैः प्रलयं याति सत्तमाः॥ १७॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारोमहति प्रलयेव्रजेत्। महान्तमेभिः सहितंब्रह्माणममितौजसम्
अव्यक्तञ्जगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम्। एवं,संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः
वियोजयति चान्योऽन्यस्प्रधानं पुरुषम्परम्। प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ईरितः
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं .विद्यते लयः। गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृतिःपरिगीयते

प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम्।
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलं पञ्चविंशकः॥ २२॥

गीयते मुनिभिः साक्षी महानेषपितामहः। एवं संहारशक्तिश्च शक्तिर्माहेश्वरीध्रुवा
प्रधानाद्यं विशेषान्तं देहेरुद्र इतिश्रुतिः। योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेतसाम्
आत्यन्तिकञ्चैव लयं विदधातीह शङ्करः। इत्येष भगवान्रुद्रः संहारं कुरुते वशी

स्वापिका मोहिनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः ।
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगत्सदसदात्मकम् ॥ २६ ॥
सृजेदशेषं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः ।
दुर्बलाः सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ २७ ॥

सर्वेश्वराः सर्ववन्द्याःशाश्वतानन्तभोगिनः । एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुम्प्रधानेश्वरात्मकम्

अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः ।
इत्येते विविधैर्यज्ञैः शक्त्यादित्यादयोऽमराः ।
एकैकस्याः सहस्राणि देहानां वै शतानि च ॥ २६ ॥
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा ।
तां शक्तिं स्वयमास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः ॥ ३० ॥

करोति विविधान्देहान्द्रश्यते चैव लीलया । इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभिः
सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः । सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
प्राधान्येनस्मृता देवाःशक्तयःपरमात्मनः । आभ्यःपरस्ताद्भगवान् परमात्मासनातनः
गीयते सर्वमायात्माशूलपाणिर्महेश्वरः । एकमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे ॥ ३४॥
इन्द्रमेके परे प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः । ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वेदेवास्तथर्षयः ॥
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्तेपरिकीर्त्तिताः । यंयंभेदंसमाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्
तत्तद्रूपं समास्थायप्रददातिफलं शिवः । तस्मादेकतरं भेदंसमाश्रित्यापि शाश्वतम्
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम् । किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम्

आराधयेह गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम् ।
मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ॥ ३६ ॥

आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम् । पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम्
रुक्माभंवासहस्राक्षाच्चिन्तयेद्वैदिकीश्रुतिः । एषयोगःसमुद्दिष्टः सबीजोमुनिपुङ्गवाः

अत्राप्यशक्तोऽथ हरंविश्वब्रह्माणमर्चयेत् । अथ चेदसमर्थः स्यात्तत्रापि मुनिपुङ्गवाः

तती वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुतः ।
तस्मात्सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ४३ ॥
आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम् ।
भक्तियोगसमायुक्तः स्वध (क) र्मनिरतः शुचिः ॥ ४४ ॥
तादृशं रूपमास्थाय आसाद्यात्यन्तिकं शिवम् ।
एष योगः समुद्दिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावनः ॥ ४५ ॥
यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरम्पदम् ।
द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह ॥ ४६ ॥

अथापि कथितो योगो निर्बीजश्चसबीजकः । ज्ञानं तदुक्तंनिर्बीजंपूर्वं हिभवतांमया

विष्णुं रुद्रं विरञ्चि (ञ्च) ञ्च सबीजे साधयेद् बुधः ।
अथ वाय्वादिकान्देवान्तत्परो नियतात्मवान् ॥ ४८ ॥

पूजयेत्पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्त्तिधरं हरिम् । अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम्
नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमम्पदम् । तल्लिङ्गधारी नियतं यद्युक्तस्तदुपाश्रयः
एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चान्तिमे मतः । इत्येतत्कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयम्परम्
इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मयापुरा । अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत् ॥

तदीश्वरं परं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत् ।

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्विरराम जनार्द्दनम्
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुं शु (श) क्रेण सह माधवम् ॥ ५३ ॥

मुनय ऊचुः

नमस्ते कूर्म्मरूपाय विष्णवे परमात्मने । नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः
नमोनमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः । माधवायच ते नित्यं नमो यज्ञेश्वरायच
सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥ ५६
ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने । आनन्दाय नमस्तुभ्यंमायातीताय ते नमः

नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तुते । पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे
नमः साङ्ख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तुते ।
धर्मध्या (ज्ञा) नाभिगम्याय निष्कलाय नमोऽस्तु ते (नमोनमः)॥५६
नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च । परावराणां प्रभवे वेदवेद्यायते नमः॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे । नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः
नमोऽस्तुते वराहाय नारसिंहाय ते नमः । वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः
स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने । नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने
देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनायते । भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम् ॥
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
श्रुताश्च विविधा धर्म्मा वंशा मन्वन्तराणि च ॥ ६५ ॥
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चब्रह्माण्डस्यास्यविस्तरः । त्वंहिसर्वजगत्साक्षीविश्वोनारायणःपरः
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः ।

सूत उवाच

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम् ॥ ६७ ॥
कौर्म्मंपुराणमखिलंयज्जगादगदाधरः । अस्मिन्पुराणेलक्ष्म्यास्तुसम्भवःकथितःपुरा
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजितः । प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्चवृत्तयः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम् । पितामहस्यविष्णोश्चमहेशस्यचधीमतः
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णितः । भक्तानांलक्षणम्प्रोक्तं समाचारश्चभोजनम्
वर्णाश्रमाणांकथितं यथावदिह लक्षणम् । आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डावरणसप्तकम्
हिरण्यगर्भः सर्गश्चकीर्त्तितोमुनिपुङ्गवाः । कालसङ्ख्याप्रकथनंमाहात्म्यञ्चेश्वरस्यच
ब्रह्मणः शयनञ्चाप्सु नामनिर्वचनं तथा । वराहवपुषो भूयो भूमेरुद्धरणम्पुनः ॥ ७४ ॥
मुख्यादिसर्गकथनं मुनिसर्गस्तथापरः । व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात्पूर्वमेव तु । ब्रह्मविष्णोर्विवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम्

पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्यच धीमतः । दर्शनञ्चमहेशस्यमाहात्म्यंविष्णुनेरितम्

दिव्यद्दृष्टिप्रदानञ्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥७८॥
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च । सम्वादे विष्णुनासार्द्धं शङ्करस्य महात्मनः
वरदानं तथा पूर्वमन्तर्द्धानं पिनाकिनः । वधश्च कथितो विप्रा मधुकैभयोः पुरा ॥
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् । एकीभावश्च देवेन ब्रह्मणाकथितःपुरा
विमोहो ब्रह्मणश्चाथ संज्ञानात्तु हरेस्ततः । तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः ॥

प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात्कथितस्ततः ।
रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम् ॥ ८३ ॥

भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ । अन्तर्द्धानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डजस्य च ॥
दर्शनं देवदेवस्य नरनारीशरीरता । देव्या विभागकथनं देवदेवात्पिनाकिनः ॥८५॥
देव्याश्च पश्चात्कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च । हिमवद्दुहितृत्वञ्चदेव्या याथात्म्यमेवच
दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपाक्षदर्शनम् । नाम्नां सहस्रंकथितं पित्राहिमवतास्वयम्
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च । भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्द्दनम् । दधीचस्य च यज्ञस्य विवादः कथितस्तदा

ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुङ्गवाः ।
रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्द्धानं पिनाकिनः ॥ ९० ॥

पितामहोपदेशःस्यात्कीर्त्यतेवै रणाय तु । दक्षस्यचप्रजासर्गः कश्यपस्यमहात्मनः
हिरण्यकशिपोर्नाशोहिरण्याक्षवधस्तथा । ततश्चशापःकथितो देवदारवनौकसाम्
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम् । प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बलेः संयमनंतथ ॥

बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः ।
ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९४ ॥

वसुदेवात्ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः । दर्शनञ्चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वासाम्बंत्रिलोचनम् । कैलासगमनञ्चाथनिवासस्तस्यशार्ङ्गिणः
ततश्च कथ्यतेभीतिर्दानवानांनिवासिनाम् [illegible]नाथ जित्वाशत्रून्महाबलान्

नारदागमनञ्चैव यात्राचैव गरुत्मतः । ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामाश्रमस्ततः ॥९८॥

नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम् ॥ ६६ ॥
लिङ्गार्च्चननिमित्तञ्च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः ।
याथात्म्यकथनञ्चाथ लिङ्गाद्वै भीतिरेव च ॥ १०० ॥
ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्त्तिता मुनिपुङ्गवाः ।
मोहस्तयोर्वै कथितो गमनञ्चोद्र्ध्वतो ह्यधः ॥ १०१ ॥
संस्तवोदेवदेवस्यप्रसादःपरमेष्ठिनः । अन्तर्द्धानञ्च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततःपरम्
कीर्त्तिता चाऽनिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः ।
कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणमागतिस्तथा ॥ १०३ ॥
अनुशासनञ्च कृष्णेन वरदानं महात्मनः । गमनञ्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम्
कृष्णद्वैपायनस्योक्तंयुगधर्माःसनातनाः । अनुग्रहोऽथपार्थस्य वाराणस्यांगतिस्ततः
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम् ॥ १०६ ॥
व्यासस्य तीर्थयात्राच देव्याश्चैवाथ दर्शनम् । उद्वासनञ्च कथितं वरदानं तथैव च ॥
प्रयागस्यचमाहात्म्यं क्षेत्राणामथकीर्त्तनम् । फलञ्चविपुलंविप्रामार्कण्डेयस्यनिर्गमः
भुवनानांस्वरूपञ्चज्योतिषाञ्चनिवेशनम् । कीर्त्तितश्चापिवर्षाणां नदीनाञ्चैवनिर्णयः
पर्वतानाञ्चकथनंस्थानानिच दिवौकसाम् । द्वीपानांप्रविभागश्चश्वेतद्वीपोपवर्णनम्
शयनं केशवस्याथ माहात्म्यञ्चमहात्मनः । मन्वन्तराणांकथनंविष्णोर्माहात्म्यमेवच
वेदशाखाप्रणयनं व्यासानांकथनं ततः । अवेदस्यच वेदस्य कथितं मुनिपुङ्गवाः ॥
योगेश्वराणाञ्च कथा शिष्याणाचाथ कीर्त्तनम् ।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिताः ॥ ११३ ॥
वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः । कपालित्वञ्चरुद्रस्य भिक्षाचरणमेवच
पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानाञ्च विनिर्णयः ।

तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्तितो द्विजाः ॥ ११५ ॥

वधश्च कथितो विप्राःकालस्यचसमासतः। देवदारुवने शम्भोः प्रवेशो माधवस्यच
दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः। वरदानञ्च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तितम् ॥

नैमित्तिकश्च कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम्।
प्राकृतः प्रलयश्चोदूर्ध्वं सबीजो योग एव च ॥ ११८ ॥

एवं ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेपं कीर्त्तयेत्तु यः। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते
एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः। सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरस्तदा
देवाश्चसर्वेमुनयः स्वानिस्थानानिभेजिरे। प्रणम्यपुरुषंविष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतंद्विजाः
एतत्पुराणं सकलं भाषितंकूर्मरूपिणा। साक्षाद्देवाधिदेवेनविष्णुना विश्वयोनिना
यः पठेत्सततं विप्रा नियमेन समासतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥

लिखित्वा चैव यो दद्याद्वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ॥ १२४ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सवश्वर्यसमन्वितः।
भुक्त्वा तु विपुलान्मर्त्यो भोगान्दिव्यान् सुशोभनान् ॥ १२५ ॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्म विद्यामवाप्नुयात् ॥ १२६ ॥

पठित्वाध्यायमेवैकंसर्वपापैःप्रमुच्यते। योऽर्थंविचारयेत्सम्यक्प्राप्नोतिपरमम्पदम्
अध्येतव्यमिदं पुण्यं विप्रैः पर्वणिपर्वणि। श्रोतव्यञ्च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानिकृत्स्नशः। एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते ॥
इदं पुराणं मुक्त्वैकं नान्यत्साधनकम्परम्। यथावदत्र भगवान्देवो नारायणो हरिः
कीर्त्यतेहियथा विष्णुर्नतथान्येषुसुव्रताः। ब्राह्मीपौराणिकीचेयंसंहितापापनाशनी
अत्र तत्परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः। तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाञ्च परन्तपः ॥
ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम्। नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ

योऽधीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहून्।
श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयं द्विजातिभिः ॥ १३४ ॥

यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् । मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः
श्रोतव्यश्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम् ।
ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान् ॥ १३६ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ॥ १३७ ॥
सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनांयोनिंव्रजत्यधः । नमस्कृत्यहरिंविष्णुंजगद्योनिंसनातनम्
अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा । इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
पाराशर्यस्यविप्रर्षेर्व्यासस्यच महात्मनः । श्रुत्वा नारायणाद्देवान्नारदो भगवानृषिः
गौतमाय ददौपूर्वं तस्माच्चैव पराशरः । पराशरोऽपिभगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ॥ १४२ ॥
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् । सनकाद्भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः
अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् । सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवतीसुतः
एतत्पुराणंपरमंव्यासः सर्वार्थसञ्चयम् । तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतांपापनाशनम्
ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने । तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये
पाराशर्य्याय शान्ताय नमोनारायणात्मने । तस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्रचैवप्रलीयते
नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्म्मरूपिणे ॥ १४७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धेप्रतिसर्गवर्णनंनाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

———

समाप्तैषाब्राह्मीसंहिता
शिवार्पणमस्तु



सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

—:※:—